क़ाज़ी अब्दुस्सत्तार

अनुवादक
डॉ॰ जानकी प्रसाद शर्मा

ग़ालिब

अनुवादक की ओर से

आज के दौर मे जब कि भाषा, धर्म और क्षेत्रीयता की ओट लेकर विघटन के प्रयत्न जारी हैं, देश की विभिन्न भाषाओं के साहित्य के परस्पर अनुवाद की ज़रूरत स्वाभाविक रूप से बढ़ गयी है। दूसरी भारतीय भाषाओं की उत्कृष्ट जीवन-मूल्यों से संपृक्त कृतियों का हिंदी में अनुवाद अलग-अलग भाषाओ को बोलने वाले जन-समूह में भावनात्मक सामीप्य स्थापित करता है और अपनी साहित्यिक-सास्कृतिक विरासत को संपूर्णता मे समझने की जमीन तैयार करता है। खास तौर से उर्दू से हिंदी मे अनुवाद की आज बड़ी ज़रूरत है। दोनों भाषाओ मे इतना समीपी संबंध है कि कभी-कभी तो लिपि का अतर ही एक भाषा के वुजूद को विभक्त कर देता है। हालांकि हर भाषा के पीछे उसकी संस्कृति और सामाजिक मूल्यों का सुदीर्घ इतिहास होता है, इसी तरह उसके साहित्य की अतर्वस्तु के भी विशिष्ट सस्कार होते है। इसलिए एक लिपि की बात कहकर इस समस्या से अवकाश नही पाया जा सकता। फ़ारसी लिपि की अपनी विशिष्टता है, अपना सौदर्य है। फ़ारसी लिपि को गैर ज़रूरी बताकर हम हिंदी-उर्दू को और अधिक नजदीक नही ला सकते। बल्कि यह दोनों भाषाओ के साहित्य की महनीय विरासत के आदान-प्रदान से संभव होगा। जिस भाषा की रचनाओं से व्यक्ति को ऊर्जा और स्फूर्ति मिलेगी, उसमें उसकी आस्था बढ़ेगी और उसे जानने की उत्सुकता भी जागृत होगी। भावना के सौंदर्य को आत्मसात कर लेने पर भाषा का फ़र्क़ बहुत पीछे छूट जायेगा। लिपि का विवाद उठाने के बजाय हमें अनुवाद पर बल देने की ज़रूरत है।

प्रेमचंद ने कहा था : "उर्दू लिपि हिंदी से बिल्कुल जुदा है और जो

लोग उर्दू के आदी हैं, उन्हें हिंदी लिपि का व्यवहार करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता। अगर जबान एक हो जाये, तो लिपि का भेद कोई महत्त्व नही रखता।" जहां तक साधारण जन की बात है, यहा भाषा एक ही है। किसान-मजदूरो की भाषा में हिंदी-उर्दू का कोई विशेष फ़र्क नहीं है। लेखक जितना जनता से दूर हटता जाता है उतना ही भाषा का फर्क बढ़ता जाता है। इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि उर्दू का लेखक कुछ विशिष्ट भावो की अभिव्यक्ति के लिए अरबी-फारसी के क्लिष्ट शब्दों का व्यवहार कर सकता है। यही बात हिंदी के लेखक के साथ भी है। बहुसख्यक जनता से जुड़ाव के साथ ही हिंदी या उर्दू में सरलता आ सकती है। इस सरलता के आने पर हमारी चिंता के केंद्र मे लिपि नहीं रहेगी।

राष्ट्र-भाषा के रूप में हिंदी के प्रचार-प्रसार की बात आती है तब उर्दू के भविष्य का सवाल भी उठ खडा होता है। शासक वर्गों की यह नीति रही है कि वे दो भाषाओं को एक दूसरे के खिलाफ़ खड़ा करके राष्ट्र-भाषा की बात करते हैं। यदि वे उर्दू को कही प्रोत्साहित भी करते हैं तो उसके बोलने वाले समुदाय को कृतज्ञ करने की नीयत से ही करते हैं। उनकी विचारधारा के प्रतिनिधि लेखक-बुद्धिजीवी उर्दू को राष्ट्र की एकता व अखंडता मे बाधा के तौर पर लेते हैं और साम्राज्यवाद की गुलामी की प्रतीक अग्रेजी की ओर से आखें मूदे रहते है। हिंदी के सपर्क-भाषा के रूप मे विकास मे उर्दू बाधा नहीं है, इसकी जड़ तो हिंदी व अग्रेजी की दोहरी शिक्षा-नीति मे है। न केवल हिंदी और उर्दू बल्कि समस्त भारतीय भाषाओं को समर्थ बनाते हुए एक अतर्भाषायी संवाद की जरूरत है। शासक वर्ग इसकी जरूरत सम्मेलनो और उत्सवो तक ही अनुभव करते हैं। आज कई प्रातो मे उर्दू को दूसरी भाषा के रूप मे रखा गया है और उर्दू अकादमिया भी खोली गयी है। पर इस प्रक्रिया के लिए स्वीकृत बजट अन्य मदो से कितना कम है? क्या ये अकादमिया जनता तक पहुच सकी हैं? अत. भाषा के स्तर पर व्यापक जन-समुदाय को एक-दूसरे के नजदीक लाने का प्रयास हमारा महत्त्वपूर्ण जनवादी कार्यभार है। यथार्थ के दबाववश जनता स्वयं अपनी एक सपर्क-भाषा बनायेगी, कोई सरकार या सस्था नहीं।

इस दिशा में अभी हमने बहुत कम बल्कि न के बराबर प्रयास किये हैं। हम उर्दू साहित्य की प्रगतिशील परपरा से पूरी तरह परिचित नहीं हुए हैं। प्रगतिशील आंदोलन के पहले उभार के दौरान उर्दू लेखकों का महत्त्वपूर्ण अवदान रहा है। उस दौर की उर्दू पत्र-पत्रिकाओं मे अनेक दस्तावेज़ छुपे पड़े हैं जिनसे गुज़रने पर हम अपने आंदोलन के ऐतिहासिक विकास को बेहतर तरीके से जान-समझ सकते हैं, जन-जीवन पर उसके व्यापक प्रभाव से वाकिफ़ हो सकते हैं। समकालीन सर्जनात्मक लेखन को लेकर तो हम एक दूसरे से और भी अजनबी बने हुए हैं। ज़ाहिर है कि इस अजनबीपन को बहुत हद तक अनुवाद से दूर किया जा सकता है। उर्दू के प्रख्यात प्रगतिशील कथाकार काजी अब्दुससत्तार के उपन्यास 'गालिब' के अनुवाद के मूल में मेरी मानसिकता पर इस जरूरत का दबाव रहा है।

यह उपन्यास मानवीय चेतना को सत्ता के दबावो से मुक्त करने के पक्षधर शाइर गालिब के जीवन की हृदयद्रावक त्रासदी है। गालिब ने टूटते हुए पुराने मामंती ढांचे और नयी उपनिवेशवादी व्यवस्था दोनों को नज़दीक से देखा था और दोनों के प्रभावों को बहुत शिद्दत के साथ महसूस किया था। क़लम की आज़ादी न वहां थी, न यहा। उनके सम-कालीनो का हश्र उन्होने देख लिया था कि किस तरह से दरबार उनकी शाइरी को समाज की धारा से विच्छिन्न करते जा रहे हैं। दरबारो मे खुले हुए 'अशआर के दफ़्तरों' मे बैठकर लिखना उनकी रचनाशीलता को गवारा नही था। उन्होने अपनी जिन्दगी मे सत्ता से समझौते के बजाय सघर्ष का रास्ता अपनाया। परिस्थितियों के हाथों अपना बलिदान करके भी वे अपनी सघर्ष-गाथा लिखते रहे। 'लिखते रहे जुनू में हम हालाते खूचकां/हरचद जब कि हाथ हमारे कलम हुए।' उन्हे अपने हाथ कलम कराना स्वीकार था किंतु अपनी चेतना को शाही दरबार मे गिरवी रखना असह्य था।

'गालिब' उपन्यास एक शाइर की जीवनी नही है। बल्कि यह गालिब के जीवन के सूक्ष्म और अनदेखे पक्षों की सवेदनात्मक और भावपूर्ण अभि-व्यक्ति है जिनके रहते हुए वे एक महान् शाइर और इंसान बने रहे। यह जीवन-वृत्त का तथ्यपरक संकलन नहीं है। काजी अब्दुस्सतार ने गालिब

के सोच, सस्कार और किसी भी मुद्दे पर 'रिएक्ट' करने के ढंग को बड़ी बारीकी के साथ व्यजित किया है । प्रेम और संघर्ष के दो विन्दुओं के बीच से एक ऐसे जीवंत और विश्वसनीय चरित्र को उभारा है जिसकी तस्वीर उर्दू मे लिखी गयी ग़ालिब की जीवनियो मे नही मिलती। उपन्यासकार ने इस चरित्र के ज़रिए उत्कृष्ट सामाजिक मूल्यों को तरजीह दी है जिनके लिए ग़ालिब अपने जीवन के अंतिम क्षण तक संघर्ष करते रहे। ग़ालिब के विरोधी पात्रों के ज़रिए शासकवर्गीय मूल्यों को भी उभारा गया है, किंचित् बदले हुए रूप में जिनकी गिरफ़्त को अपनी चेतना पर हम आज भी महसूस कर रहे हैं।

ग़ालिब के संपूर्ण जीवनवृत्त के ब्यौरे देना काज़ी साहब का उद्देश्य नही रहा है। चुगताई बेगम के प्यार और अपनी पेंशन के दर्द को लेकर वह एक महफ़िल में लाल महल जाता है। इस संदर्भ के साथ उपन्यास की शुरुआत होती है और जुए के मुकदमे मे गवाहो के पलट जाने की घटना के साथ समाप्ति। ग़ालिब की ज़िंदगी रोशनी के इंतज़ार की कहानी है। यह रोशनी एक ऐसे सामाजिक परिवेश का प्रतीक है जिसमें मानवीय प्रतिष्ठा की सुरक्षा हो सके और मनुष्य की रचनात्मक सभावनाओ के निर्बाध विकास का अवसर मिल सके। रोशनी की यह जुस्तजू उनकी कलम पर धार रखती रही और इस रोशनी का इंतज़ार उनकी ज़िंदगी का पर्याय बन गया। पूर्व स्वीकृत पेंशन मे कटौती हुई, दिल्ली कॉलेज की प्रोफ़ेसरी ठुकराई, 'वज़ीफ़ा ख़्वार' बने, तुर्क बेगम का साथ छूटा, बुढ़ापे की लाठी आरिफ़ ऐन बुढ़ापे में छूट गयी। वह रोशनी—वह ज़िंदगी तो भी दूर और दूर होती जाती रही। अब भी वही जुस्तजू, वही इंतज़ार। काज़ी साहब ने ग़ालिब के इस आत्म-संघर्ष को बहुत गहरे मे जाकर और आत्मसात् करके प्रस्तुत उपन्यास मे अभिव्यक्ति दी है।

'ग़ालिब' से पूर्व काज़ी साहब के 'दाराशिकोह' का अनुवाद मैं कर चुका हूं। इस अनुवाद को जहा मित्रो और पाठकों द्वारा सराहा गया है वहीं कुछ मित्रो ने आत्मीयतावश अनुवाद को सरल बनाने की दिशा मे महत्त्वपूर्ण सुझाव भी दिये है। सुझावो मे मुख्य बात यह है कि अनुवाद हिंदी पाठक के लिए है इसलिए पाठ मे अधिकाधिक शब्दो के हिंदी पर्याय दिये

जाने चाहिए। 'दाराशिकोह' पढ़कर आदरणीय राजेंद्र यादव ने मुझे लिखा था . "दाराशिकोह मैंने पढ लिया है। मगर लगता है कि जिन उर्दू शब्दों को तुम बेहद सरल समझते हो, वे हिंदी वालों के लिए अजहद कठिन लगेंगे। अक्सर मुझे यह भ्रम हुआ है कि तुमने सिर्फ लिप्यतरण किया है। उपन्यास तो अच्छा है ही।" 'गालिब' के अनुवाद मे मैंने इन हिदायतों का पूरा-पूरा ध्यान रखा है। फिर भी बेशतर स्थलों पर मैं उर्दू मुहावरों को यथावत देने का लोभ-संवरण नही कर सका हू। युगीन परिवेश और पात्रों के मानसिक रचाव से जहा तक संगति बैठती है, वही तक हिंदी पर्याय दिये गये हैं। यह अलवत्ता है कि अरबी-फारसी के क्लिष्ट शब्दो के स्थान पर प्राय· उर्दू के प्रचलित शब्दों का व्यवहार किया है। जो क्लिष्ट शब्द उपन्यास की आतरिक सरंचना मे अपरिहार्य लगे है, पाद-टिप्पणी में उनका अर्थ दिया गया है। वातावरण की रक्षा की दृष्टि से वस्तुओ के नामों का अनुवाद स्वाभाविक न लगता। अत. उन्हे मौलिक रूप में ही रखा गया है।

मेरा यह प्रयास रहा है कि यह अनुवाद हिंदी पाठक समुदाय के लिए ग्राह्य और सहजगम्य बन सके। इस कार्य मे हुई असावधानियो से पाठक मुझे अवगत करायेंगे, ऐसी आशा है।

अनुवाद के दौरान उपयुक्त शब्दों को खोजने में अपने मित्र डॉ० राजकुमार शर्मा से हुई चर्चाओ से बहुत-बहुत लाभ हुआ है। अपनी सक्रियता से अपने साथियों को सक्रिय बनाये रखना उनका सहज स्वभाव है। इसी तरह 'ऐवान-ए-गालिब' के श्री शाहिद माहुली ने उपन्यास मे प्रयुक्त साहित्य-कला से सबधित पारिभाषिक शब्दावली को समझने मे यथासंभव मदद की है। उनके प्रति हार्दिक आभार।

—जानकीप्रसाद शर्मा

दिल्ली के आकाश पर शाहजहानी मस्जिद अपने मीनारों के अज़ीम हाथ बुलद किये वह दुआ मांग रही थी जिस पर कुबूलियत के तमाम दरवाजे बंद हो चुके थे। पश्चिम के नीले आकाश के विस्तार में सुर्ख सूरज एक लहू-लुहान संस्कृति की तरह डूब चुका था। महल सराओं के घुमावो पर खडी हुई छतरियो पर भूले-भटके कबूतर उतर रहे थे जैसे बदनसीब कौमों पर उनके मसीहा उतरते है और उनको पुकारने वाली आवाज़ों से सन्नाटा फूट रहा था। एक मुगलई मेहराब पर लरजते हुए रेशमी परदे के पीछे कदील की मध्यम रोशनी उसकी तारीक दीवार पर उजाले की चटाई-सी बिछाती और उठा लेती। उसी मलगजे अधेरे में वह अपने छोटे-से दालान के बड़े से तख्त पर तकिये से पुश्त लगाये रोशनी का इतज़ार कर रहा था। रोशनी का इंतज़ार तो जैसे उसका मुकद्दर हो चुका था। बचपन से बुढ़ापे तक सारी ज़िदगी···तमाम रात आंख मिचौली करती रही, बह-लाती रही। सामने आबनूस की कश्ती में तले हुए बादामो की तश्तरी के पास अकबराबादी गुलाब और पुर्तगाली शराब के शीशे अपने होठों पर मुहरें लगाये खड़े थे और वह इंतजार कर रहा था कि ज़ीना एक कद्दे आदम तसवीर के सफेद लिबास से भर गया···

-"कौन ?"

"सुनावनी है मीरज़ा साहब।"

"सुनावनी ?" वह सर से पाव तक काप कर गया फिर अपना वुजूद समेटकर तख्त मे उठा और नगे पाव चला। ऊंची सफेद गोल टोपी, नीचा ढीला कुर्ता और ऊंचा पायजामा करीब आ गया सफेद दाढी, सफेद मूछें, सफेद लटें और करीब आ गयी···मंगल शाह की आखें और बड़ी हो गयी।

"कुछ मुंह से बोलिये शाह साहब!"

जब सांस काबू में आया तो मगलशाह के मुह से अल्फ़ाज़ निकले जैसे ज़ख्म से खून निकलता है :

"आपकी दिल्ली जो रगून मे कैद थी छूट गयी—हर कैद से छूट गयी !"

"पीरो-मुर्शद !"

उसने कधो पर अलबान बराबर कर लिया कि अचानक कपकपी-सी महसूस हुई थी। जब खामोशी बूढी होने लगी तो मगलशाह घुटनो पर हाथ टेककर खड़े हो गये।

"इक जरा ठहर जायें शाह साहब। मुलाज़िम रोशनी लेने गया है।"

"दो-एक दिल्ली वाले और भी हैं मीरजा साहब जिनको पुरमा[1] देना है।"

"लेकिन इस अधेरे मे आप···"

"अंधेरा हुए तो मुद्दतें हो गयीं मीरज़ा साहब ! अब तो कब्र के अंधेरे से भी डर नही लगता।"

शाह साहब दीवार के सहारे से सीढियां उतर रहे थे और वह दूर से आती आवाज़ो की सीढ़ियों पर बुलद हो रहा था—अपने-आप से गुज़रा जा रहा था। अपना तमाशा तो वह कितनी ही बार देख चुका था लेकिन आज पूरा जहाबाद (दिल्ली), पूरा हिंदोस्तान गंजफे की पत्तों की तरह उसके सामने ढेर था।

बहुत दिन हुए बरसात की लड़खड़ाती गीली गुलाबी शाम मे कल्लू ने चिलमन के पास आकर अर्ज किया था,

"नवाब साहब फर्रुखाबाद का चोबदार हाज़िर होना चाहता है।"

"बुलाओ !"

1. बीमार की खबरगीरी

फिर एक लंबा अधेड आदमी कमर में सब्ज पटका बाधे चादी की मूठ वाली सुर्ख लकडी हाथ मे लिए सलाम कर रहा था।

"आला हज़रत लाल महल मे हुज़ूर के मुतज़िर हैं"'अगर हुज़ूर सवार होना चाहें तो सवारी हाज़िर है।"

"सवारी पर इतजार करो।"

लाल महल के फाटक पर सब्ज टान की वर्दियां पहने बरकदाज़ों के दस्ते के अफ़सर ने फिटन[1] का दरवाजा खोला और पेशवाई करता फाटक के छत्ते तक ले गया। वहां से नवाब का खास मुहाफिज खजर बेग साथ हो लिया।

दोहरे दालान के सामने ऊचे चबूतरे की सीढ़ियो पर कदम रखते ही नाच बजाने वाले साज़ की आवाज ने कानो पर जन्नत के दरवाज़े खोल दिये। गुर्गाविया उतारने के लिए ठिठका तो जैसे झूम गया। लयकारी की की सतह से उठती हुई निस्वानी आवाज़[2] के शोलों ने उसके हवास चका-चौंध कर दिये। दरवाज़े पर कलाबत्तू के मोतियों की चिलमन पडी थी उसने दालान के गुजराती कालीन पर पांव रखा था कि चोबदार ने सदा दी,

"नवाब मीरजा असदुल्लाह बेग खां साहब!"

"तशरीफ लाइये"'सरफराज़ कीजिये!"

नवाब तजम्मल हुसैन खां पायंदाज़ पर खड़े थे। भरी हुई घुघराली स्याह दाढी, बांक की तरह खिची हुई भौहों की छाव मे बिघती हुई काली आंखें, सिर पर चार गोतियों का मुगलिया ताज, बर मे गगाजल का खफ़्तान[3], उसके दामनो के नीचे ऊदे मशरू का गज-गज भर के पायचो का पायजामा, कसी हुई कमर ज़रा-सी खम, आस्तीनों से झाकती गोश्त से लदी कलाइयां तस्वीरो के-से हाथ खोले मुतज़र थी। नवाब बगलगीर हुए कि फिर उसका बाया अपने दाहिने हाथ में ले लिया। दो जोड़ मुअद्दब हाथो मे सिमटी हुई चिलमन की मेहराब से दोनो अंदर आ गये। तमाम छत फानूसो से सजी थी। फ़र्श की बेदाग़ चादनी के दोनो बाजुओ पर इस्तंबूली कालीन पडे थे। बीच मे बालिश्त भर ऊची हाथी-दात की सदली

1. एक किस्म की चौपहिया गाडी 2. महिला-स्वर 3 सिपाहियो के पहनने का एक विशेष कोट

पर बनारसी मसनद लगी थी। जिस तरफ निगाह उठती कारचोब पर्दों, जर-निगार ताको, जडाऊ तफरो[1] और सीमी हाशियों के कद्दे आदम आईनो से चकाचौंध हो जाती। नवाब ने उसे अपने पास ही बिठा लिया। खानम सुल्तान ने दूसरा तकिया उसकी पुश्त मे लगा दिया। सामने नामी-गरामी साजिदो के हाले मे नाजुक अंदाम और कमसिन चुगताई जान मुजरा कर रही थी। कता की सुर्ख पशवाज़ पर क्से हुए चुस्त पटके ने कमर और महीन कर दी थी, सीना बुलद और कूल्हे भारी-से हो गये थे। सिर उठा तो जडाऊ टीके का हीरा झमझमाने लगा और साज़ो पर कलावंत की उगलिया जैसे सोते-सोते जाग उठी। साथ ही उसके बाज़ू पर फूलो की डाली रग गयी। गर्दन घुमायी। एक लोडी बेगमो की तरह सजे हुए हाथों मे चादी का तबाक लिए घुटनो पर खडी थी और उसकी सांसो से इत्रे-सुहाग की खुशबू आ रही थी और नवाब का हाथ इसरार कर रहा था। उसने तबाक से पिघली हुई आग का आबगीना[2] उठा लिया। चुगताई जान ने तान ली तो जैसे तमाम रोशनियां शरमा गयी। महसूस हुआ जैसे कानों से जिगर तक एक तीर तराजू हो गया। कसौटी की सिल पर कुदन की लकीर-सी खिच गयी। फिर उसकी तानो से लफ्ज़ उभरने लगे जैसे सितारे उभरते है। वह गा रही थी—उसकी गज़ल गा रही थी। उसकी गज़ल को अपनी आवाज़ की खिलअत पहना रही थी। चुगताई जान, जिसकी आवाज़ किला-ए-मुबारक से कला बहादुर की कोठी तक यकसा खिराज वसूल कर रही थी, उसकी गजल गा रही थी। वह थोडी देर खुशी से बदहवास बैठा रहा फिर एक ही घूंट मे आबगीना खाली कर दिया। सारा वुजूद सुर्खाब के पर की तरह हल्का हो चुका था। अपनी निगाह मे कीमती हो चुका था। मुल्कुल शौरा ज़ौक और उनके शागिर्द और खुशामदी हकीम आगा खां 'ऐश' जैसे हासिद[3] उनके यार और चापलूस सब हकीर हो चुके थे, हेच हो चुके थे। आख खोली तो चुगताई जान उसके सामने बैठी भाव बता रही थी—नही उनकी भौहे सिरोही को जान लेने के सबक दे रही थी। आंखें स्याही-सफेद और तुलू-ओ-गुरूब[4] की दास्तानें सुना रही थी। हथफूलो के

1 विजय-चिह्न 2 बोतल, बारीक काच का शीशा 3 ईर्ष्यालु 4. उदय और अस्त

सच्चे जड़ाऊ पर हंसती हुई उंगलियो की याकूती चुटकी ज़मीनो-आसमान के ममले हल कर रही थी। गर्दन का हल्का-सा ठहरा खम कायनात के पूरे वुजूद पर भारी था। फिर वह उठी जैसे फूल से खुशबू उठती है। वह लहरें लेती हुई दूसरे आसन पर पहुंची थी कि नवाब ने पहलू से अशर्फियों का तोड़ा उठाकर नजर कर दिया। सलाम किया तो इस तरह कि रुख उधर था और आख इधर। फिर वह आहिस्ता-आहिस्ता घुमेरिया लेती रही फिर साजों की आवाज के साथ-साथ उनके चक्कर तेज़ होते गये। तेज़ होते गये कि टके हुए मोतियों से पशवाज के भारी दामन उठने लगे। उठते-उठते कमर के बराबर आ गये। सुर्ख रेशमी जेरजामा बिजलियों को अपने-आप में समेटे गर्दिश करता रहा और वह सब कुछ, जो मौजूद था, उसके एक वुजूद तक महदूद होकर रह गया। अभी वह तस्लीम कर रही थी कि चोबदार की आवाज बुलंद हुई :

"चिरागे दूदमान तैमूरी" साहबे आलम सानी"'आला हज़रत सिराजुद्दीन मोहम्मद जफर !"

सारी महफिल खड़ी हो गयी। नवाब ने सदली से उतरकर तीन सलाम किये और हाथ बाध लिये। खानम सुल्तान ने कोरनिश अदा करके चांदी के थाल से गगा-जमनी गुलाबपाश उठाकर शाहज़ादे के दामन मुअत्तर किये। हुस्नदान से मुश्क ने निकल कर आस्तीनों को बोसा दिया और हाथ जोड़कर खानम सुल्तान ने अर्ज किया :

"साहिबे आलम ने फरमान भेज दिया होता"'लौंडी दरे दौलत पर हाज़िर हो जाती।"

"सवारी का इधर से गुज़र हुआ तो चुगताई जान की आवाज़ ने बाज़ू पकड़ कर उतार लिया।"

चुगताई जान तसलीम को झुक गयी। नवाब ने दोनों हाथो से पेश-वाई की और संदली पर बिठा दिया। नवाब का एक खादिम पंखा हिलाने लगा दूसरा चवर लेकर गाव के पीछे खड़ा हो गया। शाहज़ादे के इशारे पर वे दोनो उसके दाहिने बाज़ू पर बैठ गये। बायी तरफ खानम सुल्तान घुटनो पर बैठ गयी। चुगताई जान ने दस्तबस्ता इजाज़त मागी। शाह-ज़ादे ने दाहिना हाथ उठाकर इजाज़त के साथ हुक्म दिया :

गालि॰

"वही गजल सुनाओ जो सुना रही थी।"

और चुगताई जान ने पूरे 'बनाव' और 'सजाव' और 'चढ़ाव' के साथ गजल छेड़ दी। और साज़ों की आवाज़ के झुरमुट से वही आवाज़ उदित हुई जिसके लफ्ज़-लफ्ज़ पर जान कुर्बान कर देने को जी चाहने लगता जैसे ज़मीनो-आसमान के दरम्यान उसकी आवाज़ के सिवा जो कुछ भी है नाक़ाबिले ऐतना[1] है और जब उसने यह शेर अदा किया :

दिया है शाह को भी ता उसे नज़र न लगे

बना है ऐश तजम्मल हुसैन खा के लिए···तो ज़फर ने पूरी आखें खोलकर नवाब को देखा। नवाब ने खड़े होकर सीने पर हाथ बाध लिये और अर्ज़ किया :

"साहिबे आलम! चुगताई जान शाइरा है उसने ग़ालिब के मिसरे मे ज़रा-सी तहरीफ़[2] कर ली है। मिसरा था—दिया है ख़ल्क को भी ता उसे नज़र न लगे।"

ज़फर ने चुगताई जान को देखा जो लहरें ले रही थी और आहिस्ता से कहा, "ख़ल्क का हाथ इतना दराज़ हो गया कि शाह की गर्दन तक पहुंच गया। माज़ अल्लाह माज़ अल्लाह।"

नवाब के गुलाबी चेहरे पर एक परछाईं-सी आकर चली गयी। चुगताई जान खुद अपनी आवाज के नृत्य और बदन के संगीत के नशे मे मस्त दरो-दीवार तक से बेनियाज नृत्य-संगीत की देवियो से दाद वुसूल करती रही। गजल खत्म हुई तो जैसे अधेरा हो गया। शाहज़ादा खड़ा हो चुका था। अबरुओं की जुंबिश से सलाम कुबूल किये और तीर की तरह बाहर निकल गया और बूचे पर सवार होकर निगाह उठाई गोया झुकी हुई गर्दन की कोरनिश कुबूल हुई।

महफिल फिर आरास्ता हुई। सब वही था। साज़ों पर हरकत हुई वही बेनज़ीर उंगलिया जिनके छूने से चिंगारिया निकलने लगें। वही बेमिसाल चुगताई जान महज़ जिनका गला सुर-सागर था और जिनके पाव की ठोकर से रक़्स की जन्नत के दरवाजे खुलते थे लेकिन नवाब के हवास का जायका

1 जो सहानुभूति के योग्य न हो। 2 संशोधन

बदल चुका था; कड़वा हो चुका था आबगीनों में जैसे विलायत की शराब नहीं खारी बावली का पानी भरा हो। घड़ी भर में सारी महफ़िल बासी हो गयी। दूसरी ग़ज़ल होते ही मिज़ाज आशना खानम सुल्तान हाथ बांध कर खड़ी हो गयी।

"हुक्म हो तो दस्तरख्वान लगाया जाये।"

नवाब जो दुल्हन की चूड़ी की तरह सजी हुई सटक से खेल रहे थे कहीं दूर से बोले, "बेहतर है" और पहलू बदल लिया। अभी खानम सुल्ताम कमरे ही में थी कि नवाब का खबरदार हाज़िर हो गया। नवाब ने उसे देखते ही भौंहें समेट ली।

"सरकार आला तबार का इकबाल सलामत।" नवाब सीधे होकर बैठ गये और हुंकारे,

"कहो?"

"वली अहदे सल्तनत खुल्द आशिया[1] हो गये!"

"मीरज़ा फखरू! इन्ना इल्लाहे···" और सदली से उछल कर खड़े हो गये।

"किला-ए-मुबारक के दोनों दरवाज़ों पर मातमी धुनें बज रही हैं और शहर में तहलका मचा है।"

"जोड़ी लगाओ हम अभी सवार होंगे।"

एक खिदमतगुज़ार ने दीवा-ए-रूमी के चगे की आस्तीनें खोल दी। नवाब ने हाथ डाल दिये। चुगताई जान ने दोनों हाथों में तलवार संभाल कर पेश की। खानम सुल्तान के इशारे पर एक लौंडी ने गुर्गाबिया पायंदाज़ पर रख दी। सांजिदे तस्वीरों की तरह मौन थे कि नवाब के अर्दल का अफ़सर कमर में तमंचो की जोड़ी लगाये चिलमन के सामने आकर खड़ा हो गया।

1. दिवगत

फिर नरी के जूतो की मानूस चाप और रोशनी से ज़ीना भर गया। मियां कल्लू ने चिराग को उसके मुकाम पर रख दिया और उल्टे पैरों वापस हो गये। उसने तश्तरी से बादाम उठाकर मुह मे डाल लिया। गुलाब के शीशे की मुहर तोडकर आधे से ज्यादा प्याला भर कर ओल्ड टाम की बोतल से लबरेज़ किया। कापते हाथो से प्याला उठाया तो जैसे तुर्क बेगम की आंखें छलक गईं। उसने होंट चूमकर प्याला रख दिया। गाव से पुस्त लगा आखें बद कर ली। सामने ज़िदा गालिब खड़ा था। हां, बुढापे का एक नाम मौत भी होता है। दराज़ क़द, गठा हुआ बदन, चपई रग ऐसा कि चेहरे पर जहा हज्जाम का उस्तरा लगता, सब्ज़ी-सी चमक जाती। शराब से मिची हुई नशीली आखें कि नहाकर निकलता तो लाल-लाल डोरे तैरने लगते। खड़ी नाक के दोनो तरफ दूर तक खिंची हुई घनी स्याह भौंहे, अकबरी हाथ कि बीच की उगली घुटनो के उभार तक पहुच जाती। सब्ज़ मशरू के पायजामे के पायचो से पैर बाहर निकलते तो बडी-बड़ी तनाज़[1] आखें गढ जाती। तुर्क बेगम ने कैसा तडप कर कहा था कि 'आप के पांव तो रक्कास[2] के पाव हैं···'

कैसी भरी बरसात की कितनी खूबसूरत दोपहर थी। आसमान में जामनी बादलो के शामियाने लगे थे जैसे सूर्यास्त का समय हो गया हो। नम खुनक हवा की मौजो से मस्ती टपक रही थी जैसे साकी-ए-फितरत[3] ने एक-एक मौज को शराब मे डुबो दिया हो। बारह की तोप चले देर हो चुकी थी वह तनसुख के कुरते पर जामदानी की नीम आस्तीन और सब्ज़ गुलबदन का पायजामा पहने पानी के सास लेने का इंतज़ार कर रहा था लेकिन पानी था कि एकसा बरसे जा रहा था और वह उसी पानी मे महल सराय की तरफ चल पडा। ड्योढी मे निकलते ही उमराव बेगम ने टोका, "अल्लाह! आपने आवाज तक न दी।"

और वह सुनी-अनसुनी करता पूरा महन पार करके सदर के दोहरे दालान पर चढ गया। फर्श···जैसे यहा से वहा तक बीर बहूटिया बिछा दी गयी हो। मसनद के कालीन भी उठा दिये गये थे लेकिन गाव तकिये

1. चचल, चालाक 2. नर्तक 3. प्रकृति-वाला

के टोल नये गिलाफ़ पहने अपनी-अपनी जगह मौजूद थे। एक सेहनची मे अंगीठियां दहक रही थीं और पकवानो की खुशबुओं से पूरा दालान भरा पडा था। एक तरफ की कतार तिनको के सरपोशो पर सुर्ख पोशिशें पहने चुनी थीं और लडकियों और औरतों का झुरमट उमड रहा था। बेगम ने उसे तौलिया देते हुए चुपके से कहा और मीठी-मीठी नज़रों से देखा।

"क्या देख रहे हैं आप इस तरह ?"

भीगे हुए झीने हरे कुरते से उनकी देह के उभार झलक रहे थे और जल्दी मे ओढ़े हुए सब्ज़ रेशम के दोपट्टे के हाले मे उनका चेहरा लाल भभूका हो रहा था।

"कुछ नही बस यह देख रहा था कि इस बच्चे की पैदाइश ने आप पर कितने मन रूप उंडेला है।"

"अल्लाह !" और वह उसके हाथ से तौलिया झपटकर सेहनची मे घुस गयी जहां तुर्क बेगम छुपी हुई थी।

"तुर्क बेगम आपकी खिदमत मे आदाब पेश कर रही हैं।" बेगम ने सेहनची से इत्तला दी। ···तुर्क बेगम···मरहटा फ़ौज के जवानमर्ग ईरानी रिसालदार की कमसिन बेवा जिनकी गजलें वह पूरे एक साल से बना रहा था। तुर्क बेगम की तहरीर के दायरे मेहबूबों के गैसुओं के हल्को की तरह कातिल, और मरकज़ मेहबूबो की चाल की तरह तिरछे होते और जिसके अशआर की ज़मीन से दर्द की खुशबू-सी उठती रहती।

"बेगम साहब फरमा रही हैं कि हम तुर्क बेगम से माफी मागें लेकिन तुर्क बेगम हम आपको शर्मसार नही करना चाहते। आपको मालूम है कि हिंदोस्तान की मुसलमान औरतो मे कोई शाइरा मीराबाई का मरतबा न पा सकी। आपने सोचा है क्यों ?···इसलिए कि किसी मुसलमान औरत ने मीराबाई की तरह गुरु के चरणों मे बैठकर विद्या नही सीखी। इल्म, ज़ुबान, बदी-ओ-बयान[1] के नाज़ुकतरीन ममलो को सिर्फ ज़ुबान ही नही हल करती। आख की हरकत, अबरू की जुंबिश और लहजे के उतार-चढ़ाव का भी बड़ा हिस्सा होता है। आप यह पर्दा जो कर रही हैं ये इस्लामी

1. व्यंजना-शैली

पर्दा नही है वरना अरब औरतें न मैदाने जंग में तलवार चलाती न जख्मों का मरहम बीनती। ये पर्दा हिंदुस्तान के हिंदुओं का पर्दा है जो उन्होंने मुसलमान लुटेरो से अपनी इज्जत बचाने के लिए मजबूरन ओढ़ लिया था। आप मेरी बात सुन रही हैं तुर्क बेगम !"

"जी सर से पाव तक समाअत हूं।"

ज़िदा खरजदार आवाज़, हड्डियो में उतरे हुए गम में शराबोर अपने-आप पर आत्म-विश्वास से धडकती हुई।

"आपको मालूम है हम मुसलमानों ने दीन के आलिमों की हुरमत के लिए अपने बादशाहो के ताज उतार दिये लेकिन दुनिया के आलिमो को बकरे की ओझडी पकाने वालो से भी हकीर जाना। नतीजा यह हुआ कि दुनिया का इल्म हमारे हाथ से फिसलता चला गया। दुनिया हमारे हाथ से निकलती चली गयी। यही नही बल्कि दीन भी हमारी मुट्ठियो की गिरफ्त मे नही रहा। हम भूल गये कि मुसलमान के लिए दीनो-दुनिया एक ही सिक्के के दो रुख हैं। आपने गुरु दक्षिणा का नाम सुना है तुर्क बेगम !"

"जी···जी नही !"

महाभारत के नायक और राजा युधिष्ठिर के भाई अर्जुन के गुरु द्रोणाचार्य ने जब देखा कि उनका एक भील शागिर्द फन्ने तीरदाजी मे फ़ज़ीलत[1] रखता है तो उन्होंने अपने भील शागिर्द से गुरु दक्षिणा मे उसका दाहिने हाथ का अगूठा माग लिया और उस शेर दिल ने अंगूठा उतार कर गुरुदेव के चरणो मे डाल दिया। आप जानती होंगी इसानों और जानवरो के दरम्यान फ़र्क का एक नाम अगूठा भी है। इसानी तहजीब की आधी कमाई इसी एक अगूठे के गिर्द घूमती है, तो हम यह अर्ज़ कर रहे थे कि आप हमारी शागिर्द है और हम आपके गुरु है तो कम-अज़-कम गुरु दक्षिणा ही के नाम पर आप हमसे अपना पर्दा उठा दीजिये।"

"समझ गयी तुर्क बेगम इस लबी-चौडी तकरीर का मतलब क्या है ?" उमराव बेगम ने चमक कर कहा।

1. दक्षता

पहलुओं के दोनों दालानों के किनारे के दरों मे रंगी-चंगी रसियों के झूले पडे थे। लड़कियां-बालियां झोटे ले रही थी और छाजों बरसते पानी की बौछारों मे भीग रही थी और उनके तेज रगों के कपड़ो से हर तरफ़ चमन से खिले हुए थे। और सदर के दोनों दालान के बीच में दस्तरख्वान सज रहा था। गर्म-गर्म नमकीन और खट्टे-मीठे पकवानों के तबाक उतर रहे थे और कावें सज रही थी और मिया घम्मन की दुल्हन और जी वफ़ादार ने सबको बुलाकर दस्तरख्वान पर बिठा दिया था। फिर उसने देखा कि सेहनची के दर से नूर के साचे में ढली एक जिंदा मूरत निकली और उमराव बेगम के पहलू में बैठ गयी। डहडहाते रगों के ढेर में वह सफ़ेद उरेबी पायजामे, सफ़ेद कुर्ते, सफ़ेद शलूके और सफ़ेद ही दोपट्टे मे आसमानी मखलूक मालूम हो रही थी जिसे सज़ा के तौर पर दुनिया के अजायबख़ाने मे भेज दिया गया हो। सोने के तारों की तरह चमकते हुए ढेरो बालो, सुर्ख़ी लिए हुए सुनहरे बालों की मोटी-मोटी बग़ैर सजी चोटी उसके दाहिने पहलू पर पड़ी थी। न हाथों मे मेहंदी, न दांतों मे मिस्सी, न होंठों पर पान की घडी, न आंखों में सुरमे की लकीर, न हाथो मे कच्ची नखें, न पावों में पाज़ेब। जेवर के नाम पर दाहिने हाथ की लंबी उंगली में नन्हे-से हीरे की अंगूठी के सिवा कुछ भी नहीं था लेकिन वह सब कुछ था जिसे हम सादगी-भरा सौंदर्य कहते हैं। उसने देखा तो देखता रह गया जैसे नज़रें काबू से निकल गयी। अपने-आपसे बेगाना हो गयी। वह सिर से पांव तक सुन्न हो चुका था। जुबान ज़ायका भूल चुकी थी। वह निवाले इस तरह मुह में रख रहा था जैसे हलवाई दौने मे मिठाई रखता है। लड़कियों के चहचहे और बेगमो के क़हकहे किसी दूसरे देश की आवाज़ें थी जिनसे उसके कान बोझिल थे। फिर उसके सामने जी वफादार ने एक ख्वान लाकर रख दिया। जिसमे अंदरसे की गोलियों का थाल, सब्जो-सुर्ख़ चुनरियो का ढेर और हरी-लाल नखो के लच्छे रखे थे। वह देख रहा था लेकिन नही देख रहा था। जी वफादार ने करीब आकर कहा,

"बेगम साहब के मायके से आया है।"

वह खामोश रहा तो जी वफादार ने पूछा, "आमों की लगन

लगाऊं।"

"नहीं।"

जी वफादार अगर इस वक्त तख्ते-ताऊस लगाने की इजाजत मांगती तो भी महरूम रहती। छोटे भाई मीरजा यूसुफ की दुल्हन ने खासदान पेश किया। एक पान इस तरह ले लिया जैसे अमीर दीनी महफिलों में तबर्रुक लेते हैं। तुर्क बेगम सफेद दोपट्टे के पल्लुओं से अपना आपा ढके इस तरह बैठी थीं कि सामने होने के बावजूद सामने नहीं थीं लेकिन उसकी तीसरी आंख के सामने उनके जिस्म का एक-एक खत एक-एक खम इस तरह खिला पड़ा था जैसे सामने लगा हुआ दस्तरख्वान। देर के बाद उनके दामने-समाअत पर जैसे मोती रोल दिये गये—वह उसे अपनी आवाज़ अदा कर रही थीं :

"जो ग़ज़ल आपने बनाकर दी थी वह सब्ज़ क़दम ने कहीं खो दी।"

जैसे रज़िया सुल्तान कह रही हो दिल्ली हमारे गुलामों ने खो दी।

"कोई हर्ज नहीं उसकी नक़ल भेज दीजिये मैं दोबारा बना दूंगा।"

"नकल ही तो हमारे पास महफूज़ नहीं!"

"हूं···जी वफादार ज़रा अपनी बेगम का कलमदान तो लाना।"

जी वफादार ने एक ताक़ से संदल का कलमदान और सदूकचा उठाकर सामने रख दिया और वह तुर्क बेगम की इस्लाह[1] की हुई पूरी ग़ज़ल याद करके लिखने लगा और खुद अपनी स्मरण-शक्ति की दाद देता रहा। तुर्क बेगम ने दोनों हाथों में कागज थाम कर मसते पर निगाह डाली तो जैसे निगाह जमकर रह गयी। वह एक-एक शे'र पढ़ती जातीं और कनखियों से उसे देखती जातीं। वे चोरी-चोरी की आधी-आधी निगाहें उसके अपने फ़न की ऐसी और इतनी मुकम्मिल तारीफ थीं कि उनके सामने नज़ीरी और अरफी[2] की तमाम शाही बख्शिशों की कहानियां हकीर मालूम होतीं। जब तुर्क बेगम खड़ी हुईं तो उनके कुर्ते के दामनों और दोपट्टे के पल्लुओं से छुपे हुए पांव उघड़ गये। सुर्खो-सफेद तंदुरुस्त तरशे हुए पांव जैसे सोने और चांदी को मिलाकर शाही जरगरों ने मुद्दतों

1. संशोधन 2. फारसी के दो प्रसिद्ध दास्तान गो

की रियाज़त के बाद गढ़ा हो और उन पर अकीक़[1] यमनी के नाखुन जड़ दिये हो। चुग़ताई जान जैसी वेनज़ीर रक़्कासा के सुडौल पैर उनके सामने लकडी की खड़ाऊं का जोडा मालूम हुए। जब वह जाने के लिए मुड़ी और उनकी ऐडिया नजर आई तो महसूस हुआ जैसे पायजामे की जोड़ियों के नीचे बीर बहूटियो के गुच्छे रखे हुए है। सैकडो पैरों में चमकने वाले इन पैरों ने ही तो उसे मजिले मकसूद के रास्ते पर डाल दिया था।

फूल वालो की सैर का ज़माना था। उमराव बेगम अपने मायके गयी थी कि राजा बलवान सिंह का भाई कुवर गिरधारी सिंह अकबराबाद से दिल्ली आ रहा था और उसे अपनी गाड़ी मे इस तरह चढ़ा लिया जैसे असबाब के बुकचे रखे जाते है।

आसमान पर बादलों का 'दल बादल' खड़ा था। वह मस्जिद कुव्वतुल इस्लाम के दरो-दीवार देखता हुआ छोटे-से मजार के पास आकर बैठ गया। दूर सरसब्ज़ टीलो के पास शाही हिरनों का जोड़ा सुर्ख पाखरें पहने दूब चर रहा था। वह उन पर नज़रें जमाये बैठा था कि स्याह बुर्कों की एक डार आराम पाइयां उतारने लगी और अचानक जैसे आखें रोशन हो गयी। स्याह पायचों मे वही पांव चमक रहे थे जैसे दो मशालें जल रही हों। जब वह फ़ातिहा पढ़ कर निकली और कुतुब मीनार की तरफ़ चली तो वह भी थोडे फासले से उन पैरों के निशानो पर अपने तलुओ से सजदे करता चलने लगा और उसकी समझदारी ने ताड लिया कि भारी नकाब मे छुपी हुई आखें उसे देख रही हैं। फिर वे पैर बूढे पैरो के एक जोडे के साथ ठिठकने लगे। फिर एक झुड फाटक की तरफ निकल गया और दूसरा कुतुब मीनार के दरवाजे मे अदृश्य हो गया और बुआ सब्ज़ कदम ने अपने बुरके की नकाब उलट दी और आहिस्ता-आहिस्ता उसकी तरफ चली। उनके सलाम के जवाब मे उसने कहा,

1. एक बहुमूल्य पत्थर जो कई रग का होता है

"बुआ सब्ज कदम अगर तुम नकाव न उलटती तो मैं तुमको किसी मशहूर ड्योढी की बेगम समझता रहता।" और बुआ के तवाक-ऐसे अधेड़ चेहरे पर गुलाबिया छूटने लगी।

"ऐ, मीरज़ा साहब आप भी!"

ख़फ्तान की जेब से एक रुपया निकालकर उनकी मुट्ठी मे बद कर दिया।

"बुआ, ज़िदगी मे पहली बार आपसे एक बात कहने को जी चाहता है।"

"बुआ की सात जानें कुर्बान आप पर से मीरज़ा साहब···आप फरमाइये तो!"

"हमने ख्वाब देखा है कि आपकी बेगम के साथ कमाल जमाल की दरगाह मे फातिहा पढ रहे हैं। हमको मालूम है कि आपकी बेगम को कोई ऐतराज़ नही होगा, इसलिए कि वह हमारी शागिर्द हैं और शागिर्द भी ऐसी कि ज़ुबान नही खोलती।"

"और क्या मीरज़ा साहब उस्ताद की जूतिया भी शागिर्द अपने सिर पर रख ले तो कम है।"

"लेकिन ये जो दुनिया के कुत्ते हैं उनकी ज़ुबानें बस लटकी रहती हैं।"

"तो बुआ कोई सूरत निकालिये और आप ही निकाल सकती हैं।"

बुआ को मुद्दतो वाद अपनी अहमियत का एहसास हुआ तो झूम गयी और ऐतमाद के साथ बोली,

"ऐसा कीजिये मीरज़ा साहब कि आप चल रखिये मैं बेगम साहब को लेकर आती हूं लेकिन ज़रा देर लग जायेगी।"

"हम कयामत तक इतज़ार करेंगे।"

वह बुआ को अधिक कुछ कहने का मौका दिये बगैर दरगाह की तरफ़ मुड़ गया। दरगाह के घेरे के पूरब मे टीले पर सगे सुर्ख की छतरी खुली पड़ी थी। वह पूरबी रुख की जालियों से टेक लगाकर दराज़ हो गया। देर के बाद जब सूरज चढने लगा और धूप तेज़ होने लगी तब एक डोली आती नजर आयी। वह नीचे उतर आया। कहारो को रोक कर उसने

आहिस्ता से पूछा,

"क्या बुआ सब्ज कदम हैं ?"

कहारो ने डोली रख दी। उनके बाहर निकलते ही महसूस हुआ जैसे दिल हड्डियां तोडकर बाहर निकल आयेगा। रीढ की पूरी हड्डी दर्द से चमक उठी। वह थोडी देर उनके साथ चलता रहा फिर एक बार और बुआ की मुट्ठी खोल कर बंद कर दी। दरगाह के दरवाज़े पर जहा डोलियों की कतारे चुनी थी और मर्दो, औरतो और बच्चों के ढेर लगे थे। बुआ सब्ज क़दम वही एक सायबान के नीचे बैठ गयी और वह तुर्क बेगम के साथ-साथ चलता हुआ दरगाह में दाखिल हो गया। उन्हें कोई नही देख रहा था लेकिन महसूस हो रहा था जैसे हर निगाह उन्ही पर जडी हुई है फिर भी मजार के अदर इस तरह दाखिल हुए जैसे मुद्दतों से इसी तरह जियारतें करते आ रहे हों। फ़ातिहा पढ़ कर बाहर निकलते ही वह जहांगीरी मस्जिद की तरफ़ चला। तुर्क बेगम लरजते कदमों से पीछे थी। ज़ीने से निकलकर जब वह शैनशीन की तरफ मुड़ा तो बेगम ठिठक गयी।

"आपने मुझ बदनसीब की नही तो अपनी इज़्ज़त का ख्याल तो किया होता। सब्ज कदम क्या सोचती होगी ?"

बेगम ने बुर्के के दोनो दामन उसके हाथो से छुड़ाने की कोशिश की।

"आप पसीने में डूब रही हैं तुर्क बेगम !" और बुर्का उतारकर अपने काधों पर डाल लिया। बेगम ने स्याह दोपट्टे में अपना आपा छुपाना चाहा तो उसने उनके दोनों हाथ थाम लिये।

"तुर्क बेगम आज अपनी हुस्न की जन्नत के दरवाज़े खोल दीजिये। आपकी इज्ज़त और हुरमत के सबसे बडे मुहाफिज हम खुद है।"

तुर्क बेगम के हाथों के रूपहले कबूतर उसके हाथों मे फड़फडाकर खामोश हो गये थे। जिस्म फूलों से लदी शाख की तरह काप रहा था और आखें आसुओ से तर-बतर थी और उनके दोनो तरफ सुनहरे सुर्ख बालों की लटें हिल रही थी। उससे ज़्यादा किसी ख्वाहिश की तकमील से इकार कर रही थी और आंखें उसकी आखों में पड़ी थी।

"ग़ौर से देखिये हमारी आखों में शरीफ मुहब्बत के अलावा किसी

जज्बे की परछाई तक न होगी।"

"काश आप जो कुछ कह रहे हैं उस पर अम्ल भी किया होता। काश आपकी जबान से यह जुम्ला सुकरात के आलम मे सुना होता।"

"बेगम !"

"बेगम, नही तुर्क बेगम मीरजा साहब ! आपकी बेगम लोहारू गयी हुई है। आपने हमको कैसी नेकबख्त बीवी की नजर से गिरा दिया।"

"तुर्क बेगम नागवारी की ये तमाम बातें तुम अपनी ग़ज़लो के साथ लिखकर भेज सकती हो लेकिन ये चंद लम्हे जो तकदीर ने हमारी गोद में डाल दिये है।"

"नही···आपकी तदबीर[1] ने आपकी गोद मे डाल दिये है।"

"खैर···यू ही सही लेकिन हमारी आखो पर खुदा के वास्ते इतना जुल्म न कीजिये।"

"जुल्म से आपका क्या रिश्ता···जुल्म तो हम औरतों का मुकद्दर है। आप तो छुरी हैं आप खरबूज़े पर गिरें या खरबूज़ा आप पर गिर पड़े जख्म बहरहाल खरबूज़े का नसीब होगा।

और तुर्क बेगम ने उसके कधे से बुर्का खीच लिया।

"हमारी आरजू थी कि हम तुम्हारे मुह से तुम्हारी गजल सुनते। तुम्हे क्या मालूम कि उमराव बेगम ने तुम्हारी गजल ख्वानी की किस-किस तरह तारीफ़ की है।"

लेकिन वह बुर्का पहनकर झपाक से जीने मे उतर गयी और जैसे आखों से रोशनी चली गयी।

दिन महीनो से और महीने बरसो से ज्यादा लबे होते गये। मुद्दतों के बाद कहीं एकाध गज़ल वज़ादारी के तौर पर आती और बनकर चली जाती। उमराव बेगम कभी ज़िक्र भी करती तो इतना कि इतने दिन हो गये तुर्क

1. प्रयत्न

बेगम नही आईं। फिर एक रात उसका हंसता-खेलता बच्चा चप-पट हो गया जैसे शीशा हाथ से छूट जाये और बनाये न बने। वह उमराव बेगम को थपककर बाहर आ रहा था कि ड्योढी का छत्ता झमझमा गया वह उसे देखकर खडी हो गयी। इकहरी नकाब के पीछे आंखें दहक रही थीं जैसे पूछ रही हो मीरज़ा साहब बच्चे को क्या हो गया था!

"एक बच्चे की जान देकर अगर तुम्हारा एक दीदार नसीब हो जाये तो यह सौदा महगा नही है।"

वह ड्योढी से निकल आया मुडकर देखा वह उसी जगह उसी तरह खड़ी थी। दीवानखाना खाली पडा था। सारे आदमी महलसरा में थे। वह कंधों पर अलबान डाले टहलता रहा था। दो का गजर बज चुका था और वह टहल रहा था कि जीने पर सधे हुए कदमो की सहमी-सहमी चाप महसूस हुई।

"आप तुर्क बेगम…आप…और इस वक़्त!"

"तकदीरों के बनने और बिगडने का वक़्त मुकर्रर नही होता।"

"अंदर आ जाइये।"

उसने लपककर चिलमन उठा दी। वह पायंदाज़ पर खड़ी थी और उसके हाथ कमरे में मौजूद तमाम चिराग, तमाम कंवल और तमाम शमादान रोशन कर रहे थे।

"आप यह क्या कर रहे हैं?"

"देखना चाहते है कि ये तमाम रोशनिया आप के वजूद से फूटते हुए नूर के सामने क्या हकीकत रखती है।"

और वह दीवार पर सिर रख कर रोने लगी। दोशाला कंधो से ढलक गया। उसने मोंढों पर हाथ रख दिये। हाथों को रखे रहने दिया गया। उसने सुर्ख-सुनहरे बालो से होंट जला लिये। होंट जलते रहे। सिर से पाव तक लरज़ता हुआ दहकता हुआ धड़कता हुआ बदन ज़रा-सा कसमसाया। लालो-लाल आखें धारो-धार रो रही थी।

"आपने यह क्या कह डाला मीरज़ा साहब!"

"हमने सच कहा है तुर्क बेगम…अगर वाकई खुदा है तो हम उसको हाज़िरो-नाज़िर जानकर तुमको यकीन दिलाते हैं कि हमने सच कहा है।"

वह देर तक उसी तरह खडी उसको देखती रही। एकटक देखती रही।

"माफ़ कर दीजिए···हमारी बेवगी के तसद्दुक[1] मे हमको माफ कर दीजिये।" और उनका सिर ढलक कर उसके गिरेवान मे आ गया।

"हमने तुमसे कहा था कि तुम्हारी इज्जत और हुरमत के सबसे बड़े मुहाफिज हम खुद है।"

"हा, फरमाया था।"

"तुम्हारे यहा इस तरह आने के राज़ से कौन वाकिफ है?"

"सब्ज कदम जीने पर ठहरी हुई है।"

"जी तो चाहता है एक कीमती राज़ की तरह आपको अपने सीने में छुपा लें। लिबास की तरह यू पहन लें कि आप पर किसी की निगाह न पडे। लेकिन क्या करें आपकी हुरमत के लिए आपको आंख भर देखे वगैर रुख्सत करना पड रहा है।"

उन्होंने दोशाले को बनाकर ओढ लिया।

"लेकिन एक शर्त है···आप जल्द से जल्द हमसे मिलेंगी।"

"अल्लाह!"

"कब···कहा···और कैसे···यह सब कुछ आप पर मुनहसिर है।"

"लेकिन यह किस तरह मुमकिन है?"

"अगर यह मुमकिन नही हुआ तो हम दिन दहाडे आपकी महलसरा मे घुस आयेंगे।"

"नही···नही!"

"कलम हमारा खिलौना है तुर्क बेगम जिससे हम अपने दुख को बहलाते हैं लेकिन तलवार हमारी विरासत भी है और हमारी आबरू भी।"

"हम तो इसी महीने आगरे के लिए सवार होने वाले है।"

"वह क्यो?"

"हमारी छोटी बहन की ननद की शादी है अगले माह मे। उनका शदीद इसरार है कि···"

1. सदका देना, कुर्बानी

"सफर की सबील क्या होगी ?"

"हकीम गुलाम हुसैन साहब उसकी खुशदामन[1] को देखने जाने वाले है उनको वापस लेकर जो पालकी दिल्ली आयेगी हम उसी से सवार हो जायेंगे।" और वह दरवाजे की तरफ बढने लगी।

"हू···" और उसका सिर कुम्हार के चाक की तरह घूमने लगा।

सुबह होते-होते उसने कुंवर गिरधारी सिंह के नाम खत लिख कर आदमी को अकबराबाद रवाना किया। उसने लिखा था कि तुम अगर हमको जीता देखना चाहते हो तो खडी सवारी जहानाबाद पहुंचो। पाचवें दिन की शाम गहरी हो रही थी और वह प्याला ढाल रहा था कि जीने पर घोडे चढने लगे। कुंवर गिरधारी सिंह बिर्जीस पर साकपोश और बूट चढाये कमर मे तमचा लगाये सामने खड़े थे।

"खैरियत है मीरज़ा साहब !" कुंवर ने बगलगीर होकर पूछा।

"तुम आ गये तो खैरियत आ गयी !"

"देखो जी मीरज़ा साहब, तुम हो शाइर और हम हैं सिपाही। हरफों के तोते-मैंने अपने पास रखो और मामले की बात करो हमसे।"

"अरे यार तुम तो कसे हुए खड़े हो ज़रा नहाओ-धोओ, कपड़े पहनो, लाल परी का एकाध परा उड़ाओ मामले की बात भी हो जाएगी।"

"ऊं···हुं···पहले बात फिर घात !"

"तो सुनो आगरे से दिल्ली के लिए एक जोड़ी चाहिए पूरे ताम-झाम के साथ जनानी सवारियों के लिए और जब मैं मागू तब मिले।"

"बस ?"

"बस !"

"भले मानस तुमने मुझसे कहा होता कि अपने हाथो की जोड़ी काट-कर दे दे तो मैं कुछ सोचता-विचारता लेकिन फिटन-शुकरम[2] भी कोई शै है जिसके लिए इतना तूमार बांध डाला। अमा, एक पुर्ज़ा लिखकर भेज दिया होता जहां और जब और जो कुछ तलब करते हाज़िर हो जाता—फ़लाने सिंह जूते खोल आकर !"

1. सास 2. गाड़ी

जब सेर-सेर-भर गोश्त के कबाब और आध-आध सेर शराब पेट में उतार ली तो उसने कुंवर से पूछा,

"आगरे के नजफ अली कमीदान को जानते हो ?"

"कमीदान साहब का पोर-पोर बाल-बाल जानता हूं।"

"और दिल्ली के हकीम गुलाम हुसैन को भी जानते हो ?"

"सात पुश्तों तक को जानता हू।"

"तो जब हकीम साहब कमीदान साहब की बेगम को देख कर दिल्ली के लिए सवार हों तो तुम्हारी सवारियों मे सवार हो और उन्ही सवारियों पर कमीदान साहब के मेहमान दिल्ली से आगरे के लिए सवार हो जायें।"

कुंवर ने भौंहे समेट कर प्याला रख दिया।

"भाई मेरे यह सब हो जायेगा लेकिन तेरा आखिर क्या फ़ायदा होगा ?"

"अगर मेरा कोई फायदा न होता तो तुमको इतनी तकलीफ़ क्यों देता ?"

"देख भाई हम खाड़े-भाले के आदमी है ये त्रिया-चरित्र तू जान !" और एक ही घूट मे प्याला उडेल लिया।

कुंवर के रजामन्द होते ही उसने पेंशन के मुकदमे की आड़ मे अकबराबाद के सफर का ऐलान कर दिया और इंतज़ाम करने लगा। सब्ज़ कदम उसके खुफिया मंसूबे से संबंधित पुर्जे लाती ले जाती रहीं। अभी हकीम गुलाम हुसैन दिल्ली से चार कोस के फासले पर थे कि कुंवर गिरधारीसिंह का सवार एक कोतल घोड़ा लेकर हाजिर हो गया। उसने सामान के बुकचे हवाले किये। उमराव बेगम से इमाम ज़ामिन बंधवाया और सवार हो गया। रात रजगीर गांव की सराय में गुज़ारी। दोपहर का खाना खाकर हुक्का पी रहा था कि सवार ने कुंवर के उतरने की इत्तला दी। बाहर निकला तो एक खोकडी और दो शुकरमे खोली जा रही थी और कई सवार घोड़े थामे खडे थे। तैयार कमरों मे गदेलों पर चादनियां लगी थी दरवाजों पर धुले पर्दे पड़े थे और खाना तैयार था। पहले बुआ सब्ज़ कदम बगल मे हुस्नदान लिए उतरी। उनके पीछे-पीछे तुर्क बेगम सफेद बुर्राक बुर्का पहने तशरीफ लायीं। जब सब्ज़ कदम सामान मंगवाने के लिए बाहर

आयी तो वह कमरे में दाखिल हो गया। बेगम दरवाजे के पास ही खड़ी थी। उसने दोनों हाथ लेकर हाथो से लगा लिये। वह बेनियाज़-सी खडी रही। न खुश, न रंजीदा, न मुज्तरिब[1] न मुतमईन। आप अपनी तमाशाई।

"आप जानती हैं कि हम आपकी आवाज के आशिक है और इस तरह खामोश खड़ी है गोया यह पहली बेनजीर और आजाद मुलाकात रोजमर्रा का मामूल है।"

"हमने देखा है कि कुर्बानी के लिए बकरे को नहलाते-धुलाते हैं, आंखों मे काजल लगाते है, कामदार मखमल के पट्टे और गहने पहनाते हैं, पलंग पर सतर लगाकर विठाते हैं, दूध जलेबी खिलाते है और ईदे-कुर्बान की सुबह जिबह कर डालते है···मुझे अपने-आप पर भी कुर्बानी के इसी बकरे का गुमान होता है।"

"यह क्या कह रही हो तुर्क बेगम ?"

"सच कह रही हूं मीरजा साहब! एक सब्ज कदम तक तो खैर सब्र था लेकिन अब कितने ही लोग मेरी रुसवाई के चश्मदीद गवाह हो चुके और मसल है *होंटों उतरी कोठी चढ़ी। जिस दिन मेरा राज़फाश हुआ* मीरजा साहब वही दिन मेरे लिए ईदे-कुर्बान का दिन हो जायेगा।"

बुआ के कदमो की चाप पर उसने हाथ छोड दिये और कुवर के पास चला आया। वह सफ़री कपडो मे मसनद से लगे पेंचवान की दस्तगी से खेल रहे थे।

"आइये मीरजा साहब जल्दी से जरूरी बाते हो जायें तो हम सवार हों।"

"इतनी उजलत की क्या जरूरत है ?"

"है···तो सुनिये कमीदान साहब से तय हुआ था कि आज जुमे के दिन हम को देहली पहुचना है। तीन-चार दिन जानवरों के आराम के लिए दिल्ली मे कयाम करना है। इस तरह मंगल या बुध को सवार होकर पाच-छः रोज मे आगरा उतर पडना है। यानी आज से आठ-दस रोज़ आप के पास हैं कम-से-कम।"

1. उद्विग्न

"और ज्यादा से ज्यादा ?"

"ज्यादा से ज्यादा की एक सूरत यह है कि रोजे-मुकर्ररा[1] कमीदान साहब के पास एक सवार चला जायेगा कि सवारियां फतहपुर सीकरी की ज़ियारत करती हुई आ रही है। तीन-चार दिन और बन जायेंगे। जहा तक मेरे आदमियो का सवाल है तो वे बदूक की नाल पर भी वही कहेंगे जो मैं कहूगा।"

"हू..."

"रही यह कबाब की हड्डी..."

"कबाब की हड्डी ?"

"अरे यह जो बुढिया है इसका इंतजाम यह है कि भरतपुर के करीब हमारी बहन की जागीर पर भेज दी जायेगी। आगरे मे आपके दाखिल होने से चद घटे पहले एक गाडी इसे उडा लायेगी। रहे हम तो हम आपके साथ नही रहेगे और आपके साथ रहेंगे भी। यानी आप से इतनी दूरी पर रहेगे कि घडी-भर मे सवार घोडा उठाकर पहुंच जायें...दर्शन सिह !"

"महाराज !"

"यह मीरज़ा साहब हमारे दोस्त नही हैं बड़े भाई हैं। तुमने हम पर बंदूक भी उठा ली तो माफ कर देंगे लेकिन इनको अगर मैली निगाह से देख लिया तो सिर उतार लेंगे।"

"क्या मजाल महाराज !"

"घोड़े लगाओ !" और कुंवर खड़े हो गये।

"अरे खाना तो खा ले भाई !"

"खाना मंदीला मे खाऊगा। यहा से तीन-चार मील पर मेरा एक यार रहता है उसको इत्तला है कि मैं आ रहा हूं...दर्शन सिह !"

"महाराज !"

"पूरे सफर मे भाई साहब का अगर तावे का एक पैसा खर्च हो गया तो तुम्हारे हाथ काट लूगा।"

"जो हुक्म महाराज !"

1. एक निश्चित दिन

और दालान ही से उछलकर वह घोड़े पर सवार हो गया। हाथ मिलाकर दोनों जोडे और घोड़ा कड़कड़ा दिया। सब कुछ इस तरह हो गया जैसे दास्तानो में होता है। बुआ सब्ज कदम ने इत्तला दी कि बेगम खाने पर इंतजार कर रही हैं। कमरे मे कदम रखते ही जाफरान की खुशबू से शराबोर हो गया। मुर्ग मुसल्लम की बिरयानी से भाप उठ रही थी।

"चावल शाम तक बिगड़ जाते, इसलिए मैंने इस वक़्त सिर्फ बिरयानी लगा दी है। बिस्मिल्लाह कीजिये।" और उन्होने अपने लिए अलग निकालने के लिए चमचा उठा लिया।

"तुर्क बेगम आज खुदा की रहमत से यह नादिर मौका मयस्सर आया कि हम तुम्हारे हाथ का खाना खाने बैठे है। तुम्हारे साथ ही खायेंगे।"

और उनके हाथ से प्लेट छीन ली। एक लुक्मा उठाया तो जैसे जायक़ा ज़िदा हो गया। जवान हो गया। मस्त हो गया। तुर्क बेगम आहिस्ता-आहिस्ता खा रही थी फिर उन्होंने कमर से पेशकब्ज निकालकर पेश किया। उसने मुर्ग चाक किया तो पेट से चार तली हुई बटेरें बरामद हुई।

"क्या सारी रात खाना पकाती रही?"

"कल सारा दिन और सारी रात बावर्ची खाने मे गुजारी है।"

पहली बार उसे सब्ज कदम की मौजूदगी का एहसास हुआ।

"मालूम है कि दस्तरख्वान पर खाने की तारीफ डोम करते है लेकिन तुम्हारे हाथ की बिरयानी की लज़्ज़त ने मजबूर कर दिया।"

तुर्क बेगम ने सिर को और झुका लिया।

"हमने ज़िंदगी में पहली बार इतनी लजीज बिरयानी खाई है।"

तांबे का सरपोश हटाकर बेगम ने एक बडा प्याला सामने रख दिया। उसने एक चमचा मुंह में रखा तो अपनी आवाज सुनी,

"सुबहान अल्लाह! एक बात कहूं तुर्क बेगम···दस्तरख्वान की शीरीनी घर के तमद्दुन की अलामत[1] होती है···खुदा की क़सम अगर

1 प्रतीक

खुदा है !"

"नौजुबल्लाह[1] आप क्या फरमा रहे हैं !"

"हा, तुर्क बेगम कभी-कभी ख्याल आता है कि खुदा नही है। अगर खुदा होता तो दुनिया मे इतनी हकतलफी न होती, इतनी बदनज़मी[2] न होती। फिर ख्याल आता है कि खुदा है वरना हम उसकी कसम क्यों खाते। हा तो, खुदा की कसम तुर्क बेगम अगर हम तुर्किस्तान मे होते और हमारे हाथ से सल्तनत न निकल गयी होती तो हम आपको अपनी बेगम बना लेने की खातिर जान की बाजी लगा देते।"

सब्ज़ कदम ने दस्तरख्वान उठाया। अदर से पर्दा बराबर किया। बाहर से दरवाज़ा बद किया। खिडकी के रास्ते से कुवार की ठंडी हवा के झोके आ रहे थे। बेगम ने खली से हाथ धोकर हुस्नदान खोला और चिकनी डली के साथ इलायची पेश की।

"हुस्नदान मे इलायची !"

उसे अपने सवाल की काट पर खुद हैरत हुई।

"हमारे खानदान की औरतें हुस्नदान के बगैर नही चलती और हुस्नदान बेवा औरतो को जेब नही देते और बेवा औरते रस्मो को तब्दील भी नही कर सकती, इसलिए हमने हुस्नदान मे डली और इलायची रख ली।"

"तुर्क बेगम···हमारी आप से गुजारिश है आप आयदा कभी अपने-आपको बेवा नही कहेंगी।"

"रात को अगर रात न कहा जाये तो वह दिन नही हो जाती।"

"हो जाती है···खुदा की कसम जिस रात के बत्तन[3] से तुम्हारे कुर्ब[4] का सूरज तुलू हो वह हमारे लिए चहचहाते हुए दिनों से ज्यादा रोशन है।"

"यह शाइरी है मीरजा साहब! जिंदगी की हकीकतो की संगीनी और अशआर के तखय्युल[5] की रानाई[6] के दरम्यान कोई रिश्ता नही, कोई ताल्लुक नही।"

1. खुदा की पनाह 2 अव्यवस्था 3. कोख, उदर 4 सामीप्य 5 भाव 6 सौंदर्य

उन्होंने अपना हाथ छुडाने की कोशिश की लेकिन उसके सीने पर आ रही। फिर मालूम नही क्यों कर उनके सुनहरे सुर्ख बालों की लंबी-लंबी लटें उसके बाजुओ पर फैल गयी। वह थोडी देर ख़ामोश उन पर हाथ फेरता रहा और उसके कुर्ते के बोताम (बटन) तुर्क बेगम के होंठो को चूमते रहे। फिर बेगम ने सुना :

"बेगम एक शे'र हो गया।"

"सुना दीजिये।"

"नीद उसकी है दिमाग़ उसका है रातें उसकी है
जिसके बाज़ू पर तेरी ज़ुल्फें परीशा हो गयी।"

उन्होंने गिरेबान से सर उठा लिया।

"बहुत हसीन शे'र है···इस शे'र की क़ीमत मे अगर ज़ुल्फो से हाथ धोना पड़ जाये तो भी यह सौदा सूद ही सूद है।"

"सच !"

सिर झुक गया। गिरेबान से आवाज़ आयी,

"तो सुन रखो तुर्क बेगम तुम्हारी इन ज़ुल्फ़ो के लिए—ख़ूबसूरत आग की इन बेमिसाल लपटो के लिए, नही इनके एक-एक बाल की सलामती के लिए हमारी सात-सात जाने कुर्बान होने को हाज़िर हैं।"

जवाब मे मेहसूस हुआ कि उसके कुर्ते का बोताम टूट गया वह अपनी उगलियो से उन ज़ुल्फों मे जो उसके शानों पर बिखरी थी, शाना करता रहा। दरवाज़े पर दस्तक हुई। वह अपनी ख़्वाबो की जन्नत से बाहर निकला तो शाम हो चुकी थी। कमरे में अधेरे का ढेर लग रहा था।

"आ जाओ !"

गिरेबान से आवाज आयी और उसका सीना ख़ाली हो गया।

रोशनियों के साथ सब्ज कदम ने अदर कदम रखा तो देखा कि वह मसनद से लगा बैठा है और उसकी बेगम उसके पास बैठी हैं और इस तरह कि उनके सारे बाल दोनो कंधों पर ढेर है और बुलंदों-वाला सीने की चोटियां स्याह रेशम के कुर्ते के नक़ाब मे हर सास की जुबिश पर धड़क रही है और कुछ बाल टूट कर आखों की सफेदी मे तैर रहे हैं।

"सब्ज़ कदम यहा मेरे करीब आओ !"

कही दूर से बेगम की आवाज आयी। सब्ज़ कदम पायंदाज़ से खिसक कर लवे फर्श तक आ गयी।

"आज मैं तुमसे एक बात कहना चाहती हूं—पहली और आखिरी।"

"फरमाइये!"

"हमने तुमको एक तनख्वाहदार मुलाज़िमा की तरह कभी नहीं जाना। हमेशा अपने मगरूर खानदान के बुज़ुर्ग की तरह बरता है।"

"आज आप यह सब कह क्यों रही है?"

"तकदीर ने ऐसे मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया है कि कहना पड़ रहा है···सब्ज़ क़दम अगर तुमने हमारे राज़ को राज़ रखा तो हम आज से तुमको अपनी मा की तरह बरतने की कसम खाते हैं और अगर ज़िंदगी मे तुमने कभी गद्दारी की तो तुम्हारा पेट चाक करके अपने सीने में खंजर भोक लेंगे।"

"मेरी जान तो सदके की चिड़िया है। बेगम जब हुक्म दीजिए वार दू लेकिन अपने लिए मुझ कोख जली के सामने कभी ऐसा लफ़्ज़ न निकालिएगा। बेगम यही मेरी तनख्वाह है, यही मेरी मिन्नत!"

और बुआ दूसरी शमा लेने कमरे से चली गयी।

"तुमने देखा तुर्क बेगम इस शमा की आमद से पहले कमरे में अंधेरों के ढेर लगे थे लेकिन इसके जलते ही ये काफूर हो गये। इसी तरह तुम्हारे कुर्ब की छोटी-सी शमा जलते ही हमारी तमाम स्याह बख्तिया हाफिज़े से रुखसत हो गयी।"

"बुआ सब्ज़ कदम!"

"जी मीरज़ा साहब!"

"वो कोने में रखा हुआ चमड़े का थैला उठा दीजिए और ठंडे पानी की एक सुराही ले आइये।"

थैला पकड़ाकर वह सुराही लेने चली गयी।

"हिंदोस्तान के लोग जब अपने मतलूब[1] से मिलते हैं तो अपनी खामियों पर पर्दे डाल देते हैं और खूबियों मे कली-फुंदने टाकने लगते हैं।

1 तलब किया हुआ, प्रेमी

हम मावेरुलनह्‌री[1] शाहज़ादे अपने चेहरे के तमाम दाग़ों और किरदार[2] के तमाम धब्बों के साथ तुम्हारे सामने आयेंगे कि यह हमारे घर का चलन है।"

फिर मोमजामे की थैली खोलकर तले हुए बादामों से बेगम की हथेलियां भर दीं।

"जब खाना खाइये आवाज दे दीजिये। मैं गाड़ी के पास लेटी हूं।"

उसने थैले से बोतल निकाली। एक-तिहाई प्याला भरकर सुराही से लबरेज कर लिया और तुर्क बेगम के हाथों से चंद बादाम उठाकर मुंह में रख लिए। तुर्क बेगम सोने-चांदी के मुजस्सिमे की तरह बैठी थी। बैठी रही उसने प्याला उठा लिया,

"आज तुर्क बेगम की कुर्बत के नाम···कि एक मुद्दत से तुर्क बेगम के नाम पीता आ रहा हू।"

एक ही सांस में पूरा प्याला खींचकर फर्श पर डाल दिया और आंखें बंद कर लीं तो तुर्क बेगम उसी तरह बैठी थी जिस तरह बैठी थी। बस इतना कहा कि बादाम प्लेट में रख दिये।

"हिंदुस्तान के एक बेनज़ीर शाइर ने हुस्न की तारीफ करते हुए लिखा कि उसके कूल्हे शरावे हुस्न से भरे हुए करावे थे। खुदा की कसम हमने जब तक तुम्हें देखा नहीं था इस तशबीह की सदाकत पर ईमान नहीं लाये थे लेकिन आज मेहसूस होता है कि तुम इस तशबीह से ज्यादा हसीन हो।"

इतना सुनते ही तुर्क बेगम खड़ी हो गयी और उनके पांव बरहना हो गये और···।

"बेगम! तुम्हें उसकी कसम जिसको तुम सबसे ज्यादा अज़ीज़ रखती हो अपने पांव चूम लेने दो।"

"इतना गुनहगार न कीजिये मीरज़ा साहब!"

और उन्होंने उसके दोनों हाथ थाम लिए।

1. मावरा उन्नह्र से सबंधित, नदी के उस पार का इलाका, चूंकि तूरान तुर्किस्तान जैहून नदी के उस पार था इसलिए ईरानियों ने उसे मावरा उन्नह्र कहा 2. चरित्र

"मर्द और औरत की जिंदगी में सिर्फ एक रात आती है जब मजहब और समाज और तहज़ीब और खानदान जैसे तमाम इदारे[1] पूरी आज़ादी के साथ मुद्दतों से दहकते हुए जज्बात की तस्कीन की इजाज़त दे डालते हैं और दोनो अपने जिस्म की दुनियाओ से वाकिफ होते हैं और एक-दूसरे को वाकिफ कराते हैं और यह सब कुछ एक मामूली-सी रस्म पर टिका होता है···रस्म और रिवायत तोबा है। एक बात पूछू तुर्क बेगम ?"

"जी !"

"तुम्हारे पैरो को देखकर जी चाहता है कसम खा लें कि ये किसी रक्कासा के पैर हैं।"

बेगम ने आखें झुका ली। आहिस्ता-आहिस्ता उसके हाथ छोड़ दिये और अपने हाथों से मुह छुपा लिया।

"बोलो···बोलो न !"

कोई जवाब न पाकर फिर कहा, "तुर्क बेगम मुहब्बत की तकमील उस वक़्त होती है जब दोनो अपने-अपने खुफिया किलों के दरवाज़े एक-दूसरे पर खोल देते हैं।"

"लेकिन हम तो अपने खुफिया किले की कुंजी आपके दीवानखाने में छोड आये हैं।"

"तुर्क बेगम !"

"हमारी आपसे सिर्फ एक गुज़ारिश है कि आप हमेशा अपना क़ौल याद रखे कि आप हमारी इज्ज़त और असमत के सबसे बडे मुहाफिज है।"

"सूली के तख्ते पर भी याद रहेगा। तुर्क बेगम बदन की मौसीक़ी का नाम रक़्स और रक्स का नाम मौसीकी है लेकिन ये दोनो तुम्हारी हवेली की ऊंची-ऊंची दीवारें किस तरह फलाग गये।"

"आपको शायद मालूम नहीं मेरी वालिदा बचपन ही मे मरहूमा हो गयी और वालिद सिपाही थे और फौजें लड़ाते थे। खुदा उन दोनो को करवट-करवट जन्नत दे। हमारी परवरिश दादी जान ने की। हमारी अम्मा एक बगालिन थी जो अपने फ़न मे बेमिसाल थी। हमने छोटी-सी

1. संस्थाए

उम्र में नाच देखा और उसकी नक़्ल की। अन्ना ने नक़्ल करते देखा तो देखती रह गयी। एक-एक जुंबिश सुर-ताल मे थी। फिर यह होने लगा कि जब इशा[1] पढ़कर दादी जान अफ़्यून की गोली मुंह में रखती और सो जातीं तब हम खाट से उठते अन्ना की उंगली पकड़कर चार-छः कमरे छोड़कर एक-एक घुंघरू पांव मे बांधते और नाचते रहते। एक-एक दो-दो का गजर बज जाता और खबर न होती। शादी हुई तो ऐसे पारख से कि ऐसी-वैसी आवाज़ों से उनके कान दुखने लगते। बेहंगम चाल से तक आंखें पिराने लगती। खुदावदौलत किसी साज़ मे बंद न थे लेकिन दिलरुबा ऐसा बजाते कि शायद ही कोई बजाता हो। सारी-सारी रात वह नाच बजाते रहते और हम नाचते रहते। लाल किले से गुनी बेगम का नाच देखकर आये। कमर खोल रहे थे बोले गुनी बेगम का सारा नाच एक तरफ़ और हमारी बेगम की एक ठोकर एक तरफ़। वल्लाह कोई निस्बत नही। जिस दिन वो सिधारे हमने उन दोनों पर भी खाक डाल दी। पांच बरस होने को आये अब तो हाथ-पाव लकड़ी होकर रह गये।"

फिर बोली, "आप क्या सोचने लगे?"

"सोचता हूं तुम जब आज ऐसी हो तो कल कैसी रही होगी और यह भी कि वो शख़्स कितना ख़ुशनसीब था कि तुम्हारी ऐसी बेगम नसीब हो गयी और वो कितना बदनसीब था कि···हमारा ख्याल था तुर्क बेगम कि जब हम प्याला उठायेंगे तो तुम भडक उठोगी लेकिन तुम इस तरह बैठी रही जैसे हमारे प्याले में शराब नही, शर्बते अनार हो।"

"हमने तो उनके प्याले पर जिनका जनम-जनम का साथ था तिरछी निगाह न डाली आप तो बहरहाल पराये हैं और ये भी कि जब नूरजहा जैसी मलिका-ए-आलम अपने शौहर की शराब न छुड़ा सकी तो हमा-समा किस् कतार में शुमार हैं···कितने प्याले पीते हैं आप?"

"चार···लेकिन आज सिर्फ़ एक पिऊंगा।"

"क्यों?"

1. रात की नमाज़

"मय से गरज़ निशात है किस रू-ए-स्याह को
एक गूना बेखुदी मुझे दिन-रात चाहिए"

तीन प्याले हमने तुर्क बेगम की कुर्वत की नजर कर दिये कि तुर्क बेगम सिर से पांव तक मयख़ाना है उसकी हर अदा बेखुद कर देने के लिए काफ़ी है।"

और बोतल बंद होकर चर्मी थैले में चली गयी और दाहिने पैर पर होंठ धड़कने लगे।

"दर्शनसिंह हाज़िर है नवाब साहब!"

"कहो?"

"अगर मामा को भरतपुर भेजना चाहें तो सवारी तैयार है।"

"नही वह हमारे साथ रहेगी।" बेगम ने जल्दी से जवाब दिया।

"एक तस्मा तो लगा रहने दीजिये। मालूम नही उल्टी-सीधी कैसी आन पड़े।"

"जैसी आपकी मर्ज़ी।"

जब दस्तरख्वान उठ गया और बुआ सब्ज़ कदम अपनी जगह पर पहुंच गयी और तुर्क बेगम ने अपना बिस्तर भी कर लिया तो उसने कोने मे खड़ी हुई तलवार नियाम से निकाली और तुर्क बेगम के बिस्तर की सफ़ेद बुर्राक़ चांदनी के बीचों-बीच रख दी और एक तकिया बराबर रख-कर दूसरे पर सर डाल दिया।

"आइये तुर्क बेगम हमारे पास लेट जाइये। हमारे आपके दरम्यान यह तलवार नही दीवारे चीन है। आइये...अभी आइये...गुज़ारिश है तुर्क बेगम मान लीजिये।"

और उसने उठकर तुर्क बेगम का हाथ पकड़ लिया और बिस्तर पर लिटा दिया। बेगम दूसरी तरफ मुह किये लेटी रही और वह छत की कड़िया गिनता रहा और बेगम के बदन से उठती खालिस, मुकम्मिल और

भरपूर औरत की खुशबू में शराबोर होता रहा। उनके अंग-अंग की आंच से तपता रहा और जब सिर से पांव तक दहकने लगा तो उठ बैठा। बेगम का दाहिना हाथ उनके कूल्हे से उठाकर थाम लिया वह तड़प कर उठ बैठी। चेहरे की रगें तनी हुई थी और आखें सुर्ख थीं।

"तुर्क बेगम तुमको अपने नाम तुर्क और तुम्हारे सामने बैठे हुए तुम्हारे आशिक ज़िंदा तुर्क मे से किसी एक को कत्ल करना है और अभी!"

"यह आप क्या फ़रमा रहे है ?"

"और अगर तुम ये काम अंजाम नही दे सकती तो ये ज़िंदा तुर्क तुम्हारे पहलू में लेटी हुई इस तलवार को अपने पेट मे भोक लेगा।"

और उसने बिस्तर से तलवार उठा ली। वह टकटकी बाधे उसके चेहरे को देखे जा रही थी। आंखों को पढते-पढते जैसे सहम गयी। उठीं और कोने से नियाम उठा लाईं। और दोनो हाथो से तलवार छीनकर ग़िलाफ़ करने लगी लेकिन उसने उन्हें बाजुओं से पकड़ लिया।

"पहले अपनी ज़ुबान से अपना नाम बता दीजिये ··मुह से बोलिये हम हर रस्म और शर्त के लिए तैयार हैं···तुर्क बेगम आपके सिर की कसम सारी उम्र हम इसी तरह आपके हाथ पकडे खडे रहेंगे।"

उन्होने गर्दन उठायी तो दो आसू पलको से टूटकर गालो पर ढलक आये। उसने आंसुओ को अपने होठो मे जज़्ब कर लिया। देर के बाद कही दूर से आवाज़ आयी।

"आप जो नाम रखेंगे हम कुबूल कर लेंगे।"

दो लंबी-चौडी मजबूत बाहो ने सारी समूची बेगम को समेट कर उठा लिया और सारे बदन पर चुबनो की इतनी बारिश हुई कि वह निढाल हो गयी।

मयुरा के सामने और दरिया के किनारे जब उसकी दोकडी पहुंची तो

आसमान से सूरज ढलक रहा था और उसके बाजू पर एक माहताब चमक रहा था कि दर्शनसिंह घोडा बढ़ाकर क़रीब आ गया।

"जमनाजी के उस पार राजा साहब दोगांव का पक्का बाग है उसकी बारहदरी सजी हुई है आप चाहे तो वहा उतरें और चाहें तो शहर की सराय।"

"बाग ही में ही उतरेंगे।"

दरवाजे से बारहदरी तक सारा बाग हरा-भरा और खिला हुआ। बूटा-बूटा भरा हुआ। पत्ता-पत्ता धुला हुआ और बारहदरी फ़र्श से सजी हुई और झाड-फानूस से सजी-धजी, बगल में कद्दे आदम बाढ़ के अदर लबालब भरा हुआ सगे खारा का हौज़ और उसके अंदर छोटी-सी सगे सुर्ख की छतरी तनी हुई और उस तक पहुचने के लिए रस्सियो से बंधी पतली-सी डोगी पडी हुई। बाढ से परे दीवार के दोनो बाजुओं पर दरिया के ऊपर दो बुर्ज बने हुए, दोनों में फर्श लगे हुए, जैसे राजा साहब दोगावां अभी-अभी उठकर गये है। बेगम ने तालाब को देखा तो चमक गयी, खिल उठी।

"यहा कोई आ तो नही सक्ता?"

"हमारा ख्याल है कि अब तो राजा दोगावां भी चाहें तो कुंवर की इजाजत के बगैर नही आ सकते।"

"बुआ मेरे कपड़ो की ज़र्द छोटी बुकची ले आइये।"

और वह एक पत्थर पर बैठकर अपने पायजामे की चूड़िया चढाने लगी लेकिन उसे देखता पाकर चूड़ियां गिनने लगी।

"एक बात आपसे कहूं···आप बारहदरी मे चले जाइये मैं ज़रा हाथ-मुंह धो लूगी।"

वह बारहदरी के चबूतरे से गुजरता हुआ सामने आ गया। कोने पर खड़े कासनी गुलमुहर के नीचे खड़ी हुई संगीन चौकी पर पांव रखकर खड़ा हो गया। दरवाज़े के अदर दालान के सामने ईंटो के चूल्हे सुलगने लगे थे और फाटक के बाहर अभी तक घोड़े टहलाये जा रहे थे। फिर एक सिपाही ताजा भरा हुआ सफ़री हुक्का देकर उल्टे पैरों चला गया। सूरज दूर खडे हुए दरख्तों की फुनगियो पर सिंदूर से भरे थाल की तरह रखा था।

"फाटक की बगल मे पैठ लगी है मैं ज़रा वहां तक जा रही हूं।"

उसने चौंककर सुना और फिर ख्यालो की दुनिया में चला आया जहां नयी-नयी ज़मीनें उठ रही थी, रदीफें मचल रही थी और काफ़िये ठुमक रहे थे और ख्यालों की आकाशगंगा थी कि यहां से वहा तक पडी जगमगा रही थी और इनसे दूर बहुत दूर छोटे-छोटे हाथ-पैरों और छोटी-छोटी खोपडियों वाले बहुत से आदमी रेंग रहे थे और पुराने जोहड़ के सडे हुए पानियों में टूटी-फूटी लकडियो में लम्हों और सानियों का चारा लगाये रोजमर्रे और मुहावरे की मछलिया मार रहे थे और एक दूसरे को इन छोटी-छोटी कामयाबियों पर दाद दे रहे थे, मुबारकबाद दे रहे थे और उसकी तरफ़ देखकर हिकारत से हंस रहे थे, नफरत से थूक रहे थे। किसी ने उसके कान में कहा, 'ये हकीम आगा खा ऐश और उसके खुशामदी हैं।' वह मुस्कुराकर उठा। हुक़्क़ा बारहदरी के खभे से लगाकर खडा किया और चबूतरे पर टहलता हुआ हौज़ की तरफ निकल आया और जैसे आंखें फटी की फटी रह गयीं। औसाव को सकता-सा हो गया। सारी कुव्वते एहसास सिमटकर आंखों मे आ गयी। जैसे नूरजहा किला-ए अकबराबाद के हमाम में गुस्ल कर रही हो। सुर्खो सफेद शीशे के ढले हुए बदन के गुबंदों पर डूबते सूरज की लाली की छोट पड़ रही थी और वे तमाम उपमाओं से बुलद हो चुके थे।

और उन मेहराबो को अगर इबलीस देख लेता तो सजदे मे गिर पड़ता और उन खंभों के जमाल के सामने तख़्ते सुलेमानी[1] के पाये भी हकीर मालूम होते। गोश्तों-पोस्त के वो ज़िदा पेंचो-ख़म कि अगर ख़िज्र ओ-इल्यास[2] को गुनाहगार इसानों की आखें मयस्सर आ सकती तो सारी उम्र भर भटकते रहते और शर्मिदा न होते। हाये चश्मा-ए हैवां[3] कि अगर सिकंदर देख लेता तो शहंशाही को लात मारकर डूब मरने की आरज़ू करने लगता। वह अपने सर की जुंबिशो से आईना जैसी पीठ पर ढेर भीगी लपटो से पानी झटक रही थी और वह हुस्ने बेमुहाबा के बेप-

1 हज़रत सुलेमान का तख़्त 2 क्रमशः वन और समुद्रो के रक्षक अमर पैग़बर
3. अमृत-कुड

नाह नजारे के जादू से पत्थर हो चुका था। पैर जमीन में दफ्न हो चुके थे और निगाहें आंखों की कुदरत से चकरा गयी थीं। फिर सूरज बदन को लिबास की बदलियां घेरने लगीं और वह डूबने लगा। डूब गया और उसे महसूस हुआ जैसे वह दूसरी दुनिया से वापस आ रहा हो, दोबारा जिंदा हो रहा हो। पांव जमीन पर टिकने लगे और पलकें झपकने लगीं सफेद बदन पर सफेद रेशमी उरेबी पायजामा पहनकर सफेद पशवाज़ पर सफेद शलूका पहन लिया तो उसे ख्याल आया कि तहज़ीब ने कपड़े की ईजाद करके खल्के खुदा को हुस्नो-जमाल के कैसे-कैसे बेपनाह नज़ारों से महरूम कर दिया। क्या उस आसमानी मख्लूक में जो इन चंद गज कपड़ों में छुपा दी गयी है और उस औरत में जो सामने खड़ी बाल संवार रही है कोई रिश्ता है ? कोई मुकाबला हो सकता है ?

"अरे आप ?"

और वह इस तरह सहम कर लचक गयी जैसे हिरनी ने शिकारी देख लिया हो।

"कब आये आप ?"

"अभी जब आप कपड़े पहन चुकी थीं।"

"अल्लाह आवाज़ क्यों न दी आपने !"

हमने चाहा था लेकिन आवाज़ निकली नहीं।"

वह करीब से गुजरने लगी तो उसने हाथ बढ़ाकर थाम लिया। बारह दरी में दाखिल हुए तो बुआ सब्ज कदम गोद में कुछ संभाले मशालची को साथ लिए चली आ रही है। जब बारह दरी मुनव्वर[1] हो गयी तो उसने मशालची से कहा कि हौज़ की छतरी में भी रोशनी रख दे हम खाना नहीं खायेंगे। बेगम, सब्ज कदम के साथ सामान दुरुस्त करती रहीं। खाने के लिए हिदायत देती रहीं और वह मसनद पर सिर रखे अपने ख्यालों के मुंह ज़ोर घोड़ों को थपकाता रहा।

"आपने कहा था कि मुहब्बत की तकमील के लिए जरूरी है कि हम एक-दूसरे के खजानों की कुंजियां एक-दूसरे के हाथ में रख दें।"

1 प्रकाशित

"हां कहा था।"

वह उमस कर गाव से लग गया।

"जिम बगालिन अन्न ने मुझे वकील आपके बदन की मौसीकी यानी रक़्स की तालीम दी वह यही सब्ज़ कदम है।"

और बुआ सब्ज़ क़दम माथे पर हाथ रखकर तस्लीम के लिए झुक गयी।

"बुआ सब्ज कदम हमने लडकपन में तलवार के कुछ हाथ सीखे थे मुद्दतें हो गयी कि उनका आमोख्ता[1] नही दुहराया लेकिन आज भी तलवार खीचकर खडे हो जायें तो ऐरे-गैरे दो-चार आदमी हमारे करीब नही फटक सकते।"

"मिया···नाच के सबक का मामला तलवार से जुदा होता है। नाच बदन के लोच से निकलता है और लोच रियाज़ से पैदा होता है और रियाज़ ही से कायम रहता है लेकिन मियां लोच की एक उम्र होती है। मेरे लिए तो अब थिरकना भी मुमकिन नही लेकिन मादो अल्लाह से अगर बेगम घुघरू पहन कर खडी हो जायें तो इनकी उम्र की बडी-बडी हुनरमदें मुह ताकती रह जायें।"

"तो बुआ सब्ज कदम मैं क्या जतन करूं कि आपकी बेगम हमें सरफ़राज करने के लिए घुघरू पहनकर खड़ी हो जायें।"

"वही कीजिये मिया जो करके बेगम को यहा लाकर बिठा दिया··· अच्छा मैं खाना लाती हूं।"

"बैठिये तो···खाना भी खा लेंगे। पहले यह बताते कि आपका घराना कौन-सा है?"

"घराना क्या मियां सच यह है कि मेरा दादा बडा गुणवान था लेकिन सुदरू था और सिराजुद्दौला के दरबार का नायक था उसी का विरसा मेरे बाप को मिला कि अकेले थे और बेगम की ददिहाल से वाबस्ता थे। जब उनकी मा का जन्नत से बुलावा आया तो दूध पीती थी और मेरी गोद भरी थी और खाविंद खानादामाद[2] था। बाप ने हुक्म दिया कि हम हवेली

1. पढ़ा हुआ सबक 2. घर जमाई

मे उठ जायें और बेमां की औलाद को फूलपान की तरह रखें। मो मियां इस तरह रक्खा कि अपनी कोख जल गयी। पहलोठी का बेटा सूखकर मर गया लेकिन बेगम को अल्लाह कयामत तक जीता रखे। उनका रग भी मैला न होने दिया। जब खैर से ये दुल्हन बनीं और दूल्हा के घर सिधारने लगी तो मुझे भी उनके डोले मे चढा दिया गया तो मिया वह दिन और आज का दिन उनकी पट्टी से लगे बैठे हैं और अल्लाह पाक से एक ही दुआ है कि मरके उठें।"

"आपके शौहर हयात हैं ?"

"लाल किले मे शहजादे कुतुबुद्दीन को तालीम देते हैं···हमारे लिए बस इतने ज़िंदा है कि उनके ऊपर चूड़ी मिस्सी कर लेते हैं, रंगा-चंगा पहन लेते हैं।"

"पहलोठी के बेटे के बाद बुआ के कोई औलाद नहीं हुई।" बेगम ने इत्तला दी।

"अच्छा हुआ बेगम कि नहीं हुई। न होने का एक दुख, होने के सौ दुख। मालूम नही चोर होता, उचक्का होता और यह कुछ न होता तो अपने बाप की तरह तोताचश्म मगरूर होता। अल्लाह आपको जीता रखे हमारे घी नहीं कि पूत नही।"

"बुआ आपसे एक बात कहने को जी चाहता है।"

"कह डालिये मिया।"

"आज से आप नाम की बुआ···मुकाम की मा।"

"ऐ मैं सदके कुर्बान इस मा कहन वाले पर।"

और बुआ ने वहीं खड़े-खड़े चट बलायें ली और पल्लू को मुह पर रखकर बाहर चल गयी और उसकी उमंगों पर जैसे किसी ने पानी उंडेल दिया।

"यह औरत तो जीती-जागती कहानी है बेगम !"

"कितनी ही औरतें कहानियां होती हैं। ऐसी कहानिया जो न सुनी जाती हैं न सुनायी जाती हैं, न लिखी जाती हैं न पढी जाती हैं। सच पूछिये तो उसका घर उजाड़ने वाली अभागिन मैं हू जिस दिन से ये हमारी हवेली में आयी उसी दिन से उसके और शौहर के दरम्यान दीवार खड़ी

हो गयी और बेटे की मौत के बाद तो जैसे एक तस्मा जो लगा हुआ था टूट गया।"

"हमारे नसीब का भी जवाब नहीं है बेगम !

हुई जिनसे तवक्क़ो ख़स्तगी मे दाद पाने की
वो हमसे भी ज़ियादह ख़स्ता-ए-तेग़े-सितम निकले !"

"अल्लाह यह क्या हो रहा है आपको ! देखिये कितनी देर से आपका थैला आपका मुह बंद किये बैठा है इसे अपने हाथों से सुर्ख़रू कीजिये। बादाम निकालकर हमारी हथेली की तश्तरी मे रखिये और आगे भी मैं ही कहूं ?"

उसने मुस्कराकर देखा। थैला खोलकर वह सब कुछ करने लगा जिसका हुक्म दिया गया था। प्याला उठाने से पहले वह गर्दन आगे बढाता। दाहिने हाथ की सुर्ख़ हथेली बादाम लेकर उसकी तरफ़ बढ़ती। वह होंटो से बादाम उठाने के बहाने हथेली को चूम लेता। चूमता रहता। यहा तक कि वह बड़ी-सी बीर बहूटी की तरह सिमट जाती और वह प्याला उठा लेता। एक प्याला पीकर वह बोतल बंद करने लगा।

"बस ?"

"आप भूल गयी···हमने तीन प्याले आपकी कुर्बत पर निछावर कर दिये।"

"चलन वह रखिये मीरज़ा साहब जो उम्र भर निभ सके। कही ऐसा न हो कि ये तीन प्याले तीन दीवारें बनकर हमारे दरम्यान खड़े हो जायें।"

"नहीं···हरगिज नही हो सकता।"

"जानती हू लेकिन मेरे अंदेशों की ख़ातिर एक प्याला और ढाल लीजिए···सच मेरी गुज़ारिश है···आपको मेरे सर की कसम !"

दूसरा प्याला बनाकर उसने अपने सर के बराबर उठाया और 'बेगम के हुक्म के नाम' कहकर एक ही सास मे ख़ाली कर दिया और मसनद से पीठ लगा ली।

"आरज़ू थी कि अपने हाथ से तुम्हारे सोलह सिंगार और बत्तीस अबरन करते, दुनिया जहान में जितने लिबास हैं तुम पर सजाते, तुम्हारी बहार देखते और उन राजाओं, नवाबों और बादशाहों पर रश्क करते जो

तुम्हारे हुस्न की सरकार में बारयाब नहीं हो सकते। लेकिन दिल्ली से निकलते वक्त यह कहां मालूम था कि यह नामेहरबान आसमान इतना मेहरबान हो जायेगा।"

"अगर यह मालूम हो जाता तो क्या करते ?"

"जितना कर्ज मिल सकता लेकर कमर में बांध लेता और कल मथुरा के बाज़ार मे मीरज़ाई करता फिरता।"

"भला ज्यादा से ज्यादा कितना मिल जाता ?"

"लेकिन आप क्यो पूछ रही है ?"

"आपकी आरज़ुओ मे शिरकत करने के लिए।"

"अरे हज़ार-दो-हज़ार तो ले ही मरता।"

"इतना कर्ज तो आपको यही बैठे-बैठे मिल सकता है।"

"वह कैसे ?"

बेगम उठी। मैले कपडो के बुकचे से टाट की सिली हुई थैली निकाली और खोलकर मसनद पर उड़ेल दी। अशरफिया जुगर-जुगर करने लगीं। वह मसनद से हटकर बैठ गया।

"हमारे कबीले के मर्द औरत की गिरह पर ऐश नहीं करते।"

"लेकिन साहूकार औरतों से ब्याज की दर पर कर्ज तो लेते होंगे।"

"क्या मतलब ?"

बेगम ने आखें नीची करके आहिस्ता-आहिस्ता मजबूत आवाज़ मे कहा, "मैं उगाही पर रुपया बांटती हूं। सैकड़े पर एक रुपया माहाना सूद वसूल कर लेती हू। बुआ सब्ज़ कदम का सबसे बडा काम ही यही है।"

और एक आदमी के साथ खाने का ख्वान लेकर आ गयीं। बेगम ने अशरफियों पर रूमाल डाल दिया। बुआ ने मसनद से नीचे सीतल पाटी बिछाकर खाना चुन दिया। बेगम ने सब्ज़ कदम को खास अदाज़ मे देखा।

"क्यों बुआ मैं ब्याज पर रुपया देती हूं या नहीं।"

"हां, बेगम ! क्यो नही देती हैं बस यह कि ब्याज जरा सख्ती से वसूल करती हैं।"

वह हाथ धोने के लिए उठने लगा तो बेगम ने कुर्ते का दामन पकड़ लिया।

"पहले इसमें से सौ मुहरें गिन लीजिये।"

सोच-विचार के बाद जब वह गिन चुका तो बाकी मुहरें थैली मे डाल कर बेगम ने कहा,

"बाजार मे अशरफी का भाव बारह रुपये है। बारह सौ पर बारह रुपये सूद हुआ तो इसमें से एक अशरफी सूद की मुझे इनायत कर दीजिये। लिखा-पढी होती रहेगी।"

उसे अपने कानों पर यक़ीन नही आ रहा था लेकिन रूमाल में बंधी हुई निन्नानवे अशरफियां दो थैली मे रख लेनी पडी। आवाज़ो के परिन्दे उसके कानो से टकराते रहे लेकिन वह ख़ामोशी में खाना खाता रहा।

सुबह के नाश्ते के बाद उसने दोकड़ी लगवाई। बुआ को सामान के पास छोडा और बेगम को पहलू में लेकर सवार हो गया। दोपहर के गजर तक बेगम की ना-ना के बावजूद दुकानों पर मोरज़ाई करता रहा।

सब्ज़ कदम अपनी बेगम के साथ खरीदे हुए सामान के बुक़चे बना रही थी कि अचानक उठ कर खड़ी हो गयी।

"मियां थोड़ी देर के लिए बाज़ार मैं भी जाऊंगी।"

"ज़रूर···जाइए, दर्शन सिंह से कह दीजिए।"

फिर सीढ़ियों पर चाप महसूस हुई।

"महाराज आपका फाटक पर इंतज़ार कर रहे हैं।"

"किसने इत्तला दी ?"

फाटक के बगली दालान के कालीन पर कुंवर अधलेटे थे। उसे देख कर उठ खड़े हुए। औपचारिकताओं के बाद उसने कुंवर के बाज़ू पर हाथ रख दिया।

"दोस्ती का जितना हक़ तुम पर था तुमने उससे ज़्यादा अदा कर दिया।"

"मीरज़ा साहब ! फिर अपने तोते-मैंने उड़ाने लगे आप···यह बताइये कि मुझे पुकारा क्यो गया ?"

"ये सितारो से ख़ूबसूरत दिन जो तुमने तोड़कर मेरे दामन में डाल दिये हैं फिर ज़िंदगी भर नसीब हो कि न हो इसलिए इनसे मैं लज़्ज़त का आख़िरी कतरा तक निचोड़ लेना चाहता हू।"

"तो आप यहां से आगरे के बजाय सीकरी के लिए उठिये और बाकी सब कुछ मुझ पर छोड़ दीजिये।"

"चाहता तो यही हूं लेकिन..."

"लेकिन के मुंह पर जूता! आप ऐश कीजिये...सिर्फ ऐश...बाला-सिंह। घोड़े लगाओ। दर्शनसिंह को हुक्म दो कि हमरकाब हो!"

बारहदरी में सामने के आधे गाव-तकिये पर वह अपना सिर रखे नीम दराज था। पुश्त के आधे गाव-तकिये पर बेगम कुहनियां गाड़े हथेलियों में चेहरा रखे उसके बाजुओं पर आधे-आधे बाल फैलाये सीकरी के सफर का मसूवा सुन रही थी।

"आप तो अलादीन हुए और आपका दोस्त जादू का चिराग!"

उसने सुनहरे सुर्ख बाल दोनों हाथों में भरकर आहिस्ता-आहिस्ता उनके होंट अपने होंटों पर झुका लिए। बाहर पानी बरस रहा था, नहीं बादल फट पड़े थे। बारहदरी में अगर बेगम का चेहरा रोशन न होता तो अंधेरा ऐसा हो गया होता कि हाथ सुझायी न देता।

"एक बात कहूं?"

"नहीं बस!"

"मैं रंगीन कपड़े सिर्फ आपके सामने पहनूंगी। बुआ के सामने भी न आ सकूंगी।"

बालों से भरी हुई मुट्ठियां ऊपर से नीचे आने लगीं और होंटों पर कलियां चटकने लगी। आंखें एक-दूसरे को अपने ख्वाबों के खजीने दिखलाती रहीं। दाद वसूल करती रहीं। सांसें एक-दूसरे की खुशबू का तबादला करती रहीं और बदन एक-दूसरे की आंच में तपते रहे। खुद फ़रामोश हो गये, वक़्त फरामोश हो गये।

सीढ़ियों पर बुआ किसी से बुलंद आवाज़ में बातें कर रही थी। खिले हुए फूल की पत्तियों की तरह वे एक-दूसरे से जुदा हो गये। मशालची बारहदरी जगमगा कर छतरी की तरफ चला गया। बेगम ने सदर के फानूस के नीचे खड़ी होकर अंगड़ाई ली तो जैसे कायनात की हड्डियां चटखने लगीं। आंखें खोलीं तो बड़े-बड़े बेदाग़ी मोतियों पर स्याह हीरे की पत्तियां तड़पने लगीं। खुद शराब साकी के होंटों के स्पर्श से मस्त हो गयी,

सरमस्त हो गयी ।

"बुआ तो बहुत भीग गयी ।" बुआ को उनके वजूद की अहमियत का एहसास दिलाने के लिए उसने कहा ।

"भीग कहां गयी···चूड़ा हो गयी चूड़ा ।"

बूढ़े पादरी की बोतल खोली थी कि दर्शन सिंह ने हाज़िरी की इत्तला देकर बुआ के हाथ में एक डोरी पकड़ा दी । डोरी खुली । चुने हुए मुर्ग के साथ केसर-कस्तूरी की बोतल देखते ही अपने प्याले से मिट्टी के तेल की बू आने लगी । बेगम ने बोतल गोद में रखकर कनखियो से खास अंदाज़ में देखा :

"यह आखिर है क्या ?"

"कुंवर ने ज़ाफ़रान का शर्बत भेजा है । यह राजपूतो का चहेता मशरूब[1] है । इस मौसम में बड़े चाव से पीते हैं ।"

"मीरज़ा साहब आप तो चुटकियों मे उड़ाने लगे··· यह खुली हुई शराब है ।"

"तो यह कहिये बेगम ! शराब होती तो हम मुद्दतो पहले ढाल चुके होते । इस तरह आराम से आपकी गोद मे न रखी होती ।"

"इसे अपने पास रख लीजिये दिन मे किसी वक़्त काम आयेगा ।"

"कुंवर साहब तो पीते ही होंगे ।"

"जी शाकाहारी है पक्का···शराब-कबाब तो बड़ी चीज़ है वह प्याज तक नही छूता ।"

और बेगम के चेहरे पर यकीन की रोशनी-सी फैल गयी ।

सुबह के नाश्ते के बाद अनानास के खमीरे के घूट ले रहा था कि आदमी ने हज्जाम की हाज़िरी की इत्तला दी और छतरी खोलकर बढ़ा दी । वह सीढ़ियों पर था कि बेगम ने पूछा कितनी देर लगेगी और सीढ़िया उतरने लगा । फाटक तक बाग की पटरी के दोनों तरफ़ तालाब बन गये थे और उसमें छम-छम बूदें गिर रही थीं । दालान में खड़ी चारपाई के पास एक आदमी मैला कुर्ता और तहमद पहने कंधे पर लाल खुला हुआ अंगोछा डाले किस्बत[2] बगल मे दबाये खड़ा था । हज्जाम को देखकर मायूसी हुई

1. पेय 2. नाई का सामान रखने की पेटी

लेकिन मजबूरन बैठ गया। उसने कधे से अंगोछा उतार कर जो पटका तो बदबू से दिमाग फट गया लेकिन वह बैठा रहा जब लाल कपड़ा गले में बाधना चाहा तो उसने मना कर दिया।

"तुम सिर्फ दाढी मूड दो और जल्दी करो।"

उसने कैंची निकाली तो लगा जैसे पुरातत्त्व की खुदाई से बरामद हुई हो। किसी तरह गेंसू दुरुस्त करा लिए लेकिन जब उस्तरा देखा तो रूह फ़ना हो गयी कि गोश्त बनाने वाली छुरियो से भी बदतर था। हज्जाम पूरी तवज्जा और मेहनत के साथ चमड़े के टुकड़े पर पटक-पटक कर टे रहा था और वह जिबह होने वाले बकरे की तरह बेबसी से देख रहा था। फिर उसने किस्वत से इतहाई गदी कटोरी निकाली और लपक कर परनाले के पानी से भर ली। अब सब्र की इतहा हो चुकी थी। उठ खडा हुआ जेब से दो पैसे निकाले, उसकी हथेली पर रख दिये। उसने झपट कर अंटी मे रखे और किस्बत मे अपने हथियार रखने लगा। फाटक पर दर्शन सिह ने सवालिया नजरो से देखा और खड़ा हो गया।

"यह भेड़ें मूडने वाला हज्जाम कहा से पकड़वा लिया तुमने…हमारे काम का नही है।" और वह छतरी खोलकर बारहदरी की तरफ चल पड़ा। दर्शन सिह कुछ कहता हुआ साथ-साथ चला लेकिन उसने सुनी-अनसुनी कर दी। खाली बारहदरी के पिछले दरो पर मोमजामे के पर्दे खुले पडे थे। उसने एक झरी पर आंख रख दी। होज के किनारे खड़े मोरपखी के दरख्तों के उस पार होज की छतरी मे एक परछाईं चमक गयी। वह बाहर निकल आया। खासी तेज बूदो मे दरख्तो के नीचे-नीचे फसील के किनारे-किनारे होता हुआ छतरी के पीछे आ गया। छतरी के अदरूनी फर्श और होज के पानी की सतह के सगे तकसीम पर बेगम का सिर रखा था और ढेरो बाल खुले पडे थे और हल्की-हल्की लहरों पर लरज रहे थे और बुआ उबटन मल रही थी। वह गुल दावदी की धरती छूती शाखो के दरम्यान निगाह के एक-एक गोशे को गुल बदामा[1] किये खड़ा था। पानी उसके कुर्ते की आस्तीनो और पायजामे के पायचों से टपकने

1. प्रफुल्लित

लगा। टपकता रहा। जब संगीन छतरी थियेटर के पर्दे की तरह खाली हो गयी तो वह बारहदरी की तरफ़ चला। बुआ छतरी लगाये पटरी पर छपर-छपर करती फाटक की तरफ जा रही थी। पायंदाज पर कदम रखते ही निगाह धनक हो गयी। वह दूधिया रंग का जयपुरी जोड़ा पहने बाल गूथ रही थी। आंख मिलते ही बीरबहूटी हो गयी। सच्चे काम के चौड़े-चौड़े किनारों के आबे रवां[1] के दोपट्टे की आड़ से बोली,

"अल्लाह आप कहां से आ रहे हैं जो इतना भीग गये।"

"कपड़ा दीजिये वरना सारा फ़र्श मिट्टी हो जायेगा।"

जयपुरी चोली की ऊंची सुर्ख आस्तीन से चमकता हुआ सुडौल बरहना तंदुरुस्त बाजू कपडे देने के लिए दराज हुआ तो एक मजबूत पंजे की की गिरफ़्त में फड़फड़ाने लगा।

आसमान पर बादलों की रणभेरी बजने लगी थी कि इन्द्र की फ़ौज के हाथियो ने चढ़ाई कर दी। बिजली चमक रही थी कि अखाड़े वालियों के आंचल ढलक रहे थे। फाटक की सिम्त की दरों पर पर्दे पड़े थे और वह घुआंधार पानी बरस रहा था कि हौज की छतरी नजर आ रही थी और न दीवार। वह मसनद से लगा बैठा था। पास ही खभे का सहारा लिए बेगम लेटी हुई थी। हफ़्तरंग काम की दो-दो बालिश्त चौड़ी घाघरे की गोट से कच्ची चांदी की पिंडलियां झांक रही थीं और उनके दरम्यान बरसात को कामिल बना देने वाला सामान रखा था।

"कल जो शे'र आपने सुनाया था वह सुनाइये···नहीं पूरी गजल सुनाइये और उसी तरह सुनाइये जिस तरह आपने लाल किले के मेहताब बाग़ वाले मुशायरे में सुनाया था कि यहां से वहां तक हू का आलम हो गया था।"

1. बारीक सफेद कपड़ा

"अच्छा अगर हम आपके हुक्म की तामील कर दें तो आप क्या इनाम देंगी ?"

"हमारे पास देने को है क्या मीरजा साहब !"

"बेगम कुफ़राने नेमत[1] और इतना—

अगर ईं तुर्क लाला रुख़ बदस्त आरद दिले मारा

बहाल हिंदोश बख़्शम समरकंद-ओ-बुख़ारा !"

(अगर वह महबूब जिसका चेहरा लाले के फूल की तरह हसीन है मुझे नसीब हो जाये तो मैं उसके एक तिल पर समरकंद और बुखारा कुर्बान कर दूं।)

"समरकंद-बुखारा अगर आपके पास हुए होते तो ये शे'र न पढ़ पाते।"

"ख़ुदा की कसम अगर समरकंद-बुख़ारा हमारे पास हुए होते तो इस तरह पढ़ते जिस तरह पढ़ने का हक़ था।"

"अच्छा ख़ैर बहलाइये मत ग़ज़ल शुरू कीजिये।"

उसने प्याला ख़ाली करके रख दिया और मतला छेड़ दिया—कौन जीता है तेरी ज़ुल्फ़ के सर होने तक ! जब ग़ज़ल ख़त्म करके आंखें खोली तो देखा बुआ दमबख़ुद बैठी है और एकटक उसे देखे जा रही हैं।

"मियां मैं पढ़ी न लिखी लेकिन इतना जानती हूं कि आपको सुनकर कलेजा वहां नहीं रहा जहां था।"

बेगम ने गर्दन झटक कर पेशानी पर झुके हुए बालों को उठाया और नज़रें झुका लीं।

"हां तो बेगम साहब हमारा इनाम !"

वह हाथ बांध कर साइलों[2] की तरह खड़ा हो गया और बुआ अपने आंचल में मुंह छुपा कर उठ गयी।

"सुनिये, बैठ जाइये ! हमने आपको मां कहा है। मुग़ल बच्चे बात पर जान हार जाते हैं। देखिये बुआ आपकी बेगम बात हार गयी हैं इनसे कहिए कि जो कुछ हमें मांगना है आपके सामने मांगने दें।"

1. ईश्वर की दी हुई नियामतों की अकृतज्ञता (मुहावरा) 2. याचक

"मांगिये।"

साथ ही गाव-तकिये के नीचे से घुंघरुओं का जोड़ा निकाला और बेगम के पैरों के पास छम से गिर पड़ा।

"हम आपका रक़्स देखना चाहते हैं।"

बड़ी देर के बाद बड़ी तकलीफ के साथ लंबी-लंबी मखलूती उंगलियों ने घुंघरू बांध लिये। उठी तो जैसे कयामत उठती है। दोपट्टे के पल्लू कमर के गिर्द बांधे तो देह खिल उठी। मांसल पांव उकाब के पैरों से भी हल्के मालूम हुए। पूरे जिस्म में कहीं हड्डी न थी, कहीं जोड़ न था, कहीं गिरह न थी। न सारंगी का ज़ेर, न तबले का बम लेकिन कत्थक की मुश्किल से मुश्किल भंगिमा इस तरह अदा कर रही थी कि आंखें यकीन करने से आजिज़ थीं। उंगलियों की महारत, अबरुओं और आंखों की चलत-फिरत, गर्दन की झटक, कमर की मटक, सीने की थरथरी और कूल्हों की गुदगुदी और सब पर आफत वह ठोकर जिसके सामने हर तशबीह बेनमक और बेजान। चांद पेशानी का पसीना, ठुड्डी तारा हो गया लेकिन न कोई अदा ओछी हुई, न अदाज़ भारी। वह चंद कदम के फ़ासले पर आंखों के पूरे हाले में नाच रही थी लेकिन आंखें पूरे बदन की फ़न्नी जुंबिशों की दाद से आजिज़ थीं। अगर आंखों के वार से बिस्मिल हो लिए तो कमर के ख़म की घात से महरूम रह गये। दोपट्टे के पल्लुओं की लटक, चोली के कसाव की झमक और घाघरे के भंवर—एक दिल और इतनी घातें। उसने घबराकर हाथ जोड़ लिए और वह खड़ी हो गयी जैसे सब कुछ वहीं ठहर गया।

"सुबहान अल्लाह बेगम ''सुबहान अल्लाह! क्या रातों में उठ-उठ कर रियाज़ करती रहीं। मुझ कहन वाली के मुंह ख़ाक। बड़ी-बड़ी तैयारियों में भी तो ये सुभाव नहीं होते, ये सजाव नहीं होते, ये रचाव नहीं होते।"

बुआ घुटनों पर हाथ रखकर खड़ी हो गयी और उसका हाथ कलकल मीना के प्याले से हंसने लगा। उसने प्याला सिर के बराबर उठाकर नारा लगाया—अगर ईं तुर्क रक़्क़ासा बदस्त आरद दिले मारा!

दूसरे दिन जब पानी थमा तो उसने कुंवर को ख़त लिखा कि नौकरी

का सफर तो वस्ल की मुद्दत बढाने का एक बहाना है। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि सीकरी सफ़र से जो दिन बनते हों ये दिन हम कृष्ण नगरी की उसी बारहदरी मे खडे कर लें। शाम होते-होते सवार जवाब लाया कि सीकरी सफर की खखेड से हम खुद आपको बचाना चाहते थे अच्छा हुआ कि आपने खुद ही लिख दिया। हमारी तरफ से यह बारहदरी आपके ऐश के लिए बनायी गयी है। राजा हमारा दोस्त और अम्ला हमारे मातहत है। बेगम जो सीकरी के सफर के खौफ से जर्द हो रही थी इस खबर से गुलाबी हो गयी। बुआ गुडहल के फूलों का शरबत बना रही थी।

"तीनो गिलास यही ले आइयेगा···और बेगम जरा आप केसर का शरबत उठाइये।"

उसने पूरी सजीदगी के साथ बोतल खोलकर गिलासों को लबरेज कर दिया और आहिस्ता-आहिस्ता चुस्कियां लेने लगा। सीढियो पर मालन फूलो के गहने लिये खडी थी। बुआ ने एक रुपया हाथ पर रखकर गहने ले लिये। बेगम गहने उलट-पुलट कर देखती रही और घूट लेती रही। गिलास खाली करके बुआ ने हाथ धोये और उन्हें पहनाने लगी।

"बुआ ने मिस्री कम डाली शर्बत मे।"

"ऐ लीजिये बेगम मिस्री तो बराबर की घुटी है। मैं तो जानू इस केसर का कुछ कुसूर है।"

"हां, कुछ तल्खी-सी तो जरूर महसूस हुई।"

उसने मौके की नजाकत का ख्याल करके बेगम की ताईद की। बुआ कुछ कहने ही वाली थी कि धोबन नजर आ गयी और वे दोनों कपडे रखने-उठाने और देने-दिलाने में उलझ गयी। धोबन के जाते ही उसने बेगम का हाथ थामा और हौज के नीचे-नीचे टहलता हुआ दीवार के बुर्ज तक आ गया। नीचे तारीख को अपनी गोद मे पालने वाली जमना बह रही थी। लहरें उठ-उठकर उन्हें देखती और हिकारत से आगे बढ जातीं कि आज जहा तुम बैठे हो, कल यहा कोई और बैठा था और कल यही कोई और बैठा होगा। वक्त की जिंदा शानदार अमानत को वे देर तक देखते रहे। पहलू मे बैठी हुई बेगम का सिर ढलक कर उसके कंधे पर आ गया। उसने हाथ लगाया तो वह टूटकर गोद मे आ गयी। यह शाम कितनी खूबसूरत

होंठे अन्दर सिर पर जुदाई की तलवार न लटक रही होगी। जुदाई तो हर वस्ल का अन्जाम है दुनिया की बनाई हुई न सही और की उतारी हुई सही। उन पर नज़ आता है, इन पर भी आ जायेगा।

"बेगम क्या ऐसा नहीं हो सकता कि हम और आप…"

बेगम ने उनके मुंह पर हाथ रख दिया। मेहताब रात के सफेद गुलाब से ज्यादा नाजुक और जिंदा हाथ जिसके स्पर्श से उनके होंठ महक गये।

"देहली से समझा रही हूं आपको कि हमारे खानदान की बेवा शादी नहीं करतीं।"

"क्या आपका खानदान खानदाने रिसालत पनाह।"

"नौज बिल्लाह [1] कुफ्र बकने लगे आप ?"

"हम आपको सनद दे रहे थे। समझा रहे थे। आप सूली के तख्ते पर खड़ी हैं। उतर आइये। अपने लिए न सही, हमारे लिए उतर आइये।"

और उसने हाथ थाम लिया जो मुलायम होता गया। आंखें आंसुओं से और बड़ी होती गयी और कातिल होती गयी। वह अपने बदन पर सजते हुए फूलों के गहने बराबर करने के बहाने अपनी उंगलियों से बदन को चूमता रहा और वह खामोश बैठी रही। रात बदनसीबी की तरह दबे पांव आयी और छा गयी। हौज की छतरी तक रोशन हो चुकी थी। खंभे के सहारे लगे-लगे बुआ की आंख झपक गयी थी। आहट पर उठीं फाटक की सिम्त के पर्दे गिरा दिये।

"जब खाना खाइये आवाज़ दे दीजिये।"

और वह बाहर चली गयीं। बेगम उसके पहलू में पड़ी नीमबाज आंखों से सब कुछ देख रही थीं और कुछ नहीं देख रही थीं। उसने मसनद पर लिटा दिया और उनकी चोटी की गिरहें खोलने लगा…रात के किसी पहर बेगम की आंख खुली तो उन्होंने देखा सिरहाने उनकी गोद में हैं और घुंघरू पड़े हैं। पैरों पर एक हाथ लरज रहा है और पीठ गाव तकिया से लगी है और निगाहें उनके चेहरे पर लड़खड़ा रही हैं। उन्होंने अपनी नजरें समेट कर पलकें ढांप लीं।

1. खुदा न करे ऐसा हो

पहलू-पहलू महकते हुए दिन डूब गये। करवट-करवट झमकती रातें गुज़र गयीं और रोज़े हश्र आ पहुंचा। सर पर सूरज खड़ा था जैसे सवा नेज़े पर उतर आया हो। बेगम अपने रिवायती स्याह कपड़े पहने उसके सीने पर बिखर रही थी पर अपनी मुट्ठियों में उसका गिरेबान पकड़ लिया। आंसुओं से तर-ब-तर आंखें उठाईं। खूने जिगर से लालो-लाल आवाज़ में बोली,

"अब कहां मिलोगे ?"

और आबले की तरह फूट बही। उसने कुछ कहना चाहा लेकिन आवाज़ ने साथ न दिया। बुआ उसके सामने बैठ गयी। उसने उतर कर दरवाज़ा बंद किया और दूसरी गाड़ी में अपने समान के साथ रवाना हो गया। उनके एड़ लगाते ही बेगम की चोकड़ी उनके पीछे उड़ने लगी।

वह हरगोपाल तफ़्ता के बजाय राजा मंडी की सराय में उतर पड़ा। खफ़्तान खूंटी पर डाला और बोतल खोलकर बैठ गया। न वक़्त न मौसम, न गुलाब न गजक। एक झोंझल थी कि प्याले पर प्याले उंडेल रही थी और नशे का कहीं कोसों तलक नाम न था। दरवाज़े पर दस्तक हुई। उठ-कर जंजीर खोली। आगे-आगे कुंवर पीछे-पीछे उसके आदमी। अंदर आये और सामान उठाने लगे।

"हम समझे थे कि आप अपने आबाई[1] मकान में उतरेंगे इसलिए चुप थे। लेकिन सराय में उतरना आपकी नहीं हमारी आबरू के खिलाफ़ है।"

"वह मकान तो मुद्दत हुई प्याले में घोलकर पी गया। महाजन की शराफ़त है कि मेरी आमद पर दीवानाखाना खोल देता है लेकिन इस बार मेरा इरादा 'तफ़्ता' के घर उतरने का था लेकिन दिल का जो हाल है तुम देख रहे हो।"

1. पैतृक

वह कभी कुवर का मेहमान न हुआ था। उतरा तो दरो-दीवार बिछ गये। एक छाला था कि कुवर की हथेली पर रखा था। नन्ही बेगम से बालाबाई तक वह कौन-सा नाम था जो कदमो में पडा मचल न रहा हो। आगरे से भरतपुर तक के बाजारों मे कौन-सी शराब थी जो बहा न दी गयी हो लेकिन दिल था कि थामे न थमता, संभलते न संभलता। एक रात भरी महफ़िल मे उसने कुवर के घुटने पर हाथ रख दिया,

"क्या नाम-ओ-पयाम की कोई सूरत हो सकती है?"

"कमीदान की हवेली है मोरज़ा साहब लाल किला नही कि परिंदा पर न मारता हो और इस शहर की मश्शाताओं[1] में ऐसी-ऐसी अल्लामा पडी है कि तलवारो के पहरे से आखो का काजल निकाल लाये। उधर का हाल आप जानें इधर तो सिर्फ हुक्म की देर है।"

"तो कोई सूरत पैदा करो।"

"सुबह होने दीजिये। हर किरन के साथ एक सूरत पैदा होगी।" और प्याला हाथ में दे दिया।

जुदाई की हर रात की सुबह देर से आती है लेकिन वह सुबह तो कई रातें हज़्म करके आयी। नाश्ता करके पेचवान से शग़ल कर रहा था कि कुंवर एक सफेद बुर्के के साथ सदर दालान मे आ गये।

"मीरज़ा साहब यह हमारी खाला हैं इनके लिए और बेधडक कीजिये।" और बुर्के का नक़ाब उलट गया। चेहरा अगर हरफों का बना हुआ तो आखें जेरो-ज़ब्र मे तुली हुई। इतने रख-रखाव मे वह आकर बैठी कि स्वागत को मजबूर होना पड़ा। उसकी चुप्पी पर कुवर ने टहूका दिया,

"जीजी के मरहूम शौहर का नाम बताइये?"

"क्या कीजियेगा जानकर!"

"मिया आप डाल-डाल भटक रहे हैं और मैं पात-पात से गुज़र चुकी···आप नाम लीजिये तैमर खान!"

"आगा सरवर जान वाले···पाच-छः बरस पहले जो अलवर की लड़ाई में खेत रहे।"

1. स्त्रियों का बनाव-सिगार करने वाली स्त्री, प्रसाधिका

"जी हा, आग्रा मरहूम के बड़े बेटे···आपने सही समझा।"

मुस्कुरा दी इस तरह कि पूरा चेहरा मुस्कुरा दिया। आंखो तक से हंसी की फव्वारें पडने लगी। बडे ठस्से से उठी। एक कदम चली। तडप कर फिरी।

"मैं सदके मेरा भतीजा क्या हुआ?"

"हाजिर हुआ खाला जान!"

कुवर कही से लपक कर आये।

"मेहमान को ठहराने का इतजाम करें महाराज!"

"जी!"

दोनो के मुह से जैसे एक साथ चीख निकल गयी।

"मेहमान के लिए फर्श बिछाइये। पर्दे लगवाइये। फानूस जलाइये। अल्लाह ने चाहा तो एक सूरज डूबने से पहले दूसरा सूरज उसी दालान पर चढ़ेगा।"

वह अपनी पैजारें पहन रही थी। कुवर ने दस रुपये हथेली पर रख कर पेश किये।

"ऐ नोज[1] मैं कोई कुटनी दलाल हू। आपका खाला-खाला कहते मुंह सूखता है। कभी न कभी एक बात कही है तो अपने सफेद चूडे पर स्याही लगाने उठ पडी।" और बुर्का सभाल नकाब डाल लप-झप डोली में सवार हो गयी और वे दोनो एक-दूसरे को देखते रह गये।

"क्या औरत है!"

"पूरे अकबराबाद (आगरा) मे एक है।"

सूरज डूबे एक मुद्दत हो चुकी थी तब कही अल्लाह-अल्लाह करके खाला की डोली उतरी। और कुवर हुकारे,

"सूरज कहा है खाला जान?"

"तोबा कीजिये महाराज···आधी रात मे सूरज कहां! खैर से सुबह होने दीजिये। माथे सूरज ठुड्डी तारा सब कुछ हो जायेगा।"

"लेकिन कुछ बताइये तो?"

1 खुदा न करे, एक सबोधन

"बताइये भी तो क्या-क्या बताइये ? किस्सा कोताह[1] बेगम हज़रत के मरहूम शौहर मुझ कमनसीब के भतीजे हैं। एक वहन की उनकी मा, दूसरी की मैं। तो क्या मेरा कुछ भी हक न हुआ। पूछती-पाछती पहुची। शादी-ब्याह का घर काम पर काम लेकिन मैं जो मूरत देखते ही गश खाकर गिरी तो कैसा बावर्ची खाना कहा का तोशाखाना ! सारी ड्योढी महलसराय एक हो गयी। आखिर को तय पाया कि असल खैर से कल दिन चढ़े ससुराल जायेंगी और वरात तक कयाम करेंगी। मकसद···आगे की आगे देखी जायेगी और ईमान की तौबा है कि बुआ सब्ज कदम अगर पैर न टेकती को बनती बिगड़ जाती। लेकिन उस अल्लाह की वदी ने ऐसा गिरती को संभाला है कि क्या कहूं···तो सुबह अमन-चैन से डोली लाऊंगी लाल पर्दे की···"

लाल पर्दे पर खुद भी कुवर के साथ ठहाका लगाकर हंसी।

"और सरकार चले आयेंगे।"

"बधे हुए !"

"मियां हक तो यह है कि आप अभी चलें कि रात है कोई देख भी ले तो धुधला लूगी लेकिन दिन की रोशनी मे किस-किस की आखो मे धूल झोकूगी और यह भी कि डोली ही से उतरिये।"

ज़रा देर के बाद कुवर ने कहा, "आप चल रखिये खाला यह अभी आते है और डोली ही से आते हैं।"

प्यादा वीरान सड़क पर ठहर गया। सुनसान गली मे चार कदम चल कर कहारो ने डोली रख दी। दरवाज़े पर दस्तक दी तो बुआ सब्ज़-क़दम !

"बुआ !"

"और नही ये आग तूफान की उम्रें। किसी की शादी का—मर्ग का मेरे मुह में खाक, कारन बन जाती मैं।" दरवाज़ा बद कर शमादान उठाकर आगे बढी। छोटे-से सहन पर चबूतरा, दोनो तरफ सेहनचिया, सामने दालान मे उजली चांदनी के फ़र्श पर उजला बिस्तर लगा हुआ और

1. अतएव, गर्ज़ है कि

उसने घबराकर देखा तो बेगम खडी है। एक देव पैकर शमा की क़द्दे आदम लौ की तरह रोशन है और बुआ सब्ज कदम बिस्तर के पायंती से अपनी चादर उठा रही हैं।

"इतना तेज़ मत दौडिये मीरज़ा साहब कि थक कर बैठ जाना पडे।"

ये दिन और रात के सपेद-ओ-स्याह मोती मेरी तकदीर ने आसमान की जेब से काट लिए हैं। उनको गिनने दीजिये, भुनाने दीजिये, ऐश करने दीजिये। सोचने को उम्र पडी है, सोच भी लेंगे।

सुबह नाश्ते के दस्तरख्वान पर बुआ सब्ज कदम के मुह से निकला,

"खाला बेगम मीरज़ा साहब की मौजूदगी अगर मश्क की तरह फूट बही तो क्या करोगी?"

"ऐ करूगी क्या? शजरा[1] है तो सोने के पानियो से लिखा है। शहरा[2] है तो डके चढकर बाज चुका है। छाती ठोक कर कह दूगी कि हम पुश्तों से मीरज़ा साहब के घराने के मुतवस्सलीन[3] मे रहे हैं। आज सुना कि मीरज़ा साहब आगरे आये और राजा मंडी की सराय में उतरे और वहां से कुवर महाराज उठा ले गये तो हम कुवर साहब से खिदमत करने को माग लाये चार दिन के लिए। कोई जवाब है तुम्हारे पास बहन सब्ज कदम?"

बेगम ने अशर्फी रूमाल मे रखी और खाला जान की तरफ बढ़ा दी।

"खाला जान बावर्ची खाने की कमी-बेशी देख लीजिये।"

"ऐ तौबा बेगम! आप मेरी धी और यह दामाद! और मैं दुखियारी तुम तीनो की मामा।"

"खुदा न करे, आप हमारी बहन हैं बाजी बेगम हैं।" बेगम ने उनको टोक दिया और वह पलट गयीं।

"मैं कोख जली इस काबिल कहां बेगम कि धी-दामाद का सुख देखू। या सब कुछ था, या सब कुछ न रहा। झाडू फिर गयी। लेकिन खुदा का शुक्र है कि इस झोपडे के अलावा एक मकान और भी है एक दूकान भी है और मैं अकेली जान कितना खाऊ और क्या पहनू? कुंवर महाराज के

1 वश-वृक्ष 2 धूम-धाम 3. वसीला ढूंढने वाले (नौकर)

तसद्दुक[1] में आप आ गयी तो जरा रोशनी हो गयी नहीं तो अकेली बैठी कौवे हड़ाया करती। जब कभी दिल्ली आऊंगी हिसाब करके खाने खिला दीजियेगा।"

अशर्फ़ी का रूमाल उनके क़दमों में रखकर बावर्ची खाने में चली गयी।

"मोहब्बत की भूखी है और दुखियारी भी है।"

"मगर है चलत्तर।"

बुआ ने बर्फ़ की तरह ठंडे लहजे में कहा। बेगम उधर देखने लगी।

"जैसी भी है हमारे काम आती है, और हमारे काम की है।"

लेकिन बेगम सोचती ही रहीं। सब्ज़ कदम बावर्ची खाने में उसका हाथ बंटाती रही और वह बेगम के सामने अपनी रातों के काटे निकालता रहा। वह खासती-खखारती आयी। उसके सामने पेचवान लगाकर मुड़ने लगी तो रोक ली गयी।

"खाला जान एक बात कहूं?"

"फ़रमा दीजिये मियां!"

अकबराबाद बहुत रह लिये आप अब हमारे साथ शाहजहांबाद चलिये।"

"शाहजहांबाद तो मेरी खोपडी पर सो रहा है। इसे छोड़कर उसके बरबाद-आबाद में जाकर क्या करूंगी। हां, अगर आपके काम आ सकू तो खाल उतार दू, जूतियां बना लीजिये।" और वह चली गयी।

"बेगम से जो हम कहेंगे करेंगी।"

"जैसे आज तक आपने कहा है, वह नहीं किया है। खालाजान हमारे साथ चलेंगी।"

"मुक़र्रर चलेंगी।"

तीन दिन और तीन रातें गुज़र गयीं। उसे चांद-सूरज ने नहीं देखा तो बेगम कंधे पर हाथ रख कर बैठ गयीं।

"आप घबरा गये होंगे, जाइये कहीं टहल आइये।"

1. सदके में, बहाने

"हम वह प्यासे हैं कि आप अगर समंदर होतीं तो भी पी जाते । आप तो शबनम की तरह नसीब हो रही है । छोड़ कर उठने के ख्याल ही से दिल बैठने लगता है ।"

बेगम तारों की छाव में दुल्हन को विदा करके आयी तो उसे टहलता पाकर जहां खडी थी वही खडी रह गयी । फिर उसकी गर्दन का हार हो गयी।

"शादी से भरा घर अब घूमने निकलेगा । हम कहा मुह छिपाये फिरेंगे । आप कहा इस चूहेदान में बंद रहेंगे । मेरी मानिये तो अल्लाह का नाम लेकर तैयारी कीजिये ।"

"हम आपके साथ ताजमहल देखे बगैर चले जायें तो शाइर न हुए भटियारे हुए ।"

"अल्लाह, अभी उस रोज़ तो देख चुके हैं ताजमहल साथ-साथ । '

"उस रोज़ का देखना भी कोई देखना था कि ताजमहल का गुंबद झुक-झुक कर देख रहा था और चारो मीनार अपने हाथ उठाये दुआ मांग रहे थे कि एक चलते फिरते आफताब का नकाब उठ जाये तो वो सरफ़राज़ हो जायें लेकिन नक़ाब था कि गाज़े[1] की तरह चिमटा रहा ।"

रात की चोटी कमर पर लोट रही थी जब वह ताज के दरवाज़े पर उतरा । फाटक बंद हो चुका था । खिडकी पर मशाल जल रही थी । कुंवर के चोबदार ने दरबान की हथेली चमकाई और दरवाजा खुल गया । पूरे चाद की रोशनी में चांदी के पहाड की तरह जगमगा रहा था । सदर इमारत की सीढियों पर चढ़ते-चढते वह उस पर झूल गयी,

"डर लग रहा है ।"

"हा, हुस्ने बेपनाह से डर भी लगता है । हुस्ने मुतलक[2] यानी खुदा की एक शान जलाल भी है ।"

जमादार अपने प्यादो के साथ सीढियों पर बैठ गया था । जमना के रुख पर पहुंचकर उसने बुर्का उतार कर फेंक दिया और पूरा चमन का चमन बांहों में समेट लिया ।

1 मुंह पर मलने का पाउडर 2 उन्मुक्त सौंदर्य

"अगर शाहजहां की रूह आ जाये ?"

"तो हम ऐसा कसीदा पढ़ें कि साइब और कलीम[1] की उम्र भर की कमाई हर्जा सराई मालूम होने लगे।"

"आपको डर नही लगेगा ?"

"जरूरी नही कि छोटे बादशाह बडे बादशाहो से डर ही जायें।"

"छोटे बादशाह ?"

"हां, शाहजहां मुल्को-माल का बड़ा बादशाह था हम हर्फ़ो-लफ्ज के छोटे-से बादशाह हैं। लेकिन बादशाह हैं—

पाता हू उससे दाद कुछ अपने कमाल की
रूम उलकुदस अगरचे मेरा हमजबां नही !"

"ये शे'र आप ही का है ?"

"ये शे'र नही हकीकत है और इस पूरे दौर में सिर्फ हमारी हकीकत है। रदीफों की भेड़ें चराने वाले और काफ़ियो के बताशे बनाने वाले हमारे मुंह आते है और अपनी सुनहरी बेसाखियो के सहारे हमारे कंधों पर खड़े हो जाते है। हम शे'र नही लिखते है बेगम अंधों के सामने मोतियों के ढेर लगाते हैं और बहरों के सामने बुलबुलो को सबक पढ़ाते है। पूरी दिल्ली क्या पूरे हिंदोस्तान मे एक मोमिन खां है जो शे'र कहना जानता है और ग़ज़ल सरंजाम करता है लेकिन कसीदा लिखने से आजिज है बाकी किसी के यहां शाइरी रियासत का तुर्रा है और किसी के यहां रियासत का दुम-छल्ला और किसी के दस्तारे फ़ज़ीलत[2] का शिमला ''आप जब दिल पर हाथ रखती हैं तो लगता है किसी ने ज़ख्म पर मरहम रख दिया वरना एक उम्र हुई कि नमक-पाशियो[3] के अंदाज़ देख रहे हैं। यह गुंबद पर चाद देखिये जैसे किसी ने सोने का चंग उड़ा कर बीच आसमान पर साध लिया हो। अगर इस मस्जिद और मेहमानखाने की इमारतें कही और होती तो लोग मंजिलों पर मंजिलें मारकर देखने आया करते लेकिन ताज की आबो-ताब के सामने बुझ कर रह गयी जैसे आपके पहलू में हमारे सारे ग़म

1. फारसी के प्रसिद्ध कसीदा गो शाइर 2 फ़ाज़िल होने की पगड़ी
3. घाव पर नमक छिड़कने वाले

धुंधला कर रह गये।''

"उधर सीढ़ियों की तरफ़ चलिये।"

"बेगम अगर एक तरफ़ ताज हो और दूसरी तरफ आप तो हम ताज को छोड़कर आपको थाम लें।"

"इसलिए कि ताज आपका होकर भी आपका नही हो सकता है जैसे ताज मुमताज का होकर मुमताज का नही शाहजहां का ही रहा।"

"जैसे आप हमारी होकर भी हमारी नही है।"

"हमने सुना था कि आपकी हवेली मे आपकी बहन आपकी तनहाई की वजह से रहती है।"

"दुरुस्त है।"

"तो आप हवेली किराये पर उठा दीजिये और कुदसिया मस्जिद के पास एक मकान खाली पडा है वह ले लीजिये और बुआ और खालाजान के साथ आज़ादी से रहिये।"

"मैंने आपसे अर्ज किया था कि आप बहुत तेज दौड रहे है। मैं ऐसा आबगीना हू जिस पर बाल पडा हुआ है एक ज़रा सी ठेस मे चूर-चूर हो जाऊँगी। रहा मकान तो उसमे बसने के लिए हवेली किराये पर चलाने की ज़रूरत नही।"

और उसने हाथो के कवल आखो पर रख दिये।

"अल्लाह आप देख रहे है ताज रग बदल रहा है।"

"हा, ताज रग बदलता है···लेकिन हमने ताज की तकदीर बदलते देखा है।"

"मैं समझी नहीं।"

"जब महाराजा सूरजमल ने आगरा फतह किया तो हिंदुओ के मौलवियो ने फतवा दिया कि 'ब्रजराज' आगरे से सीकरी तक तमाम इमारतें तोड़कर औरगजेब की मदिरशिकनी का इतकाम ले ले। जब महाराजा टस से मस न हुआ तो दरबारियों ने हुक्म लगाया कि हिंदोस्तान के मुसलमान बादशाहों का दस्तूर रहा है कि अगर मुसलमान फ़रमारवा का भी मुल्क फतह किया तो इमारतें तोड़कर फेंक दी और उन्ही के मलबे से खुदबदौलत ने अपनी इमारतें खड़ी कर ली। आप भी ताजमहल तोड़कर भरत-

पुर मे सूरजमहल खड़ा कर लीजिये। महाराजा ने उनकी तसल्ली के लिए कुछ किया तो इतना कि ताजमहल मे भूसा भरवा दिया लेकिन उसके एहसासे जमाल[1] ने ताजमहल को तोडने की इजाजत न दी वरना मुगल हिंदोस्तान की हसीन तरीन इमारतो की तकदीर बदल गयी होती।"

"मगर कभी किसी की जुबानी यह वाक्या नही सुना।"

"हां बेगम जब कौमो पर जवाल होता है तो न सिर्फ वो बडे-बडे कामों की अजामदही से महरूम हो जाती है बल्कि दूसरो के बडे-बड़े और मुबारक कामों का जिक्र करते हुए भी डरने लगती है। जवाल हम पर मुसल्लत[2] हो चुका है और हम जवाल की औलाद हैं। अकबराबाद से जहाबाद तक एक पढा-लिखा मुसलमान दिखला दीजिये जो राजा को सूरजमल जाट न कहता हो और जाट कहकर वह सिर्फ राजा को राजगी से महरूम ही नही करता बल्कि उसे जाटगर्दी की अलामत मानकर एक तरह से नफरत का इजहार करता है···वैसे इस वक्त ताज आपको देख कर शर्मो-नदामत से रंग बदल रहा है··"

अभी आसमान पर सितारे झिलमिला रहे थे कि खालाजान के सामान के छकड़े पर बुआ सवार हो गयी। रथ मे वे तीनो बैठ गये। आगरे से बाहर निकलते ही बुआ सामान के छकडे से उतर कर रथ मे सवार हो गयी और वे दोनो शुकरम मे सवार हो गये और कूचोकयाम का आमूख्ता[3] पढ़ते सब साथ-साथ देहली मे दाखिल हो गये लेकिन इस तरह कि वह शुकरम में तनहा था और उसका दिल रथ के पर्दों के पीछे धड़क रहा था।

चार दिन गुजरे कि महलसराय से जी वफ़ादार हाफती-ढापती आयी और खबर दी, 'जयपुर से आपकी ख़ालाजान आयी है।' वह आरामपाइया पसीटता पहुंचा तो देखा कि सदर दालान मे ममनद पर ढेर ख़ालाजान

1. सौंदर्य-बोध 2 प्रभावी होना, लागू होना 3. पढा हुआ सबक़

चहकों-पहकों रो रही हैं और भोली-भाली उमराव बेगम बिछी जा रही हैं, बौराई जा रही हैं, चारों तरफ औरतों-बच्चों की टट्टियां लगी हैं। अच्छा-खासा हंगामा-सा बरपा है। गिले-शिकवे से छुट्टी पाई तो बड़ी मिन्नतों से दस्तरख्वान पर बैठी लेकिन चौंक कर खड़ी हो गयी। खून के जोश ने ऐसा अंधा किया कि कुफ्ल-कुंजी तक का होश न रहा और हज़ारों का सामान घर में खुला छोड़ कर सवार हो गयी। फिर किसी तरह बैठायी गयी। दो-चार निवाले हलक से उतार कर हाथ खींच लिया। ड्योढ़ी पर डोली खड़ी थी। उठ कर बुर्का पहना गले में पड़ा बटुआ खोलकर एक अशर्फी निकाली उमराव बेगम की मुट्ठी में दबायी। औरतों में रुपये बांटे। दालान से उतरते-उतरते खड़ी हो गयी।

"दुल्हन बेगम तुम से कहने को हयाओ नहीं कि जब रम-जम लूंगी तब असल खबर से तुमको बुलाऊंगी, थाल लगाऊंगी, मांग भरूंगी कि वह बेगम हो लेकिन ये मेरी हड्डी है, ये मेरी आंखों का नूर है इनको इजाज़त दो कि मुझ कोख जली को घर तक छोड़ आयें।"

उमराव बेगम तो ऐसी बेहवास हुई नहीं थी कि अगर उन्होंने जयपुर तक जाने का कहा होता तो भी वह खड़े-खड़े इमाम ज़ामिन बांध देतीं। बेगम के इसरार पर उसने हवादार लगाने का हुक्म दिया।

अच्छा खासा सजा-सजाया भरा-भराया मकान था। चबूतरे के कोने पर अनार के नीचे बुआ सब्ज़ कदम बैठी लीखें टटोल रही थी। घबराकर उठीं और दोपट्टा ओढ़ने लगीं।

"कमाल की हो बाजी बेगम कि गयी थी चिराग जले आने को और उत~ पड़ी दिन-दहाड़े।"

"ऐ बेगम, सुना था लोहारू की बेगम है लोहा-लक्कड़ होगी लेकिन वह तो मोम की गुड़िया निकली। एक हाथ की गर्मी से पिघल गयी। आंसुओं के दो छींटों में बह गयी तो मैं अपनी बेगम जान को और इंतज़ार क्यों कराती?" और बुर्का उतारते-उतारते शर्बत बनाने लगी। शर्बत का घूंट लिया था कि बेगम निकल पड़ीं। सफेद रेशम का मौजें मारता कुर्ता, नीचे फंसा हुआ पायजामा, ऊपर चुना हुआ दोपट्टा और कंधों पर भड़कती हुई आग की लपटें।

"इस तरह क्या देख रहे है ?"

"आप तो ताजमहल की तरह रंग बदलती हैं और हम कि यू ही कहा के दाना थे और सौदाई हो जाते है।"

आज पहली बार बेगम के चेहरे पर वह इतमीनान नज़र आया था जिसे देखने को तरस रहा था जैसे वे फैसला कर चुकी हो। खूबसूरत और अटल फैसला।

"दस्तरख्वान लगाओ।"

"नही, हम तो खा-पीकर आये है।"

"सुन रही थी लेकिन ज़रा-सा शरीक हो जाइये।"

दिन आफताब थे और रातें माहताब। न किसी रंज का साया न किसी फिक्र की परछाईं। पढने को दास्तानें मौजूद, लिखने को गज़लें हाजिर। शामें ऐसी जश्न कि जमशेद[1] देख ले तो ज़हर खा ले। पर्दे के इधर बुआ सब्ज कदम के हाथ मे इकतारा तड़प रहा था। पर्दे के उधर बेगम कि जहान बेगम का खिताब भी छोटा मालूम हो। एक-एक घुघरू में सुर-ताल की गर्दनें बांधे मचल रही हैं, उबल रही है, मस्त होती जा रही हैं, मुजस्सिम रक्स हुई जा रही है, अपने-आपसे गुज़री जा रही हैं और हाथ का प्याला जामेजम हुआ जा रहा है और आखें ख्वाब तक देखने से तग आ चुकी हैं कि आसमानों में बर्बादी के मशविरे होने लगे।

वह महलसराय के दस्तरख्वान से उठा था कि उमराव बेगम पास आकर खडी हो गयी।

"इतनी तारीख हो गयी पेंशन नही आयी। नौकर-चाकर अलग बिलख रहे हैं। जिस अलग खत्म होने वाली है, महल से खबर आयी है कि नवाब अभी दस-बीस दिन लोहारू से निकलने वाले नही। मैं तो जानू आप अल्लाह का नाम लेकर सवार हो जाइये हाथ के हाथ वसूल कर लीजिये और आगे के लिए ऐसा इंतज़ाम कर लीजिये कि दिल्ली में और वक़्त पर मिल जाया करें।"

1. ईरान का एक पुराना बादशाह जिसके पास प्याला था जिससे वह दुनिया भर का हाल जान लेता था।

वह बेसन से हाथ धो रहा था कि जी वफादार खबर लायी, "कल सुबू फ़ज्र के वक्त हाथी लोहारू जायेंगे नवाब का हुक्म आया है।"

बेगम ने उसके हाथ से बर्तन लेकर फैसला सुना दिया, "मैं ख़त लिखती हू अब्बा जान को कि आप इन्हीं हाथियों मे सवार हो रहे हैं।"

"बेगम आप ग़ालिब की बीवी हैं कि नादिरशाह की ?"

"इसलिए कह रही हूं कि खडी सवारी मिलेगी और पूरा लश्कर का लश्कर साथ होगा। दिल मुतमईन रहेगा।"

फैज़ बाज़ार मे हवादार छोडा। दरवाज़े पर दस्तक दी। बुआ ने हाथ पहचानकर दरवाज़ा खोल दिया। सदर दालान के पर्दे गिरे हुए थे। रोशनी के गिलास जल रहे थे। सदर के फानूस के नीचे बेगम चौडे-चौड़े सुनहरी किनारे का ऊदा दोशाला ओढे मसनद से लगी बैठी थी। सामने लगन में रखी अगीठी दहक रही थी। अगारो की दमक से चेहरे पर मेहताबिया छूट रही थी जैसे ऊदी चीनी की जर का बैठक पर गुलाबी ग्लोब रोशन हो। सामने कलम रखा था दूसरी तरफ़ खालाजान चांदी का पानदान खोले बैठी थी उसको देख कर ढकना बद कर दिया और हट गयी।

"अभी से अगीठी, खैर तो है।"

"आज सुबह से सर्दी-सी लगे जा रही है। बुआ ने बना दी तो रख ली।"

उसने घुटने पर सिर रख दिया और लोहारू के सफर का प्रस्ताव पेश कर दिया। जैसी बैठी थी, बैठी रह गयी। प्याला बना, दस्तरख़्वान लगा, हुक्का भरा मगर वह वैसी की वैसी रही जैसे अपना बदन छोड़कर कही और चली गयी हो। उसने दोनों बाहों मे समेट कर मुट्ठियो मे बालो को भर कर होंट अपने होंटो के पास खींच लिये।

"अगर मालूम होता कि आप इस तरह सुनेंगी तो आपके कान मैले न करते।"

"कान तो बेचारे डाकिए है, दिल बेचारे पर जो गुज़रना थी गुज़र चुकी। काश आप कल रुक जाते। परसो चले जाते।"

"क्या कोई ख़ास बात ?"

"खुदा न करे कोई खास बात न हो लेकिन तकदीर मे जो कुछ

लिखा है होकर रहेगा।"

"ठीक है जैसा आप फरमायेंगी वैसा ही होगा लेकिन कल जाने ही दीजिये। आंधी की तरह जाऊगा, पानी की तरह आऊगा।"

फिर दोनों के पास कहने को कुछ भी न रहा, कुछ भी न बचा। अलबत्ता आंखें आसुओं की जुबान में कुछ कहती रही, कुछ सुनती रही।

"आपको मेरे सिर की कसम सच-सच बताइये कि माजरा क्या है?"

"कुछ भी नही मियां कोई खास बात नही है जब जी मांदा होता है तो प्यारों का बिछड़ना सब को बुरा लगता है।"

बुआ सामने खडी तसल्ली की बातें कर रही थी।

"राज का प्याला लबों तक पहुच चुका है। ज़रा ही कापने से छलक सकता है वरना हम हर्गिज़ सवार न होते।"

फज्र की अज़ान होते ही उमराव बेगम ने इमाम ज़ामिन बाध कर हाथी पर सवार कर दिया। कश्मीरी दरवाज़े पहुचा था कि स्याह पर्दे मे बघी फ़ीनस के पास खडे दोनो बुर्कों ने नकाब उलट दिया और हाथ उठा दिये तो जैसे तुर्क बेगम का जनाज़ा उठ कर बैठ गया। सफेद सूती कपडों की सफेदी और पर्दे की स्याही और सबसे बढकर उनकी हौलनाक खामोशी। उसकी पिंडलिया कापने लगी। बेगम ने एक अशर्फी का इमाम ज़ामिन बांधा। सवा अशर्फी का तोड़ा खप्तान की जेब मे ठूसा। दाहिने हाथ की उंगली से हीरे की अगूठी उतारकर छिंगली मे पहनायी और देर तक आंखो मे आखें डाले बैठी रही। फिर उसके हाथ छोड़ दिये। गर्दन के खम से अलविदा का इशारा किया लेकिन वह पर्दे पकड़े खडा रहा। पीठ पर बुआ ने हाथ रख दिया।

"एक बार अपनी आवाज़ सुना दीजिये।"

"मर्दों से ऐसी फरमाइशें नही की जाती।"

और दोनों हाथो मे अपना चेहरा छुपाकर फफकने लगी। बुआ ने हाथ से पर्दा छुड़ा दिया और वह हाथी की सूली पर चढ गया।

लोहारू उतरा तो आवाजें होंटो पर उंगली रखे पंजो के बल चल रही थी। आखें पेशानियों पर चढ़ी आ रही थी और मुंह से मुह मिलाये सरगोशियां कर रह थी कि नवाब अहमद बख्श खां वाली-ए-लोहारू व फीरोजपुर झिरका अचानक बीमार हो गये थे। हकीम, तीमारदार और मुलाज़िम सब बेबस और मरीज घड़ी में तोला, घड़ी मे माशा। फीनसें लग रही हैं। पालकियां उठ रही हैं। हवादार आ रहे है। तामझाम जा रहे हैं। सवार उपची बने हुए घोड़ो की मक्खियां उड़ा रहे हैं और प्यादे अलिफ़ बने खड़े है। किसी को कुछ नही मालूम कि क्या हो रहा है और क्या होने वाला है ? नवाबज़ादे शम्सुद्दीन पूरब तो नवाबज़ादे अमीनुद्दीन खां पच्छिम और वह खड़ा पछता रहा है कि जिन हालात मे और जिस काम के लिए निकला है उसका सरजाम होना तो एक तरफ मुलाकात की हालत और बात की सूरत तक नज़र नही आती। न कयाम रखने मे लज्जत, न सवार होने की हिम्मत कि उमराव बेगम को मुह दिखाना है आख़िर ! इसी झमेले मे दो दिन और तीन रातें तमाम हो गयीं। आख़िर देहली के शरीफखानी हकीम घोड़े से उतरे और देखते ही देखते मर्ज़ को बाधकर डाल दिया लेकिन मरीज इतना हार चुका था कि पूरा एक जुम्ला बोलने की इजाज़त तक न थी। तीन दिन और बसर हुए। खासुलखास लोगों को पूछताछ की इजाजत मिली तो वह भी तैयार होकर निकला कि आख़िर दामादी का तुर्रा लगा था। महल की सीढ़ियों पर कदम ही धरा था कि नवाबज़ादे शम्सुद्दीन खा दीवार बन कर आड़े आ गये। आख मिलते ही बंदूक की तरह तन गये, तपंचे की तरह छूट गये,

"अभी सरकार को हुक्म अहकाम की इजाजत नही है रुपये की वसूलयाबी किसी और वक़्त पर उठा रखिये।"

"लेकिन हम तो मिज़ाजपुर्सी के लिए···।"

"मिज़ाजपुर्सी तकाजे मे बदल जाती !"

"तकाजा हक के लिए है, खैरात के लिए नही !"

नवाबज़ादे की भौहें सिरोही हो गयीं और मुह से दूसरी गोली निकली, "जब मुशी मुतसद्दी[1] पेश होंगे आपको इत्तला करा दी जायेगी।"

1 मुहर्रिर, लिपिक

और खडी कमान के तीर की तरह निकल गये। वह जहा था शर्म से वहीं गड कर रह गया। दूर-पास खड़े हाली-मवाली अपनी आंखें उसी पर गाढ़े हुए थे और निगाहों से थूक रहे थे। वह सवार होने के लिए कमर बाध रहा था कि उमराव बेगम अपने बाप नवाब इलाही बख्श खा 'मारूफ' का सहारा बनी पालकी से उतरी तो नवाब पहली ही नजर मे बीमार नजर आये। उसने मजबूर होकर कमर खोल दी। शाम होते-होते फिर खलबली मच गयी। नवाब की तबीयत फिर बिगड गयी थी। चार दिन बाद उनको दिल्ली भेजने का इंतजाम हो सका वह भी सबके साथ बधा चला आया। उमराव बेगम अपने पूरे कुनबे समेत दिल्ली के लोहारू हाउस में उतर पड़ी। घंटो बाद वह अपने घर के लिए उठ रहा था कि खुसर[1] नवाब इलाही बख्श 'मारूफ' से आख मिल गयी। वह हाथ बाधकर उनकी ख्वाब-गाह तक चला गया। यकायक उनका हाथ छू गया तो उगलिया जल गयी। वह बुखार मे भुने जा रहे थे लेकिन बडे भाई की बीमारी से चुप लगाये बैठे थे। उनके इंकार के बावजूद वह सारी रात उनकी खिदमत मे रहा।

सुबह के जवान होते ही मिटकाफ साहब बहादुर की आमद का शोर बुलंद हुआ। वह सुर्ख कोट पर नेकटाई लगाये, धारीदार पतलून पर बूट डाले, बगल में टोपी दबाये गाड़ी से इस तरह उतरे जैसे हाकिम अपने गुलामों के घर उतरता है। बेतकल्लुफ़ी में भी एक तकल्लुफ, महजता में भी एक घमड, शाहजादों की तरह अबरुओं की जुंबिश से सलाम कुबूल करता, कालीनों को रौंदता नवाब अहमद बख्श खा के कमरे में पहुच गया। थोडी देर बाद ही मुबारकबादियों का हंगामा बरपा हो गया। शम्सुद्दीन खां फीरोजपुर झिरका के, जो रियासत की जान था, नवाब हो चुके थे। और अमीनुद्दीन खां को लोहारू की जागीर मयस्सर हो चुकी थी। सारे वज़ीफाख्वार और गुज़ारेदार और पेंशनख्वार नये नवाब अहमद बख्श खां के मोहताज हो चुके थे। उसके पैरो के नीचे की जमीन हिलने लगी। नवाब अहमद बख्श खा से उसकी नफरत और गहरी हो गयी। पहले उसके दस हज़ार सालाना के वज़ीफे को अपनी चलत-फिरत

1. ससुर

और असर व रसूख से पाच हजार मे तब्दील करा दिया। उस पर भी तस्कीन न हुई तो उस पाच हज़ार सालाना मे भी एक फ़र्ज़ी नाम ख्वाजा हाजी का टाक दिया और आधे का हिस्सेदार बना दिया। बासठ रुपये महीने का ठीकरा बचा था तो उसे भी नवाब शम्सुद्दीन की जूतियो मे डाल दिया। वह गुज़रती नज़रो और उतरती सलामियों के तूफान में तिनके की तरह काप रहा था कि नवाब इलाही बख्श खडे होकर जगा पहनने लगे।

"चलिये मीरज़ा नोशा नये नवाब को मुबारकवाद दीजिये।"

नवाब इलाही बख्श के बूढे चेहरे के चिह्न फिक्र से धुधले और बीमारी से सिमटे हुए थे लेकिन आवाज़ मे सियासी दूरंदेशी की चमक कायम थी वह अदब मे चद कदम उनके साथ चला लेकिन बिरादर निस्बती[1] अली बख्श खा को देखते ही नवाब से सुबुकदोश हो गया कि बड़ा रिश्ता छोटे रिश्ते को निगल लेता है। ये कैसे लोग हैं जो अपने आसुओं के हार पिरो कर जालिमो की गर्दनों में डालते है, अपने जख्मो को फूल कहकर नज़र मे गुज़ार देते है। दुनिया इनकी है मीरजा नोशा और ये दुनिया के है मीरज़ा नोशा! ये जागीरदारी निजाम के आदाब है, कानून है। इनके खिलाफ आवाज उठायी जा सकती है लेकिन इस निजाम के खुशामदियों के कारखाने मे कौन सुनेगा? आवाज वह सुनी जाती है जिसे बाज़ार मे भुनाया जा सके और ऐश का तमस्सुक[2] लिखा जा सके। वह फाटक से निकलकर तुर्क बेगम के मकान की तरफ चला था लेकिन जब होश आया तो अपने दीवानखाने के सामने खडा था। हज्जाम और हम्माम से फुरसत पाकर हवादार पर बैठ रहा था कि दारोगा ने खुस नवाब इलाही बख्श खा 'मारूफ' के बेहोश हो जाने की खबर दी। उनके पलंग के चारों तरफ बड़े नवाब के हकीमों की नूरानी सूरतें हुजूम किये हुए थी। दवाए तजवीज़ हो रही थीं। तसल्ली की खुराकें दी जा रही थी लेकिन आखें किसी और ही बात की चुगली खा रही थीं। बड़े भाई की रूह छोटे भाई की बीमारी

1. साला 2 वह अनुबध-पत्र जो ऋण के प्रमाण मे ऋण प्राप्त करने वाला ऋणदाता को लिखता है

पर सदके की चिड़िया की तरह हो गयी लेकिन छोटा ज़िंदा नवाब भाई अपने मुर्दा भाई की बेआसरा औलाद को पुर्से के चंद रस्मी फिकरों के अलावा कुछ भी न दे सका।

चहल्लुम तक का इंतज़ार किये बगैर नवाब शम्सुद्दीन के जश्ने-गद्दी-नशीनी का कानूनी ऐलान हो गया। तारीख मुकर्रर हो गयी। वह जनाज़े के साथ-साथ चल रहा था और सुन रहा था और चुप था कि नवाब इलाही बख्श 'मारूफ़' नहीं मरे थे उसके ज़ख्मों की पोशाक का रफ़ूगर मर गया था। उसके दस्तरख्वान का वसीला उठ गया था। वह हाथ सूख गया था जिसकी ताकत पर उसकी सिर की टोपी सलामत थी। वह आंख बन्द हो चुकी थी जिसकी चमक उसके घर की रोशनी थी। उसको ज़मीन का पैवंद करके वह लौट आया। तुर्क बेगम के मकान की तरफ चला। दस्तक पर दस्तक दी लेकिन कोई आहट न थी। एक बार निगाह उठी तो ताला लटक रहा था। खड़े का खड़ा रह गया। पैरों में जैसे किसी ने कीलें ठोंक दीं। मालूम नहीं कैसे और कब अपने घर पहुंचा। बची-खुची रात टहल-कर गुज़ार दी। सुबह की रोशनी के साथ वह फिर उसी दरवाज़े पर खड़ा था। देर के बाद किसी ने खबर दी कि बेगम के इंतकाल के बाद···और वह सिर से पांव तक सन्न होकर रह गया। वह दिन हश्र का था और रात कयामत की। दिल ज़ार-ज़ार, दिमाग तार-तार। न कुछ सोचते बनता न कुछ समझ में आता। बेगम की मौत के बाद रुस्वाई के खौफ ने जैसे सहारा दिया। रास्ता सुझायी न देता था लेकिन मंद-मंद चलता रहा। बल्लीमारान में बेगम की हवेली की ड्योढ़ी पर पहुंचा था कि बुआ सब्ज़ कदम ने एक तरफ से निकलकर बुर्के की नकाब उलट दी और बगैर कुछ कहे उसके साथ-साथ चलने लगीं। अपने दीवानखाने के ज़ीने ही में उसने ज़िंदगी में पहली बार उनका हाथ पकड़ लिया, "बुआ सब्ज़ कदम!"

"हौसला रखिये मीरज़ा साहब ऊपर चलिए···आप तो मुगल बच्चे हैं।" और जैसे किसी ने उसे थाम लिया।

"आप राज़-राज़ रखने की कोशिश में सिधार गये। वो राज़ को राज़ रखने के लिए मर गयी। आप भी मजबूर थे, वह भी मजबूर थी। दिनो के चढते ही मैंने पूरी दिल्ली मथ डाली। दवाए लाती कूटती पीसती छानती और पिला देती। सब कुछ ठीक हो रहा था बिगड़ कर बनती नज़र आ रही थी लेकिन तकदीर का लिखा मालूम नही क्या हो गया कि बैठे-बैठे चकराई खून की कै हुई और चट-पट हो गयी। मैं जानूं हीरा चाट लिया क्यूं कर कि नाक की कील का कही पता न चला। जब तक बहन-बहनोई पहुचे वो ठंडी पाला हो चुकी थी···खाला जान सोयम[1] के दिन ही सवार हो गयी···मैं भी चहल्लुम[2] तक की मेहमान हूं। किले से आते सीधे आन धमकते हैं और घडी-दो घडी बाद तसल्ली देकर चले जाते हैं। इसलिए भी पडी थी कि आप दिल्ली पहुचते ही आयेंगे। उनकी कुछ अमानतें भी आपके हवाले करना थी।"

दिन छाले बन-बनकर फूटते रहे और रातें अगारों पर लोटती रही। अब तक उसने गम की परछाइया देखी थी अब गम अपने तमाम हथियारों से लैस सामने खड़ा था। उसके कधों पर सवार हो चुका था। उसकी हड्डियो में उतर चुका था। न शतरंज न चौसर, न दास्तान न गज़ल। दिल किसी चीज़ में अटकने से मजबूर था। बहलने से माज़ूर था। फिर रफ़्ता-रफ़्ता मरहूम नवाब का मुतख़ब कुतुबख़ाना[3] उसका मरहम होने लगा। किताबें उगलियो से दाग़दार होने लगी। दिन-भर हाथों में खुली रहती, रात-भर छाती पर पडी रहती। अब दुनिया के हर मसले का उसके पास जवाब था, हर जख़्म का एक इलाज था। गज़लें इस तरह सर-अंजाम होने लगी जैसे कोई सिरहाने खड़ा इमला बोल रहा हो। रात के पिछले पहर कि अभी तो बिस्तर का मुह न देखा था। एक ज़रा आख लगी है कि किसी मतले ने कधा पकड कर उठा दिया और मक़्ते की तलाश मे सूरज अपनी मशाल लिये खड़ा है। एक-एक लफ़्ज़ की सनद के लिए सुबह की वरक गर्दानी रात तक जारी है। लेकिन आसमान को उसके पैरो के नीचे यह जमीन भी पसद न आयी। यानी यूसुफ मीरजा पागल हो गये और ऐसे

1 मृत्यु के बाद तीसरा दिन 2. चालीसवां दिन 3. पुस्तकालय

कि जंजीर कर दिये गये और वह कुछ न कर सका। छोटी-बड़ी आंखों में आंसुओं की बस्तियां बस गयी और वह खड़ा देखता रहा कि उसकी तरदामनी कितनी ही आस्तीनों तक फैली हुई है।

उमराव बेगम के उकसाने पर वह नवाब साहब फर्रुखाबाद का खत लेकर साहब बहादुर हैडले की खिदमत मे हाजिर हुआ। साहब बहादुर चिकन का कुर्ता और एक बर का सूती सफेद पायजामा पहने और चिकन ही के चार बाग की शाल डाले बरामद हुए। खत पढ़कर खड़े हुए। मुसाफ़हा किया। शर्बत और पेचवान से खातिर की। दस हजारी के परवाने से बासठ रुपये महीने की ख्वारी तक की पूरी दास्तान तवज्जा से सुनी। थोड़ी देर गौर करके बड़े बल के साथ यकीन दिलाया कि अगर वह किसी तरह कलकत्ता पहुच जाये तो सारे दलद्दर चुटकी बजाते दूर हो जायें। उमराव बेगम यह रामकहानी सुनकर पहले तो चिपकी बैठी रही फिर तड़प कर उठी और नवाब अहमद बख्श खा के नाम चिट्ठी लिखकर उसे पकड़ायी और हाथ कंगन उतारकर फ़र्श पर डाल दिये।

"इतने बड़े सफर के लिए ये काफी तो नही हैं लेकिन निकालने के लिए इनके सिवा अब कुछ बचा नही है।"

उसने कंगन उठाये तो हाथ काप गये। थोड़ी देर बाद उमराव बेगम खासदान लेकर आयी तो बड़ी मिन्नतों से कगन उनकी कलाइयों मे डाल दिये। चद रोज़ बाद अपनी पेंशन का ठीकरा भरने की उम्मीद मे लोहारू के लिए उठा। मंजिल पर पहुंचकर मालूम हुआ कि दिल्ली के रेजिडेंट मिटकाफ साहब बहादुर भरतपुर के फौजी इतज़ाम में मुब्तिला हैं और नवाब को अपनी मदद के लिए तलब कर रहे हैं और नवाब सवार होने की तैयारी कर रहे हैं। उमराव बेगम का खत पढ़कर नवाब ने उसे अपने सामाने-सफ़र में बाध लिया और फीरोजपुर मे खोल दिया। पूरे तीन दिन तक मिटकाफ फीरोजपुर में नवाब का मेहमान रहा। कलावत और कव्वाल, रंडिया और भड़वे, मुशी और मुर्हारर कौन था जो साहब बहादुर के सामने पेश न हुआ लेकिन मरहूम भाई के मज़लूम दामाद को करीब न फटकने दिया गया। वह दिल्ली के अदेशों से काप रहा था और कलकत्ता उम्मीदों का केन्द्र हो चुका था कि तुर्क बेगम की अंगूठी याद

आयी जो टोपी के अस्तर मे मिली थी और दस-पाच मुहरें कमर से बंधी थीं। वह बिस्तर से उठा और घोडे पर सवार हो गया।

लखनऊ की सराय पर उतरा तो ज़ख्मों मे अकुर आने लगे थे और जुदाई का रग मैला हो चला था। सामान रखते-रखते अदाजा हो गया कि उससे पहले उसका नाम पहुच चुका है। दूसरे दिन का सूरज डूबते-डूबते क़द्र-दानों का ताता बध गया। बुज़ुर्ग आये ज़रबफ्त व किम्ख्वाब व जामेवार और नर्म-पर्म के खफ़्तान और अगरखे और चगे पहने सिरो पर पतली-पतली कश्तियो जैसी नाजुक टोपिया रखे, वसे से रंगे हुए पट्टे, दाढी-मूंछ का एक-एक बाल बना हुआ, पायजामा उरेबी हुआ तो जिल्दे बदन की तरह मढा; खुला है तो एक-एक ठोकर पर दो-दो गज की खबर लेता हुआ। ऐसी-ऐसी नाजुक और कामदार और जडाऊ आरामपाइया कि औरतें पैरो के बजाय कानो मे पहन लें। कधो पर 'चारबाग' खिले हुए, हाथो की उगलियो मे फीरोज़े और मूगे के ढेर लगे हुए। बदन की हर जुंबिश काटे पर तुली हुई। मुह से निकला हुआ हर लफ़्ज़ कसौटी पर कसा हुआ। बोले तो मोतियो के ढेर लगा दिये। हंसे तो जाफरान की क्यारियां खिला दीं। कड़वे बोल भी सुने तो इस तरह जैसे शर्बत के घूट पी रहे हैं। उठे तो बाअदब, बैठे तो बाखबर।

ऐसे-ऐसे बूढे रईस कि सल्तनत जिनके कांधो पर खडी है। हुकूमत जिनके पैरो मे पडी है। शाहे अवध जिनका ऋणी है। इस तरह पेशवाई को हाज़िर जैसे दिल्ली से गालिब नही शाहजहा आया हो! आगे-आगे चलते भी है तो इस तरह कि कदम-कदम पर सलाम कर रहे है। संभल-संभल कर बढ रहे है कि कहीं पीठ का सामना न हो जाये। खादिमो की पूरी फौज खडी है लेकिन मेहमान के हाथ खुद धुलायेंगे। दस्तेपाक खुद पेश करेंगे। खाने ऐसे कि सुबहान अल्लाह! कैसर व कसरा[1] को

1. रूम के शासक

मयस्सर आ जाये तो उंगलियां चाटकर मर जाते लेकिन ऐसी खाकसारी से पेश कर रहे हैं जैसे उबली खिचडी और बेबघारी दाल खिला रहे हो। दावतें है कि आसमान से बरस रही है, आव-भगत है कि जमीन से उबल रही है। मोतियों के लच्छों की तरह आबदार गजलें इस तरह सुना रहे हैं जैसे बच्चे सबक सुनाते हैं। बस नही चलता कि आखो में बिठा लें कि कलेजे मे छुपा लें। और नौजवान, बूढ़ों की तरह सजीदा। अदब के पुतले तहज़ीब के मुजस्सिमे, कसे हुए डड, बने हुए सीने। सर से पाव तक तस्वीर लेकिन गर्दन झुकी हुई, आख नीची, भौंह के इशारे पर हाथ बांधे हाजिर। हंसी की बात हुई तो होंटो की लकीर लबी हो गयी, रज का जिक्र हुआ तो आख और झुक गयी। रडी के कोठे पर पाव रखा तो बहिश्त का दरवाज़ा खुल गया। एक-एक सूरत कि बहज़ाद व मानी[1] की उम्र भर की कमाई मूरत बनी खड़ी है। मुट्ठी भर कमर के ऊपर आचल मे छुपा कंदीलो का जोड़ा उडने को तैयार। नीचे चादी के गिलाफ मे सोने के ताऊस[2]। सुरमा आखो में हंसता हुआ। गाजा रुखसारों पर निखरता हुआ पांव साचे में ढले हुए। कदमो पर गुलाब जल खाली कर दिया। दामनो पर इत्र बहा दिया। खासदान से पान की गिलोरी निकालकर पेश की कि सीने से दिल निकालकर रख दिया। नज़र का रुपया हाथ मे लिया, आखों से लगाया, सर पर रखा, घुटनो के बल बैठ गयी, हाथ जोडकर बोली,

"हुजूर सफ़र मे हैं जब देहली आऊगी, दरे दौलत पर हाज़िर होऊगी मुजरा करूगी। हुजूर खाक को चुटकी अता करेंगे तो कुहले जवाहर समझकर आखों मे लगा लूगी लेकिन आज महरूम रहूगी।"

खानुम उठी कलावतों और साजिदों को मुखातिब करके बोली

"ये वो है जिन्होने लाल किले के अदर लाल पर्दे के पीछे राजा इद्र के अखाड़े देखे हैं। इनके कान कसौटी और आखें सनद हैं। एक-एक राग पर अशर्फी एक-एक अलाप पर रुपया निछावर करूंगी लेकिन खबरदार एक हाथ भी झूठा हुआ तो उम्रभर मुह न देखूगी।"

1 शाह इस्माईल सफ़वी के ज़माने के दो मशहूर शिल्पी
2 एक तंत्री वाद्य

खानुम के बैठते ही साज़ सांस लेने लगे। देखते ही देखते लौ देने लगे। फिर कहीं बिजली-सी चमकी और कयामत लड़की का रूप धारण कर खड़ी हो गयी। और चमक कर उसकी गज़ल छेड़ दी—

शहीदाने निगह का खूँ बहा क्या...

शे'र बताने पर आती है तो खुद उसका शे'र उसी के सामने मानी की नयी-नयी पर्तें खोलने लगता। रक्स करती तो ज़मीन हिलने लगती। तान लेती तो आसमान रोशन हो जाता। साज़ो-आवाज़ में वे रण पड रहे थे कि माशा अल्लाह! और खानुम इस तरह बैठी थी कि जैसे उनके कोठे की तकदीर लिखी जा रही हो। उठने को पहलू बदला तो पूरी महफ़िल खड़ी हो गयी। खानुम हाथ बांधकर बोली :

"हुज़ूर दस्तरख्वान पर कदम रख देते तो कनीज़ का नसीबा खुल जाता।"

उसने देरी की तो जैसे रो दी, "मेरा क्या है, आज मरी कल दूसरा दिन। लेकिन ये जो खड़े हैं अपने बच्चों से कहेंगे कि खानुम के दस्तरख्वान पर हज़रत के साथ खाना खाया है तो हज़रत एक लुक्मा तोड़कर खानुम को तारीख का हिस्सा बना दीजिये।"

खाना खाकर नीचे उतरा तो सब्ज़ घोड़ों की जोड़ी खड़ी थी। परी खानुम ने अपने हाथ से दरवाज़ा खोला। फिर दर्शन देने के वायदे लिये। जमादार को पीछे खड़ा किया और हाथ बांध लिये।

यह सब कुछ था लेकिन वह कुछ भी न था जिसको देखने की आरज़ू में आंखें दहक रही थीं। शाही महल के फाटक पर वह भारी लश्कर कहां था जिनके घोड़ों के लिए लड़ाई के मैदानों ने खून के कालीन बिछा दिये हों। जिनकी आबरूमंद तलवारों की बहादुरी ने कसम खायी हो। कंगूरे पर वह परचम कहां था जिसकी पताका ऐतिहासिक जीतों को लेकर आसमान से होड़ लगा रही हो। तोपें गरजीं लेकिन सुल्तानी आतंक से पहाड़ों के दिल न दहलते महज़ वक्त की तक़सीम का इल्म हो जाता। मैदाने जंग के शौक ने जानवरों की लड़ाई पर सब्र कर लिया था। फ़तह की मुबारक-बादियों की आरज़ू ने मुर्गों और बटेरों की पालियों में पनाह ढूंढ ली थी। विजेता हाथों की गर्मी जो घोड़े उठाकर किलों और शहरों का शिकार

करती है, कनकौए की चर्ख़ी से लिपटकर सो गयी थी। विरासत में आयी शानदार तारीख़ औरतों के शिकार और जानवरों पर फ़तह के कूज़े[1] मे बंद हो चुकी थी और शमादान की शमा आधी से ज्यादा जल चुकी थी। उसने बेक़रार होकर देखा। मसहरी के करीब अंगीठी के कोयले राख हो चुके थे। बेकरारी उसे उठाकर बाहर ले आयी। सराय का दरवाजा बंद था। तमाम कमरे अंधेरे थे। बाहर पहरेदार आवाजों के सहारे नींद को बहला रहे थे। वह अलवान को सलीके से ओढ़कर टहलने लगा।

"मीरज़ा साहब को कुछ तकलीफ है।"

सामने भटियारन पायजामे के दोनो पायंचे एक हाथ पर डाले, दूसरे की चुटकियों से कुरती के चाक जिनसे नेफ़ा नज़र आ रहा था, बराबर कर रही थी। सिर पर चुना हुआ कामदार दोपट्टा चमक रहा था। उससे कम-अज़-कम पांच-सात साल उम्र मे बडी औरत बेगमो की तरह शान से खड़ी सवाल कर रही थी।

"कोई ख़ास बात नही, सिर में ज़रा दर्द है।"

"मैं अभी हाज़िर हुई।"

कमरे में कदम रखते ही वह शमादान के पास चौंक कर खड़ी हो गयी।

"कितने बदसलीका और फूहड़ नौकर आने लगे हैं। ये चर्बी की मोम-बत्ती कमबख़्त ने आपके कमरे मे रख दी। मैं जानूं इसी से सिर मे दर्द हो गया। मैं कहूं कि पूरे दस दिन आज हो गये हज़रत को आये हुए। क्या बात है आख़िर कि आधी रात के वक़्त इस तरह करवटें बदल रहे हैं?"

उसने ताक़ से दूसरी शमा उठाकर जला दी।

उसका हाथ नज़दीक आया तो फ़ैज़ाबाद की चमेली की ख़ुशबू से तमाम कमरा महक उठा। तकियों पर सिर रखकर लेट गया। वह हल्के-हल्के हाथो से सिर दाबने लगी और आख झपकने लगी। दाहिने तलुवे मे

1. गड़ा, डबरा

तेल मल रही थी कि वह सो गया।

सुबह जब नाश्ता लेकर आयी तो उसके साथ शौहर भी थे। रेशम का कुर्ता, तहमद पर बडे-बड़े बूटे, पटो मे तेल, आखो मे सुर्मा, उंगलियो मे अगूठियां।

"रात की तकलीफ के लिए शर्मिदा हू माफी का ख्वास्तगार हूं। आज से मैं खुद निगाह रखूगा और हुजूर को किसी खिदमत की जरूरत हुआ करे तो बिला तकल्लुफ फरमा दिया करें।"

इन आम इसानो की निजी हमदर्दी के छोटे-छोटे कतरे जमा करके सामूहिक हमदर्दी के समदर में तब्दील किया जा सकता है और उसकी एक धार से कौम की तकदीर बदली जा सकती है लेकिन किस कौम की जो हर सौ-पचास कोस पर बदल जाती है। न एक जुबान बोलती है, न एक लिबास पहनती है, न एक तरह का खाना खाती है। रस्मोरिवाज अलग, तीज-त्योहार अलग। इतिहा है कि आस्थाएं तक अलग। हुक्का जल गया लेकिन वह सुलगता रहा।

रात की जुल्फे खुल रही थीं। काबा-ए-हिंदोस्तान काशी की ऊची इमारतों की रोशनियो ने गगा के पवित्र पानी पर चिरागो की चादरें बिछा दी थी। वह घोडे पर सवार देर तक खडा रहा जैसे सलामी दे रहा हो। सराय की संगीन इमारत पर महल का धोखा हुआ। कमरे मे पहुंचा जैसे अपने घर मे आ गया हो। जर्रे-जर्रे से आत्मीयता फूटी पडती। चप्पे-चप्पे मे मोहब्बत उबली पडती। जैसे चादी की घटियो मे मिस्री की डली घुली हुई हो सुबह किसी से किराये के मकान का जिक्र किया। उसने दोपहर मे उतार दिया। एक अशर्फी निकली और मकान जगमग करने लगा। लोग नाम से वाकिफ, न काम से आशना लेकिन बिछे जा रहे है। कई दिन तक वह कानपुर और बादा और इलाहाबाद के सफर की थकान उतारता रहा। शाम को नहा-धोकर गगा की सैर के लिए निकला। घाट को जाने वाली गलियां इतनी साफ कि जूतिया उतारकर चलने को जी चाहे। चमकते हुए दरवाजों से झाकते हुए सेहन ऐसे उजले जैसे पत्थरो के रंगो के फर्श अभी खोलकर बिछाये हों। पीतल के जगमगाते हुए बासन कि जरगरो ने अपने खजाने निकालकर डाल दिये हैं। घाट की रौनक देखी

तो जमना के मेले हकीर हो गये। नावें सिंहासन की तरह मजी हैं, पोशिशें पड़ी है, तकिए लगे हैं। सूरतें ऐसी पाकीज़ा कि ऋषि देख लें तो चरण छू लें। मूरतें ऐसी मोहनी कि राजे-महराजे एक-एक झलक पर जनम-जनम का वनवास मोल ले लें। हद्दे निगाह तक पानी पर मेला लगा है। एक शहरे रवां है कि दरिया पर खुला पड़ा है। पान की दूकान ऐसी सजी हुई जैसे डेरेदार तवाइफ बादशाह का इतजार कर रही हो। पकवानों के खोमचे लगे हैं कि शहंशाहों की नजर के थाल लगे हैं। हाथ मे घुघरू बाधे भंग घोट रहे हैं कि नाचने वालियों को तालीम दे रहे हैं। सस्ते पत्थरो की दूकानें लगी है कि जवाहर खाने पड़े दहक रहे है।

साये लबे होने लगे। चिराग जलने लगे। चिराग बुझने लगे लेकिन वह जहां खडा था, खड़ा रहा।

फिर तो जैसे दस्तूर हो गया कि सुबह के धुधलके से दिन चढे तक और दिन ढले से रात गये तक वह पत्थरो पर बैठा रहा। बहते पानियों पर गुजरते नजारों ने वह पाठ पढाया कि कधों पर चढे हुए दु ख के पहाड चूर-चूर होकर बिखर गये, फिज़ा की पाकीजगी ने वह सबक दिये कि रूह के दलद्दर घुल गये। सारा वुजूद हस के पर की तरह हल्का और बेनियाज हो गया। एक सुबह वह सोच रहा था कि अगर कलकत्ते की मुहिम सर हो जाये तो यही-कही एक कुटिया बनाकर बाकी उम्र गगा के किनारे गुज़ार दे। अभी वह इस ख्याल के मज़े ले रहा था कि कोई पास आकर खडा हो गया। आंख उठाकर देखा तो वह मृगछाला पर आसन मारे विराज रहे है। माथे पर चदन की लकीरें लिख रही हैं। कानों में मुदरे हिल रहे है। सिर पर पाग बधी है। गले में रुद्राक्ष की माला पड़ी है। और वह बड़े प्यार से उसे देख रहे हैं। मावरुलनह्र के बदनसीब मगर मगरूर शाहज़ादे का हाथ सलाम के लिए खुद-ब-खुद उठ गया। दोनो हाथ जोड़े सिर झुकाया और इस तरह बोले जैसे वरदान दे रहे हों,

"खुश रहो!" फिर कहा, "कर्म विचार की कोख से फूटता है इसलिए विचारो को सोच-विचार कर पालना विद्वान का कर्तव्य है···तुम यहां शाति के लिए भटक रहे हो और शाति पश्चिम मे जमना तट पर

तुम्हारे वियोग मे बाल विखराये पड़ी है।"

"महाराज!"

"प्रसाद लो, मुंह मे रख लो।" फिर अतिम वाक्य बोले, "हमको जो कहना था कह चुके। इससे अधिक का अधिकार नही है।"

उसने फिर भी कुछ कहना चाहा लेकिन मुह से आवाज न निकली कि महाराज ने हाथ जोड़ लिये। सारी रात महाराज आंखो मे विराजे रहे और उनके शब्द हथोडी की तरह कानो पर पड़ते रहे। सुबह होते-होते वह अपने घर का सामान बेचने का सिलसिला करने लगा और दूसरे दिन का सूरज निकलते-निकलते वह कलकत्ता के लिए सवार हो गया।

कलकत्ता पहुंचकर समदर को देखा तो पहली बार इकशाफ[1] हुआ कि मुट्ठी भर अंग्रेज़ करोडो हिंदोस्तानियो के इस समुदाय पर क्यों कर छा गये? पानी ज़िंदगी का जन्मदाता। पानी ज़िंदगी जीने की कला का शिक्षक और वे पानियो के पाले हुए पानियो पर फ़तह पाये हुए। पानी में डूबते हुए दुश्मन को बचाने की कोशिश ने उनको इतनी बडी क़ौम का हाकिम बना दिया और हम कि खुश्की के कीडे अपनी-अपनी डेढ़ ईंट की मस्जिद अलग बना रहे हैं और दूसरों के गुबदो-मीनार देख-देख कर सिर फोड़ रहे हैं। किसी के जलते घर की आग से अपने अंधियारे रोशन कर रहे हैं। झीलो और दरियाओ से डरने वाले समदरो को अपनी बग़ल मे लपेटने वालों के सामने हार गये कि यही इनका मुकद्दर था।

ठंडी सडक पर जवान औरतें ऐसे कपड़े पहने, जिनमें नंगी पिंडलियां झलक रही हैं और बाजुओ के खजर खुले हैं, अपने बुजुर्गों और बच्चो के साथ इस तरह टहल रही हैं जैसे ये कायनात इनकी है। अपने मर्दों की कमर में हाथ डाले अठखेलियां कर रही हैं गोया यह जिंदगी और ज़मीन

1. उद्घाटित

से गुज़र जाती है...:

इल्म के नये चाक से उतरी हुई नस्ल शैरो अदब और इंशा[1] से दूर होती जा रही है। हमारे अपने शैरो अदब से तो बहुत दूर निकल आयी है कि इल्म का नाम सिर्फ शैरो-इशा नही है। मुशाइरो मे हमारे बाकमालो के तीरो-नश्तर भी उसे तडपाने से आजिज है। उनकी जुबानो की खामोशी और आखो की नियाज़मदी मे भी हमारे लिए एक तौहीन होती जिसे हम पुश्तों से सहते आ रहे है।

इतवार का दिन क्या आया कि कलीसा का दर खुला कि खुदा की बारगाह का दरवाजा खुला। लार्ड से सिपाही तक मामूली सजाव-बनाव मुमकिन इकसारी और खाकसारी के साथ प्रेयर को हाज़िर हैं। कारोबार हयात मे पूरे हफ्ते की अपनी कारगुजारी पेश करने को मौजूद है। हम अपने मजहब से दुनिया की भीख मांगते है और वे अपनी दुनिया से अपने मजहब को पवित्र बनाते है। कोई मलहद[2] है न काफिर, न शीया न सुन्नी, न बहावी न बरेलवी। सब अपने छोटे-बडे, अच्छे-बुरे ऐमाल अकवाल से अपने खुदा-ए-बुज़ुर्ग की बरतरी पर रज़ामद और मुतमईन। कौमे जब उत्कर्ष के रास्तो पर होती है तो उनकी जैसी हो जाती है और जब अपकर्ष के गलियारों पर ढलकती हैं तो हमारी जैसी हो जाती हैं।

सामने एक जहाज़ लगर डाल रहा था कि पूरा लाल किला पूरा जहानाबाद पानी पर तैर रहा था। मौजो के नाग साहिल पर सिर पटक रहे थे। ग्रांडील तोपें कि पहाड़ों के धुएं उडा दें डूबते हुए सूरज की रोशनी मे चमक रही थी। समंदर उनके बोझ से कुचला जा रहा था। और कश्तियो के काफिले अपने चप्पुओं के बाज़ू हिलाते स्याह उक़ाबों की डार के मानिंद उसकी तरफ उड़ रहे थे। कोई हलचल न थी कोई हंगामा न था। सब कुछ इतनी आसानी और खामोशी से हो रहा था जैसे किले मे हाथियो से खज़ाना उतर रहा हो और जैसे यह सब कुछ रोज का मामूल हो।

फिर उसने पेंशन का ठीकरा मुकदमे के कागजो मे लपेटा और कश्ती

1 काव्य-कला और काव्याकरण 2 नास्तिक

पर सवार हो गया और एक भटके हुए कबूतर की तरह दिल्ली की छतरी पर उतर पड़ा और चिल्लियों से छुपता अपने दड़बे मे दाखिल हो गया। उमराव बेगम ने अपने पैरों की चादी बेचकर बावर्चीखाना रोशन और दीवानखाना आबाद किया।

वीराने उसके दिनों से वीरानी का कर्ज मागते रहे। रातें उसके घर से स्याही की भीख मांगती रही लेकिन क़लम से फिगार[1] उंगलियो की रोशनी मे तीसरी आंख मजामीन[2] ढूंढती रही। सीने के चाक रोशनाई से भरते रहे और वह रोजोशब के वरक उलटता रहा।

फिर एक जुगनू चमका और मीरजा के चोबदार ने एक शौब्रा और उनके मुशाइरे में शिरकत का हुक्मनामा पेश किया। किला-ए-मुअल्ला की चौबीं मस्जिद के सामने आबनूस के बेल-बूटेदार खभों पर भारी शामियाना बुलंद था। तीन तरफ गुजराती मखमल की सुर्ख दीवारें खड़ी थी। कोरी चादनी के फर्श पर कश्मीरी और विलायती क़ालीनो का दोहरा फ़र्श। तलाकार मखमल और ज़रबफ़्त ममनदें पडी हुई थी। निगाह मिलते ही मीरजा ने पेशवाई की। चादी के तख्त के दाहिनी तरफ बिठाकर अपने हाथ से तकिया लगाया। तख्त के पीछे कलाबत्तू के मोतियों की चिलमनें पड़ी थी और फानूसो, झाड़ो, कंवलो और गिलासो की रोशनी मे मोतियों की चादरों को कजला रही थी। थोडे-थोडे फासले पर चादी के पीकदान रखे थे। कदम-कदम पर ऊददानो से खुशबुओं के छल्ले उठ रहे थे और खादिम दामनो पर इत्र मल रहे थे और तख्त से जरा फासले पर दूर तक मजमा बैठा हुआ था। "लेकिन इस तरह खामोश जैसे शहंशाह के सामने खड़ा हो कि मोमिन खां 'मोमिन' आ गया। निकलता कद छरहरा बदन। सब्ज रंग टांगों मे सब्ज गुलबदन का अरज का पायजामा। बर्मी जामेवार का खपतान। कंधो पर उसी तरह का दोशाला बडे-बडे

1. प्रकाशित 2 विषय, थीम

स्याह घुघराले बाल कधों पर उड़े हुए आंखो मे सुरमा लगा हुआ उंगलियों में कीमती अंगूठिया तड़पती हुईं। हसते तो दातों की मिस्सी झलक जाती। देखते ही सबको छोड़कर आया और बगलगीर हो गया। हाथ में हाथ लेकर पहलू मे बैठ गया और सफरे कलकत्ता का जिक्र करके जुल्फे बंगाल के पेंचो-खम खोलने लगा। फिर 'ज़ौक' आ गये। अपनी शायरी की तरह पस्ताकद। सब कुछ पाकर भी हसद की आग से तपा हुआ। कालारग, पूरा चेहरा चेचक से छिदा हुआ। मखमल का कुर्ता जिसकी आस्तीनो पर घना काम जैसे सारे मुहावरे टांक लिये हो। छोटी मोहरी का पायजामा रोज़मर्रे की तरह आम, कमर मे दोशाला, सिर पर माथे से उतरी हुई गोल टोपी। छोटी-छोटी आखो से झांकती हुई महतात[1] नजरें। तख्त के बायी तरफ मसनद से लगाकर बिठा दिये गये। फिर मुफ्ती सद्रुद्दीन 'आजुर्दा' आ गये। शालीनता के सांचे मे ढले हुए, शेरो-फन के कांटे मे तुले हुए। नवाब मुस्तफा खा आये तो जैसे रियासत और वजाहत आ गयी। मौलाना फज्ल हक खैराबादी के साथ उसके पास ही बैठ गये कि नकीब[2] कड़का :

"गोश बर आवाज़···निगाह रूबरू···अदब लाज़िम···मीरज़ा सिराजुद्दीन मोहम्मद ज़फर साहिबे आलम !"

ज़फर ने मजमे को मुलाहिज़ा किया और तख्त पर मसनद से लगकर बैठ गये। नवाब शम्सुद्दीन वाली फीरोजपुर और नवाब झज्जर तख्त के दोनो पायों से लगकर बैठ गये। मीरज़ा नजर सुलतान हाथ बाधकर सामने।

"साहिबे आलम का हुक्म हो तो मुशाइरे का आगाज़ किया जाये।"

ज़फर ने जवाब में हाथ का इशारा कर दिया।

दिल्ली के मशहूर खुशआवाज़ अमरद[3] तूती खा ने गज़ल छेड़ दी। उसकी आवाज के सहर में ज़फर की गज़ल ऐसी लगी जैसे चांदी की तश्तरी मे तांबे के पैसे। गज़लें होती रहीं। आधी रात के करीब चोबदार ने शमादान उसके आगे रखा तो मोमिन ने शमादान उठाकर अपने सामने

1 एहतियात या सम्मान करने वाली 2. नाम पुकारने वाला 3. तरुण

रख लिया और हाथ बांधकर बोला,

"मीरज़ा नोशा से पहले आज हमको पढ़ने की इजाज़त अता हो साहिबे आलम !"

जवाब का इंतजार किये वगैर उसकी आवाज़ के शोले लपकने लगे। सारे मुशाइरे की गज़लें खसो-खाशाक[1] होकर रह गयी। क्या तलाशे मज़मून और कुदरते बयान और अदायगी ! फ़िक्र और आवाज़ का एक जादू था कि तारी था। मालूम होता था सोने के थाल में मोतियों के ढेर लगा दिये हैं। ज़फ़र ने दाद दी लेकिन जैसे बंधा हुआ हुक्का दिया जाता है। फिर कहीं दूर से अपनी ही आवाज़ आई और जब यह शे'र पढ़ा—

शर्मे रुस्वाई से जा छुपना नकाबे खाक में

खत्म है उल्फ़त कि तुझ पर पर्दादारी हाय हाय ! ...तो जैसे चिलमनों के पीछे 'वाह' में लिपटी आह निकल गयी। मोमिन, शेफ़्ता, आज़ुर्दा और फ़ज़ल हक के अलावा सब खामोश थे। रहे आम लोग तो उनकी वाह का का क्या हिसाब ! ज़फ़र ने ज़ौक की तारीफ में एक अदद वाह की तक-लीफ गवारा कर ली। मजमा किले का था। जो लोग शहर के भी थे वे किले के रंग मे रंगे हुए थे। किले की पसंद और नापसंद से वाकिफ थे। दुनिया हक भी उसी को देती है जो उसके हलक से अपना हक निकाल लेने की ताकत रखता है। ज़ौक की गज़ल पर कुहराम मच गया कि किले के उस्ताद थे और ज़फ़र का मुह ज़ौक को दाद दे रहा था। नही दाद की बारिश कर रहा था। सुनने वालों के ज़ौक की पस्ती उसको दाद दे रही थी। गालिब की दुश्मनी उसको दाद दे रही थी—कतील परस्ती[2] उसको दाद दे रही थी। मुशाइरा खत्म हो गया। मीरज़ा नज़र सुल्तान अपने मुअज्जिज़ मेहमानों को रुखसत कर रहे थे और वह एक कोने मे खड़ा उनकी फ़ुरसत का इंतज़ार कर रहा था कि वे मुखातिब हों तो रुख्सत के साथ सवारी भी तलब करे...कि चुगताई बेगम का मुला-ज़िमेखास सलाम करके खड़ा हो गया।

"बेगम हज़रत की गाड़ी आपका इंतजार कर रही है।"

1. घास-फूस 2. फारसी शाइर क़तील

"क्या नवाब साहब फर्रुखाबाद तशरीफ़ लाये है ?"

"गुलाम को इसका इल्म नहीं।"

वह दालान में था कि दरवाज़े की चिलमन हटाकर चुगताई बेगम सामने आ गयी और पेशवाई करती कमरे में गयी। मसनद के सामने लगन में अंगीठी रखी थी। अंगारे दहक रहे थे। उसके बैठते ही एक कनीज ने जाड़े की रातों को दुल्हन बना देने का सामान चुन दिया। बोतल उसने खोली और प्याले में गुलाब चुगताई बेगम ने ढाला। गोश्त के साथ एक प्याला पेट में पहुंचा तो रगों में आग दौड़ने लगी। दोशाला कंधों से गिर गया। स्मृति में चिराग जलने लगे।

"आज मुशाइरे में आपने जो मर्सिया पढ़ा...।"

"मर्सिया ?"

"अच्छा... खैर गज़ल सही...एक बार अता कर दीजिये।"

वह हिचकियां लेता रहा, मिसरे छेड़ता रहा। कुछ अशआर हुए थे कि ऐसा महसूस हुआ जैसे तुर्क बेगम आ गयी कहीं से। तरबूज़ी अतलस की पशवाज पर इक्हरे घुंघरू बांधे पहलू से लगी बैठी है और उसकी बाज़ू पर आग की लपटों के ढेर पड़े हैं और वह गज़ल सुना रहा है। अपनी सरमस्त आवाज़ से मिसरों के खजरों पर धार रख रहा है। गज़ल खत्म हुई तो चुगताई बेगम कहीं दूर से बोली,

"क्या खुशनसीब औरत थी ?"

"क्या शानदार औरत थी ?"

"कौन ?" उसने सिर से पांव तक धड़क कर पूछा।

"वही जो कुर्बानगाहे मोहब्बत पर कुर्बान हो गयी। जिसने आपकी शाइरी को सोज़ का खिलअत पहना दिया और आवाज़ पर दर्द की धार रख दी...आपको मेरे सिर की कसम मीरज़ा साहब इस कताला-ए-आलम[1] का नाम बताइये।"

...अब वह मथुरा की बारहदरी में सजी तुर्क बेगम की सेज से उठकर चुगताई बेगम के कमरे में दाखिल हो चुका था। उस ने चुगताई बेगम

1. संसार को अपनी सुंदरता से कत्ल करने वाली

का रूप निखार दिया था जैसे मेहताब बाग का खासुलखास पैबंदी आम पाल से उठ आया हो। खम और गहरे, उभार और ऊंचे, जाविये और कातिल हो गये थे। वह मेवे से लदी शाख की तरह उस पर झुकी हुई थी।

"वह एक डोमनी थी चुगताई बेगम ?"

"डोमनी..."

"हां चुगताई बेगम महज एक डोमनी !"

"क्या नाम था उस डोमनी का मीरजा साहब !"

"डोमनियों के भी कहीं नाम होते हैं...हर रात एक नया नाम तजवीज करके सहर हो जाती है।"

उसने दूसरा खाली करके मेज पर रख दिया।

"आपकी रातों ने भी उसका कोई नाम रखा होगा ?"

"हमारी महरूमियों ने जिंदगी बसर करने के लिए उसका नाम चुगताई बेगम रख लिया था।"

"क्या फरमा रहे हैं आप मीरजा साहब ?"

"हम भी चुगताई बेगम दुनिया की तरह झूठ ही बोलना चाहते थे लेकिन कमबख्त शराब ने बोलने न दिया। ये कहां मालूम था कि जिंदगी में कभी एक रात ऐसी भी आयेगी कि चुगताई बेगम के शबिस्तान में तनहा उनके पहलू में बैठे होंगे और हमारे प्यालों में आफताबो-माहताब उतर रहे होंगे।"

"लेकिन आपने कभी इजहार..."

"इजहार नहीं किया ! इजहार करते भी तो किस मुंह से करते ? किला-ए-मुअल्ला का वली अहद और रियासतों के वाली जिसकी रातों को तरसते हों उसकी चाहत का सौदा कान पर रखा हुआ एक मातूब[1] और मरदूद कलम कैसे कर सकता था।"

"चुगताई बेगम को आपने बड़े सस्ते दामों बेच दिया मीरजा साहब !"

1 दण्डित, सताया गया

उसने कपकंपी ली और लरज़ कर सभल गयी।

"हमने तो आपके गुरूर की कहानियां सुनी थीं आप तो खाकसारी की हदों से भी आगे निकल गये। आप कभी हमारे दरवाज़े पर दस्तक देकर तो देखते।"

"दस्तक···दस्तक ही देना तो हम नही जानते—हम पुकारें और दरवाज़ा खुले, यो कौन जाये!"

"तो आपने किसी नौकरानी के ज़रिये अपने गुज़रने का वक़्त बता दिया होता तो हम दरवाज़े पर खड़े-खड़े तस्वीर हो जाते।"

"अजीब बात है चुग़ताई बेगम शराब हम पी रहे हैं और नशा आपको आ रहा है।"

और उसने हाथ बढ़ाकर चुग़ताई बेगम को तोड़ लिया। एक अकेली शराब की बेचारी खुशबू उनकी तेज़ खुशबुओं के नीचे कुचलकर रह गयी। दामन पर गुलिस्तां के गुलिस्तां खिल गये। बाहों में कहकशां की कहकशां थरथरा कर रह गयी। सुबह का गजर बजा तो वह हंस दिया कि गजर बजाने वाले ने भी आज चढ़ा रखी है। उसने चुग़ताई बेगम की घनी ज़ुल्फ़ों को हटाकर देखा तो चमन के दरख़्तों की फुनगियों पर धूप उनकी शबनम सुखा रही थी। उसने आंख खोलकर ख़्वाबगाह का जायज़ा लिया तो कच्ची चांदी के ठोस चित्रित पायों और पट्टियों का पलंग, रेशम के कमनों से कसा हुआ, तख़्त बना हुआ। शीत प्रदेश मे रहने वाले परिंदों के परों के तकियों में सिर धसा हुआ, दूर तक ढेरों बाल खुले हुए जिस्म पर काशानी मख़मल की दोहरी रजाई डाले सो रही हैं। मसहरी के पर्दे बंधे हुए, उसके एक कोने पर पशवाज़ टंगी हुई, पलंग के नीचे बक्सा पड़ा हुआ, दरवाज़ों और खिड़कियों पर कलमकार रेशम के पर्दे खुले हुए, आईनाबंद दीवारों पर निगारें, हाशियों पर क़द्दे आदम आइने लगे हुए, सुर्ख़ छतगीरी के नीचे फ़ानूसों की कहकशां-सी जगमगाती हुई, गंगा-जमनी तोहफ़े, हल्कों मे जड़ाऊ रकम तुगरे[1] लटकते हुए। पलग के बराबर कमर तक ऊंचे सीमी शमादान में खुशबूदार शमा जलती हुई। उसने हाथ मार कर बढ़ा दी। सामने ऊँचे आईने मे वह उठकर बैठ गयीं। उसने गर्दन घुमायी कच्ची नींद

1. विश्म-चिह्न

से जागी हुई आखों में सुस्ती-सी घुली हुई, भारी-भारी पैवटों के नीचे लंबी-लंबी पलकों के दरम्यान लाल-लाल डोरे झाकते हुए। रज़ाई कधो से ढलकी तो आंख झपक गयी। उन्होंने शरमाकर चादर के नीचे से दोशाला खींचकर ओढ लिया। शमादान के दूसरी तरफ़ खड़े हुए घटे पर मोगरी मारी दी। दरवाज़े ने सास ली, पर्दा हिला और एक कनीज़ तस्लीम करने लगी।

"मीरज़ा साहब के लिए हमाम तैयार करो।"

"तैयार है।"

उसने चौंक कर देखा। वह उसी तरह मुअद्दब खड़ी थी।

"तोशा खाने की दारोगा को भेज दो।"

एक भारी-भरकम औरत नीचे कुर्ते और शलवार पर मखमल की नीम आस्तीन और सोने के कड़े पहने आई और हाथ बाधकर खड़ी हो गयी। वह ताक में रखे हुए हाथी दांत के कलमदान को देख रहा था। औरत चली गयी। वह एक कनीज़ के साथ हमाम मे दाखिल हुआ। देवपैकर आइने की शाख में रेशम का कुर्ता और गुलबदन का पायजामा टंगा हुआ था। पायंदाज के पास चादी की खडाऊ रखी थी। गर्म और ठडे पानी के तमाम बरतन चादी के थे। एक कोने मे बडी-सी अगीठी दहक रही थी। एक ताक मे उबटन, खली और बेसन चादी के बर्तन में बद रखे थे। दूसरे ताक़ मे सिर में लगाने को तेल के छोटे-छोटे कटर सजे थे। तीसरा ताक इत्रखाना बना हुआ था। गर्म पानी के बर्तन का ढक्कन हटा तो गुलाब की खुशबू से हवाम तक मुअत्तर हो गये।

नहाकर निकले तो सदर दालान के बीच मे ज़र्द चमड़े का दस्तरख्वान लगा था जो रंग-रंग की काबो और क़िस्म-क़िस्म के खानों और फलों मे लदा हुआ था। उसके हाथ खींचते ही एक कनीज़ सेलाबची और दूसरी आफ़ताबा लेकर हाजिर हो गयी। तीसरी ने बीनी पाक पेश किया। किनारे के दर से एक औरत भांडा उठाये हुए, दूसरी चूलड थामे हुए आई। बेगम ने मेहनाल दांतों में दबाकर हल्के-हल्के दो-चार कश लिये तो अननास के खमीरे से दरो-दीवार महक गये। फिर मेहनाल अपने गाल मे साफ़ की और दस्तगी उसके हाथ मे पकडा दी। चुनगीर से पान उठाकर पेश किया। मुह मे रखते ही इरशाद हुआ,

"आपके महल में इत्तला हो चुकी कि नवाब साहब फर्रुखाबाद ने आपको रोक लिया है।"

"आपके इतज़ाम और सलीके से यही तवक्को थी। खानुम जी कहां हैं? नज़र नहीं आयीं।"

"लाल हवेली गयी हैं। वली अहद के बेटे की बिसमिल्लाह[1] की दावत में। मैं तो जान छुड़ाकर चली आयी। वो ठहरी हुई है।"

दीवानखाने में कदम रखते ही कनीज़ ने पच्चीसी बिछा दी। हाथी दांत की जड़ाऊ गोटें सामने रख दीं। चुगताई बेगम ने कौड़ियां उसे पकड़ा दीं। वे दोनों खेलते रहे। फिर बेगम की पलकें झपकने लगीं। लेकिन खेलती रहीं। खाना वक्त से पहले लगा दिया गया और चुग़ताई बेगम अपनी ख्वाबगाह में सोने चली गयीं और वह उठकर कुतुबखाने में आ गया। अखरोट की लकड़ी की कामदार अलमारियों में फारसी के मशहूर शाइरों के दीवान और उर्दू की दास्तानों के जुज़ चमड़े की जिल्दों और सोने के हर्फों से सजे सलीके से लगे हुए थे। बीचोबीच संगमरमर के तख्त पर शेर की खाल पड़ी थी। एक तरफ चांदी का कलमदान और हाथी दांत का सदूकचा रखा था। वह नीमदराज़ होकर एक दीवान देखने लगा। कनीज़ हुक्के की जड़ाऊ नाल उसके हाथ में पकड़ा कर चली गयी। वह 'बेदिल' को पढ़ता रहा। मालूम नहीं कब सो गया। आंख खुली तो कमरे का धुंधलका गहरा होने लगा था। उसके उठते ही दरवाज़े का पर्दा मुअद्दब हाथों में सिमट गया। ख्वाबगाह में चांदी के आईने के सामने सोने की मूरत खड़ी थी। दोनों खवासें जो उन्हें सजा रही थीं सजाकर पर्दा बराबर करती बाहर चली गयीं। आईने के दोनों तरफ दो शम्मे जल रही थीं जैसे शीशे की बैठक पर मोम के खंभे खड़े हों। वह उन्हें देख रहा था, देखता रहा। और वह ज़ेवरों को संभालती रहीं।

"कौन आने वाला है?" उसने अपनी बेकरारी उगल दी।

"आने वाला नहीं, आ चुका है।" उसने आइने से निगाह उठाये बगैर जवाब दिया साथ ही एक आवाज़ ने पर्दे के पास से इत्तला दी,

[1] शिक्षा का श्री गणेश, पाटी-पूजा

"खानुम जी आ गयीं।"

फिर खानुम सुल्तान आ गयीं। एक कनीज़ उनके पायजामे के पायंचे उठाये साथ-साथ थी।

"मीरज़ा साहब···जहे नसीब···जहे नसीब! आप तो ईद के चाँद से भी बढ़कर हो गये कि साल-ब-साल मुँह तो दिखा जाता है आप तो बरसों झलक नहीं दिखाते।"

"हम शहर में थे कहाँ?"

"जी हाँ, सुना था आप कलकत्ता फ़तह करने गये हैं! खुदा मुबारक! ऐ जीजी जल्दी कीजिये नवाब दीवानखाने में बैठे सूख रहे हैं।"

"कौन नवाब?"

"फ़खरुद्दौला नवाब शम्सुद्दीन खाँ बहादुर वाली रियासत फ़ीरोजपुर (फ़ीरोज़पुर झिरका)"

"तो ये थे जो आ चुके थे। इनके लिए लालो जवाहर की दूकान सज रही थी।"

"आपसे कितनी बार कहा है कि पहले पूछ लिया कीजिये तब किसी को दावत दिया कीजिये।"

"ऐ नौज···मुझ दावत देने वाली पर खुदा की मार! ···मैं गरीब सलातीनों की ड्योढ़ी के सामने अपने चौपहले पर सवार होने को निकली कि नवाब झपट लिया। आनन-फानन गाड़ी में डाल लिया। मैं नाहफहम समझी कि आपका इशारा-किनाया होगा।"

"आज मेरा जी कुछ मांदा-सा है।"

"ऐ · मैं कुर्बान इस पर। ये सोला सिंगार और बत्तीस अबरन!"

खानुम ने आहिस्ता से कहा लेकिन उसने सुन लिया। खानुम की कनखियां उस पर लगी हुई थीं।

"आज कोई सूरत निकाल कर टाल दीजिये।"

आईने में दोनों की निगाहें टकरा गयीं जैसे दो बर्छियां तड़प गयी हों। फिर खानुम ने अपनी बर्छी हटा ली। जैसे लफ़्ज़ों को तोल रही हों, लहजे को परख रही हों।

"थोड़ी देर को आ जाइये···एक गज़ल बता दीजिये···बस!"

"इनको आप जानती हैं जब आप जाते हैं तो टाले नहीं टलते।"

"खाकुम बदहन[1] नवाब न हुए इजराइल[2] हो गये···खैर देखती हूं।" और छलावे की तरह निकल गयी।

"चुग़ताई बेगम हमारे लिए इतने बड़े-बड़े खतरे क्यों मोल ले रही हो?" उसने चुग़ताई बेगम के शानों पर हाथ रख दिये।

"मैं सुलतान खानुम की नौची[3] नहीं हूं · सुलतान खानुम मेरी अम्मा हैं। रहे नवाब तो नवाब लाल किले की एक कहकशां के एक सितारे हैं महज़ एक सितारे!"

"अच्छा···फ़ीनस लगवाइये···अब हमारे सवार होने का वक़्त आ गया है।"

"लेकिन इस तरह आप फ़ीनस पर अकेले सवार नहीं होंगे।"

"चुग़ताई बेगम!"

"चुग़ताई बेगम रंडी नहीं है। रंडी के पेट से पैदा हुई है। एक गरीब लेकिन खरे मुग़ल की औलाद है। इंसाफ हुआ होता तो मेरे बाप की मौत एक बादशाह की मौत हुई होती···ठहर जाओ!" उसने दरवाज़े की तरफ देखकर हुक्म दिया। जो जहां था वहीं थम गया।

"क़तील जान का नाम सुना है आपने?"

"दिल्ली में किसने नहीं सुना!"

"वह मेरी मां थी।"

"बेगम!"

दरवाज़े पर खड़ी खानुम ने गड़गड़ाकर आवाज दी, "वहीं से फ़रमा दीजिए!"

"वो बिफर रहे हैं। घड़ी-भर को आ जाइये। मेरे सफेद चूड़े में स्याही न लगवाइये।"

"अच्छा तो सदर दालान में दोहरी मसनद लगाइये और ड्योढ़ी पर पहरा खड़ा कर दीजिये और इत्तला दीजिये।" फिर मीरज़ा से मुख़ातिब होकर कहा,

1. मेरे मुंह में ख़ाक 2. यमराज 3. वेश्या, लौंडी

"मेरे बाप ने मेरी मां से अपने निकाह को शोहरत न दी कि दुनिया कहेगी मुगल शाहज़ादे ने दौलत के लिए एक रंडी से ब्याह रचा लिया। मुगल की मनकूहा[1] फ़ला की गोद मे बैठी हुई है—मुगल का बावचर्ची खाना रंडी के घुंघरुओं पर रोशन है—बस इतना किया कि कतील जान के महल का दरवाज़ा बंद कर दिया।"

"मशहूर हुआ था कि निज़ाम ने उन्हें हैदराबाद तलब कर लिया और चली गयी।"

"यही मशहूर कराया था लेकिन बुरहानपुर की मंज़िल में थी। जब उम्मीद के आसार नमूदार हुए और बाप ने वही ख़ेमे डाल दिये। मैं बद-नसीब पैदा हुई। चंद रोज बाद ही ताऊन मे वो अर्दा आरामगाह[2] हो गये। काली मस्जिद मे सुला दिये गये। मां ने इद्दत के दिन वही गुज़ारे वापसी पर ख़ाने दौरां की हवेली के पास जर्द कोठी ख़रीदी। कबाला[3] सुल्तान खानुम के नाम लिखा गया और उतर पडी। बाकी ज़िंदगी गुम-नामी मे तेर की है। मरते वक़्त कहने लगी कि अगर किले वालों को हवा भी लग जाती तो मेरे साथ तुझे भी खींच ले जाते। सारा जमा जत्था पर लगाकर उड़ जाता और हम दाने-दाने को मोहताज हो जाते और कुरान पाक के जुजदान मे कागज़ात लपेट कर मेरा हाथ सुल्तान खानुम के हाथ मे दे दिया···"

···हर शख़्स अपनी सलीब के नीचे कुचला पड़ा है।

और उसके खफ़्तान का गिरेबान होंटों से दहकने लगा।

"सदर दालान इंतज़ार कर रहा है बेगम।"

बेगम ने सिर उठा कर आखें खोली। आंखें बंद की तो उनके कानों पर नन्हे-नन्हे मोती रखे थे। उसने होंट बढ़ाकर तोड़ लिये।

"हमको ले जाने से पहले फिर एक बार सोच लीजिये।"

"कितने बरस हो गये सोचते-सोचते कहा तक यह मशक़्क़त लीजियेगा।"

1. वह औरत जिससे निकाह किया गया हो 2. दिवंगत 3. घर की बिक्री का काग़ज़

नवाब मसनद पर वाली-ए-रियासत की तरह बैठा था। दाहने हाथ पर सजे-धजे कब्जे की तलवार रखी थी। कंधे पर सटक की दस्तगी पड़ी थी। सामने पान का चुनगीर तवज्जा के इंतजार में सूख रहा था। बेगम को देखकर सीधा हुआ तो पटके का खंजर चमक गया। बेगम की तस्लीम पर मिसरा पढ़ा—

आप आये कि कयामत आयी !

उस पर निगाह पड़ी तो नवाब के चेहरे की शोखी बुझ गयी जैसे शराब के प्याले में झींगर देख लिया।

"आइये मीरजा साहब·· तशरीफ रखिये ?"

वह नवाब के सामने दूसरी मसनद पर घुटनों के बल बैठ गया। बेगम दीवार के नीचे इस्तंबूली कालीन पर बैठ गयी।

"ये मीरजा गालिब हैं नवाब साहब·· और आप नवाब साहब वाली-ए-रियासत फीरोजपुर।"

दोनों ने मसनद से जरा-सा उभर कर एक दूसरे के लिए हाथ उठाये जैसे अखाड़े में उतरे हुए बांक के उस्ताद एक दूसरे को सलाम करते हैं।

"जानते हैं खूब जानते है।"

नवाब ने इत्तला दी जैसे कमर का खंजर खींच लिया हो और मुंह फेर लिया और सटक की मेहनाल दांतों में दबा ली। उसने अपने सामने के चुनगीर से पान उठाकर मुंह में रख लिया और कनीज के हाथ से पेचवान की दस्तगी ले ली। नवाब के दांत मेहनाल को काटे डाल रहे थे और वह पान चबाये जा रहा था कि साजिंदों के साथ खानुम आ गयी। साजिंदे अपनी जगह पर बैठ गये। खानुम ने चुनगीर उठा कर नवाब को पेश किया। नवाब ने एक तोड़ा निकाल कर खानुम के हाथ में रख दिया। खानुम ने झुक कर सलाम किया। सीधी होकर ताली बजायी। जवानी के दरख्त से टूटी हुई हरी-भरी फल-फूल से लदी-फदी शाख-सी लड़की बीच में सलाम करके घुंघरू छेड़ने लगी थी कि नवाब गरजे :

"खानुम जी हम चुगताई बेगम को सुनने आये हैं, देखने आये हैं। इस लड़की को तो महल में उठवा लेते।"

"बेगम काफी मांदा हैं। सुबह से खटिया पर पड़ी थी। आपको

सलाम करने उठकर आ गयी।"

नवाब ने त्योरी पर बल डाल लिये और आहिस्ता-आहिस्ता गर्दन हिलाने लगे।

"किसी को हुक्म दीजिये कि हमारे आदमियों से हमारी छागल ले आये।" और तकिये से लगकर मेहनाल फिर दातों में जकड़ ली।

"दारोगा को हुक्म दो कि लाल पानी की कश्ती हाज़िर करे।"

खानुम ने सीढ़ियों पर खड़े खादिम को हुक्म दिया। नवाब के मुंह से धुआं उबल रहा था और आंखों से चिंगारियां निकलने लगी थीं। दो कनीज़ें दो ख्वान लेकर हाज़िर हुईं। खानुम ने नवाब के आगे गज़क की काबें रख दीं। गुलाब और शराब के शीशे चुन दिये। चुग़ताई बेगम क़ालीन से उठी और दूसरी लड़की का ख्वान उसके सामने बिछे चमड़े पर खाली कर दिया। नवाब ने गुलाब का शीशा हटा दिया और शराब से प्याला भर दिया। खानुम ने उनके क़रीब बैठकर हाथ जोड़ लिये।

"रक़्स और सुर की महफ़िल तो रोज़ ही होती है आज आपकी ज़ुबाने मुबारक से एक ग़ज़ल अता हो जाये तो बंदी अपने नसीब पर नाज़ करे।"

नवाब ने प्याला रखकर बड़ी ठसक और तमकनत से गर्दन घुमायी।

"हम शाइर नहीं हैं"'शाइरी को कभी-कभी अपनी मुसाहबत की इजाज़त ज़रूर दी है। आपके सामने एक पेशावर शाइर मौजूद है, इससे फ़रमाइश कीजिये।"

"पेशावर!"

उसके मुंह से निकल गया। नवाब ने सुनकर तबस्सुम किया। गोया आस्तीन में छुपा खंजर चमक गया।

"आपके आका-ए-वाली नैमत हज़रत सिराजुद्दीन मोहम्मद ज़फ़र जो शाइरी की मुसाहबत में दिन-रात सफ़र करते हैं, क्या पेशावर शाइर हैं?"

"साहिबे आलम का नाम आपने क्यों कर ले लिया? वह खुदान-ख्वास्ता किसी का क़सीदा लिखकर रोटी कमाने की आरज़ू नहीं करते हैं। आप करते हैं यह अलग बात है कि कामयाब नहीं हो पाये।"

"रोटी कमाने की जरूरत में तो तलवार भी मुब्तिला होती है नवाब साहब ! किला-ए-मुबारक ने रोटी देने में तंगी की तो तलवार मरहटों की चाकरी करने लगी। मरहटों का वक्त बिगड़ा तो अंग्रेजों के जूतों की हिफाजत करने लगी। हमने अपनी आंखों से बड़ी-बड़ी पाकदामन तलवारों को अपना खसम बदलते देखा है।"

नवाब जख्मी सांप की तरह बल खाने लगे। खानुम बीच में आ गयी,

"अजीब बात है, आप दोनों तलवार और क़लम पर बहस फ़रमा रहे हैं हालांकि दोनों के पास तलवार भी है और कलम भी !"

"और क्या दोनों साहबे सैफ़[1] व कलम हैं यह अलग बात है कि किसी की तलवार बड़ी है कलम छोटा और किसी का कलम बड़ा है और तलवार छोटी।"

चुगताई बेगम ने पानी डाला।

"मीरजा साहब आप अपनी वह गजल सुनाइये जो आपने कल मुशाइरे में पढ़ी थी।"

"जरूर सुनाइये मीरजा नोशा···कद मुकर्रर[2] भी बहरहाल कंद ही होती है।"

नवाब ने जाहिरी खुशदिली से कहा और तीसरा प्याला ढाल लिया।

ग़ज़ल खत्म हुई। तारीफ़ भी खत्म हो ली। तब नवाब ने एक-एक लफ्ज जमा-जमाकर कहा,

"मीरजा नोशा यह गजल नहीं है मर्सिया है और आपके बजाय मरने वाले की मां की जुबान से अदा होता तो ज्यादा अच्छा होता··· ग़ज़ल तो उस्ताद 'ज़ौक़' कहते हैं कि शे'र का पहला मिसरा अदा करके दूसरा छेड़ा और सुनने वाले ने आधा मिसरा खुद सुना दिया। क्या बोलता हुआ काफ़िया होता है ! क्या चमकती हुई रदीफ होती है ! ··· अच्छा चुगताई बेगम रुख्सत।"

दूसरा तोड़ा उठाया। ममनद पर खड़े हो गये।

"आप तो कहर ढा रहे हैं नवाब साहब···न तमहीद[3] न दीबाचा[4]

1 तलवार 2. दो बार साफ़ किया हुआ कंद 3 प्रस्तावना 4 भूमिका

खड़े हो गये।"

चुग़ताई बेगम ने ज़ुबान से तो यह कहा और खड़ी हो गयीं रुख़्सत करने के लिए। एक कनीज़ नवाब के आदमियों को होशियार करने चली गयी।

"अल्लाह! नवाब साहब खाना तैयार है। घड़ी-भर में लगा जाता है।" ख़ानुम ने आग्रह किया।

"नहीं ख़ानुम हमारा खाना तो कर्नल साहब बहादुर की कोठी पर है। आज की रात किसी और दिन पर उठा रखिये।"

और कनीज़ के हाथ से तलवार ले ली। चुग़ताई बेगम ने पायंदाज़ ही पर तस्लीम कर ली। ख़ानुम ड्योढ़ी तक रुख़्सत करने गयी।

"अल्लाह! आप दोनों तो छुरी-कटारी हुए जा रहे थे।"

वह उसे देखती रही और सोचती रही।

"सुनिये···चुग़ताई बेगम कसीदे में शाइर किसी की तारीफ़ से कम सरोकार रखता है। उस फ़न पर अपनी कुदरत के इज़्हार से ज़्यादा वावस्ता होता है। वह अपने कमाल का ऐलान करता है और यह भी कि जब तक शाइर ग़ज़ल और कसीदे दोनों पर दस्तरस[1] न रखता हो बड़ाई और बुज़ुर्गी से दूर रहता है···मुग़ल जूतों की ख़ाक चाटने वाले, मरहटों के घोड़े टहलाने वाले और अंग्रेज़ों के सुअर चराने वाले हमारे फ़न-ए-शरीफ़ के मुंह आते हैं।"

उसने प्याला ख़ाली करके डाल दिया। चुग़ताई बेगम ने कंधे पर हाथ रख दिया।

"इजाज़त हो तो दस्तरख़्वान लगाऊं?"

"बिल्कुल ख़्वाहिश नहीं है···दोपहर का खाना उसी तरह रखा है।"

"तो चलिये ज़रा पाईं बाग़ में टहलें चांदनी देखिये कैसी खिला रही है।" उसने गर्दन निकाल कर सेहन को देखते हुए कहा।

लाल महल का पाईं बाग़ संगीन-चबूतरे के नीचे खिला पड़ा था। तर्शी हुई घास, क्यारी पर संग सुर्ख़ के ताविंबे में संगमरमर का फ़व्वारा

1. पहुंच

चल रहा था। उजली चांदनी मे सारा मंज़र किसी मुगल चित्रकार की विशाल तस्वीर का ज़िंदा मजरनामा मालूम हो रहा था। वे तालाब के किनारे तिपाई पर बैठ गये। देर तक अपनी-अपनी दुनिया मे खोये बैठे रहे।

"आपको रक्स पसद नही ?"

"रक्स को नापसद करने वाला शाइर नही हो सकता। इसलिए कि रक्स मौसीकी के पेट से पैदा हुआ और मौसीकी की कोख से शाइर ने जनम लिया है।"

"तो आपको मेरा रक्स पसद नही।"

"वह कैसे ?"

"आपने कल से आज तक एक बार भी फरमाइश क्या फरमाइश का इज़हार तक न किया।"

"सच कहती हो चुग़ताई बेगम···लेकिन तुमने यह नही सोचा कि अगर हम रक्स की फरमाइश कर देते तो अपनी तनहाइयो के यह जश्न कहां नसीब होते ?"

चुग़ताई बेगम के गिर्द बाहों का घेरा और तग हो गया।

"एक बात कहें ?"

"क्या अब भी इजाजत की जरूरत है ?"

"हम तुम्हारा ऐसा रक्स देखना चाहते हैं जो किसी साहबे आलम और किसी वाली-ए-मुल्क को नसीब न हुआ हो।"

"ऐसा रक्स कहा होता है ?"

"होता है···होगा···लेकिन अभी तो हमारा सरदामन भी आपकी मुर्वत[1] से तर नही हुआ।"

उस रोज वह अपनी महलसराय मे बैठा अपनी गरीबी का मानूस तमाशा

1 सभोवना

देख रहा था। बेगम उसके पास ही लाश की तरह पड़ी थी। उसने उनका हाथ पकड़कर उठाया।

"कल से सुबह की तबरीद[1] बंद, शाम की शराब मौकूफ़[2] और गोश्त आधा यानी सिर्फ़ एक सेर आया करेगा दूसरे वक्त सब्ज़ी और दाल!"

"ये कैसे मुमकिन है?"

"क्यों नही मुमकिन है? कितने ही घर हैं जहा हफ़्ते मे एक बार भी गोश्त नही पकता। एक वक्त भी पेट भरकर खाना नसीब नहीं होता। हममे कौन से सुर्खाब के पर लगे हैं। हम कलंदर है बेगम मिले तो मोती चुग लिये नही तो चने चबा लिये। याद रखिये गरीबी शराफत का ज़ेवर होती है, कलंक का टीका नही।"

"क्या ऐसा नही हो सकता कि सुबह की तबरीद और गोश्त के बजाय आप हवादार निकाल दें।"

"नही, तबरीद और गोश्त जबान का चटखारा है और हवादार आबरू होता है।"

वह कुछ और कहती कि दारोगा ने नवाब हामिद अली खा की आमद की खबर दी। नवाब हामिद अली खां ने बैठते ही पेंशन का किस्सा छेड़ दिया और इसरार करके रेजिडेंट देहली फ्रेजर साहब बहादुर के पास भेज दिया। फाटक पर खड़े अंग्रेज सवारो की इजाजत पाकर हवादार छोड़ा और अर्दल के एक प्यादे के साथ गोल कमरे में जाकर बैठ गया। थोड़ी देर बाद चिलमन उठी। सामने एक लबा-चौडा अधेड उम्र का अंग्रेज चिकन का सफेद कुर्ता और सफेद ही सूती चुन्नट पायजामा पहने खड़ा था। सलाम के जवाब मे मुसाफहे के लिए हाथ पेश किया। और कोच पर अपने पास ही बिठा लिया। उसने बाप की मौत से अपनी मौजूदा जिंदगी तक जो मौत का पर्याय थी, उसके सामने खोलकर रख दी। वह पूरी तवज्जा और हमदर्दी से सुनता रहा और पेचवान मे शग़ल करता रहा। देर तक सोचने के बाद बोला —

"कलकत्ते मे मुकदमे का खारिज होना बुरा है। फिर भी अम आपका

1. नाश्ता 2. बंद

मामला आगे बढ़ायेगा और आपको जस्टिस मिलेगा। अम देखेगा कि आपको जस्टिस मिलेगा आप अपना काग़ज़ छोड़ जाइये और कंपनी बहादुर पर भरोसा रखिये।"

साहब बहादुर के अल्फ़ाज़ उसके कानों पर आबे हयात की तरह टपक रहे थे। शराबे तहवर[1] के घूटों की तरह अता हो रहे थे। बाहर निकला तो मौसम और ख़ुशगवार हो गया था। हल्की-हल्की ठंडी हवा ऐसी लग रही थी जैसे शराब के दरियाओं से अपने दामन भिगोकर आयी हो। सूरज गुबदो-मीनार के पीछे छुप रहा था। एक उजला-उजला अंधियारा-सा छाया जा रहा था और मुंह में पानी भरा आ रहा था और घर की वीरानी के ख्याल से हलक ख़ुश्क हुआ जा रहा था। जी चाहा कि वह लाल महल की तरफ़ फिर जायें। ग़ैरत ने पैर पकड़ लिए। दीवानख़ाने में कदम रखा था कि दारोग़ा ने मुंशी हरगोपाल 'तफ़्ता' का पर्चा और तोहफ़ा पेश किया। ख़त पढ़ते ही बदन में बिजली दौड़ गयी। आबो-गुलाब के नख़रों के बग़ैर उसने दांत से बोतल खोली और प्याला भर लिया होंटों के करीब लाकर सूंघा। बड़ा-सा घूंट भरकर तकिये से पुश्त लगा ली और सोचने लगा कि दुनिया का कोई इत्र औरत की ख़ुशबू और शराब की महक का बदल नहीं हो सकता। ताज्जुब है कि मोहम्मद शाह रंगीले को यह नुक्ता न सूझा वरना हम भी लाल कनेर का इत्र लगाकर रंगीले को दुआ देते। और लाल परी का इत्र लगाकर चुग़ताई बेगम को दाद दी।

"बेगम साहब ने भेजा है।"

दारोग़ा ने महुवे से भरी हुई प्लेट सामने लाकर रख दी। उसने पूरी प्लेट और आधी बोतल हलक के नीचे उंडेल ली और खाने को सूंघकर छोड़ दिया। सोकर देर से उठा। नहा-धोकर कलमदान खोलकर बैठ गया। इज़ारबंद की गिरहों के साथ स्मृतियों की गुत्थियां खुलती जातीं और वह रात के अशआर ब्याज़[2] में लिखता जाता। मक़्ता खुल रहा था कि दारोग़ा चिलवन पर आकर खड़ा हो गया।

"रेज़िडेंट साहब बहादुर मार डाले गये।"

1. जन्नत की पवित्र शराब 2. याददाश्त की कापी, नोटबुक

"क्या ?"

वह उछलकर खड़ा हो गया।

"फ्रेजर साहब मार डाले गये!"

वह दस्तार व खफ्तान सभालता हुआ हवादार पर बैठ गया। गलियों से सड़कों तक आदमियों के ठठ लगे थे। सकते की आखों की तरह दूकानों के पट खुले थे। दूकानदार और गाहक जगह-जगह भीड़ लगाये खड़े थे। पालकियां और नालकियां मुह से मुह लगाये सरगोशियां कर रही थीं। रथ और चौपहले एक दूसरे के मुकाबिल थमे हुए गुफ्तगू कर रहे थे। सवार ज़ीन से ज़ीन मिलाये कहते-सुनते चले जा रहे थे। फ्रेज़र साहब की कोठी पर हुजूम दम-ब-दम बढ रहा था। अंग्रेज अफसरों के घोड़े हर तरफ उड़ते नजर आ रहे थे कि नवाब फतह उल्लाह खा नजर आ गये। वह सलाम करके उनके पास खड़ा हो गया। वह किसी अंग्रेज से कह रहे थे—"मैंने मरहूम को कितना समझाया कि तुझे मारने के लिए फीरोजपुर में करीम खां (नवाब शम्सुद्दीन का दारोगा-ए-शिकार) आया हुआ है। अकेले-अकेले मत फिरा कर लेकिन उस बहादुर ने मानकर न दिया।' वह देर तक खड़ा रहा फिर चला आया। पूरी दिल्ली की जुबान पर दो नाम थे—करीम खा और शम्सुद्दीन खां...शम्सुद्दीन खा और करीम खां!

शाम होते-होते खबर आयी कि करीम खा पकड़ा गया। फिर कत्ल में दूसरे शरीक वासिल नामक नवाब के सिपाही ने पुकारा में रपट दर्ज करा दी और सुलतानी गवाह बन गया। वह कई दिन तक घर का दरवाज़ा बंद किये बैठा रहा कि तकदीर ने एक बार फिर उसकी उम्मीदों के दफ्तर बद कर दिये थे। धूप कजलाने लगी थी और वह दालान में आहिस्ता-आहिस्ता टहल रहा था कि चुगताई बेगम का पयाम आ पहुचा। वह दारोगा को हिदायतें देकर नवाब फर्रुखाबाद के कूचे पर सवार हो गया। आख मिलते ही बेगम फट पड़ीं,

"तमाम शहर में सनसनी है कि नवाब शम्सुद्दीन की मुखबिरी आपने की है खुदा नख्वास्ता...और नवाब की गिरफ्तारी..."

"क्या नवाब गिरफ्तार हो गये ?"

"खबर है तसदीक नहीं हो सकती...इस अफवाह ने, खुदा करे अफवाह

ही रहे, आपका नाम वाम पर चढा दिया है। सुनते-सुनते कान पक गये हैं खुदा रहम करे।"

"कलकत्ता से वापसी के बाद से आज तक तुम जानती हो कि मेरा निकलना बंद हो चुका है। डिग्री हुंडी वाले बरकंदाजों के हाथों मे हथकडियां लिये शिकारी कुत्तो की तरह सूंघते फिर रहे है। जिन तीन-चार आदमियों के यहां एकाध बार गया हू वह शहर की नाक हैं और उन तक पहुचने वाली खबरें मेरी मुखबिरी की मोहताज नही हैं। यह फिर तुम्हारा घर है कि कभी-कभी आ जाता हूं और ये तुम ही जानती हो कि किस तरह आता हू। अदना लोगों से कभी मेरा कोई ताल्लुक नही रहा जो आज मैं उनकी जुबानो मे इश्तिहार दिलाता।"

"आप जो कुछ फरमा रहे हैं मैं उससे ज्यादा कहने का हौसला रखती हू लेकिन सवाल ये है कि आप ही क्यो?"

उसने निगाह उठाकर पूरे दीवानखाने का जायजा लिया। दुजाना, फर्रुखनगर और पाटोदी के नवाबजादे और उनके मुसाहबीन और करीब के लोगों से भरा हुआ था। लडकियां उनके पास बैठी हुई थी मंडला रही थी। साज अपने साजिंदो के इंतजार मे खामोश थे। उसने चुनगीर से पान उठाकर मुह में रखा, हुक्के का एक घूट लिया और तकिये से पीठ लगा ली।

"यह सवाल औरों ने भी किया। हम खामोश रहे। लेकिन तुमको जवाब जरूर देंगे तो सुनो—पूरे हिंदोस्तान मे चार शाइर हैं—लखनऊ में नासिख और आतिश, दिल्ली मे मोमिन और जौक। नासिख बेचारा उस्ताद ज्यादा शाइर कम, आतिश पहले कलंदर फिर शाइर। दोनों फ़ारसी वनाम व कमाल से महरूम जो कुछ पूजी है वह उर्दू मे है। दिल्ली मे मोमिन खा 'मोमिन' इस्म बामुसम्मा[1] है न किसी की भलाई में न बुराई में। कोठे पर न गया मुशाइरे में चला गया। शतरंज न खेली गजल बना ली। नुस्खा न लिखा शे'र लिख दिया। मियां जौक शाइर भी हैं किले के उस्ताद भी हैं। रोज़मर्रे मुहावरे पर उबूर रखते हैं। चलते-फिरते

1 यथा नाम तथा गुण

मज़ामीन बांध लेते हैं और कभी-कभी अच्छा भी बांधते है लेकिन ज़ौक़ हों या मोमिन फ़ारसी नज़्म व नस्र से या तो नज़दीकी नही रखते या दूर का रिश्ता रखते है···तो मेरे सिवा कौन है जिसकी फारसी नज़्म व नस्र अहले पारस[1] से मुकाबिला करती हो और हिंदी कलाम क्या, ग़ज़ल क्या, कसीदा क्या, अहले नज़र से दाद न लेता हो और यह भी कि खानदानी इज्ज़त और हुरमत, वजाहत और शराफ़त में शाइर बेचारों को छोड़िये, वो जो रियासत फ़ीरोज़ी व फ़ीरोज़मंदी के नवाब हैं वो भी मेरे सामने अपने को छोटा पाते है···तो बेगम यह मेरा कमाल है जो मेरा दुश्मन है। कमाल सदका मांगता है। मेरे हामिदों[2] ने मुझ पर जो तोहमतें बांधी हैं जो इल्ज़ामात लगाये हैं और बदनामी व रुस्वाई का सामान किया है वह मेरे कमाल का सदका है, मेरी शोहरत की ज़कात है। एक बात और जरायम पेशा जितनी जल्दी एक दूसरे के दोस्त बन जाते हैं। और अपनी दोस्ती में शरीफ दुश्मनी की हदों से गुजर जाते है, शरीफ न आपस में इस तरह चटपट यार बनते हैं और कमीनों के खिलाफ़ इस तरह कमर बांध कर लैस होते हैं। नतीजा ये होता है कि मुट्ठी भर कमीनों के हाथों शरीफ लोग पिटते रहते हैं और पिटते रहेंगे। और चुग़ताई बेगम यह भी कि लाल महल जो दिल्ली मे एक लाल महल है और जिसकी आवाज़ को लाल किला मुजरा करता है मुफलिस और क़ल्लाश[3] ग़ालिब के सामने क्यो हाथ बांधे खड़ा रहता है? तुम्हारी इनायतें भी हमारी दफाते जुर्म मे इज़ाफ़ा बन गयी · और सुनिये जामा मस्जिद की सीढ़ियां हो कि उर्दू बाज़ार के थडे किसी ने हमको जूतियां चटकाते न देखा होगा। हमारे अलावा कौन है जो वहा के गिरोहबंद जमावे से दाद न मांगता हो और यह भी कि जिसकी गिरह में पचास रुपये हुए उसने एक अदद मुशाइरा बरपा कर दिया और सिपाही बेटे मियां ज़ौक़ दीवान बगल मे मार पहुंच गये उस्तादी करने। और तो और जिसने मोमिन खां 'मोमिन' जैसे नाज़ुक मिज़ाज के पाव दाब दिये वही मुशाइरे में खींचे लाया। हम तो लाल किले तक के मुशाइरे मे शिरकत से परहेज करते हैं। तो हम

1 पारस के लोग 2. ईर्ष्यालु 3 दरिद्र

दिल्ली की उस पंचायत से वाहर रहे जो शायरों को ताज पहनाती है और और मसब बांटती है और यह भी बहरहाल हमारी खता है'''यह भी सुन लीजिये शीया इसलिए खफा कि हम खुल्फा-ए-सलासा[1] पर तबर्रा[2] नहीं कहते सुन्नी इसलिए नाखुश कि हम अली अलेह इस्लाम कहते हैं और अहले बेत[3] की सना[4] करते हैं। मौलवी की नज़र में हम इसलिए काफिर कि मेहमूद को डाकू और आलमगीर को लुटेरा कहते हैं। पंडित इसलिए सूरत देखने का इच्छुक नहीं कि हम बहरहाल मुसलमान हैं और तुर्क हैं।

"'''और लाख बात की एक बात ये कि किसी को फ़ैज़ नहीं पहुंचा सकते। न किले का दरबार हमारी पहुंच में और न कलां साहब बहादुर की कचहरी अख्तियार में। यानी अगर दिल्ली की महफिल को एक बदन मान लिया जाये तो हम उज़्वे ज़ईफ है और कानून है कि नजला उज़्वे ज़ईफ पर गिरता है तो हम पर नज़ला गिर रहा है। खुदा ने नज़र वो दी कि फ़ैज़ी की फ़ारसी में कान निकाल लेते हैं और तकदीर वो दी कि मियां कतील जैसे लौंडे की शान में कसीदा लिखना पड़ता है। कोई पूछे कि इस किश्वरे हिंदोस्तान में बदनसीब कौन तो कहो गालिब'''"

पूरी महफिल में सन्नाटा था। बेगम ने शराब की बोतल सामने रख दी, "इसको सरफराज़ कीजिये।"

"और हां चुगताई बेगम ''पूरी दिल्ली में कौन माई का लाल है जो हमारी तरह डंके की चोट शराब पीता हो। सिपाही बच्चे ज़ौक और मियां मोमिन का ज़िक्र नहीं उस वाली-ए मुल्क का नाम बताइये जो दिल्ली में रहता हो और दिल्ली की भरी महफ़िल में हमारी तरह प्याला भरने की हिम्मत रखता हो। हरम में लौंडे पले हैं'''आह बेगम ये वह इल्लत है जिसने हिंदोस्तान से मुसलमानों की सल्तनत खत्म कर दी। हां तो हरम में लौंडे पले हैं, अस्तबल में औरतें बंधी हैं, घरों में शराब की भट्टियां कायम हैं, जागीरों पर अफीम और गांजे की फसलें बोयी जाती हैं।

1 अबू बक्र, उमर और उस्मान 2. बुरा-भला कहना, निंदा करना
3. रसूल अल्लाह 4 प्रार्थना, प्रशंसा

जिल्ले मुबहानी की नजर में बीवियां गुजारी जाती हैं। माहव बहादुर की दावतो में बेटियां पेश की जाती हैं। मब मब कुछ करते हैं और मब जानते हैं और सबके ईमान सलामत हैं। एक बदनसीब हम है कि घड़ी-भर की खुद फरामोशी के लिए अपने घर का दरवाजा बद कर एक प्याला हलक़ में उंडेल लें तो पापी भी हम काफ़िर भी हम···

"चुगताई बेगम तीन-तीन दिन तक हम अपनी डाक नही खोलते कि मालूम नही किस खत मे किमने हमको कितनी गालिया दी हों। वो बुड्ढे तोते जिनकी गर्दन मे सोने की तौक और परो पर चादी की तहरीरें है, हमारी इशा के एक सफे की सही करात[1] नही कर सकते। हमारी ग़जल की सतह को छू नहीं सकते वो हमे गालियां लिखते हैं और इतनी गदी कि अगर कौवे सुन लें तो कै कर दें।"

महफ़िल की तरफ निगाह उठायी, "अजीजो ··हमको अफसोस है कि तुम्हारी मौजूदगी मे हमारी जबान से वो कलमात निकले जो आम हालात में हरगिज़ निकल नही सकते थे लेकिन क्या करें हम भर चुके थे आज छलक गये। हम माजरतख्वाह[2] हैं।"

और उसने पेचवान की मेहनाल दातो मे दबाकर चुनगीर पर हाथ डाल दिया।

: "अल्लाह! मीरजा साहब आप तो पान पर पान खाये जा रहे हैं।"

"बेगम हमको आपकी दिल्ली के मेहरबानो ने पापी और काफ़िर बेशक कहा है लेकिन अभी तक किसी ने बेअदब नहीं कहा··· इन बच्चो के सामने बोतल से हाथ लगाना तहजीब ही की नहीं शराब की भी बेइज्जती है···"

और सफ़ों में बैठी हुई मूरतें जैसे हिलने लगी। उसके और बेगम के इसरार के बावजूद एक-एक मूरत ने दीवानख़ाना खाली कर दिया। लड़किया अपने-अपने ठिकानो पर चली गयी। कुछ साजिंदे जो गुफ्तगू के दौरान आ गये थे अपने-अपने साज लेकर इधर-उधर हो गये। चुगताई बेगम उसके और करीब हो गयी।

1. अक्षरों को सही उच्चारण के साथ बोलना 2 क्षमाप्रार्थी

"हम आपसे बहुत शर्मिंदा हैं मीरज़ा साहब···लेकिन आपका ये हर्फ़ भी हम को देखने का हक़ है···है ना ?"

"बेशक है···तो फिर अब जलाल को थूक दीजिये···बोतल खोलिये ···खोलिये ना···आपको हमारे सर की क़सम !"

यहां से वहां तक छाये हुए सन्नाटे में एक कलकल मीना की आवाज थी। सरीर-ए-कलम[1] और कलकल मीना के बाद चुगताई बेगम की आवाज थी जिसका वह आशिक था। फिर जैसे दूर से कहीं वही आवाज आने लगी। रोशनाई की एक लकीर-सी जगमगाने लगी और उसमें जड़े हुए मिसरों की बिजलियां तड़पने लगीं।

उसने आंखें खोलकर देखा, पर्दे पड़े थे। छत में सजे फ़ानूस चाद-तारों की तरह रोशन थे क़द्दे आदम आइनों से बेगम का जिस्म हिलकोरे ले रहा था। साज़ वहीं में पैदा होकर अपनी-अपनी जगह जम चुके थे। आहिस्ता-आहिस्ता देखते ही देखते रोशन होने लगे थे। लौ देने लगे थे। उसने गर्दन उठायी। बेगम उसके सामने उसके वुजूद से बेखबर अपने-आपसे बेगाना नाच रही थी मोरनी की तरह नाच रही थी···मोरनी···मोरनी के पांव मोरनी का दाग होते हैं और बेगम के पांव मोरनी के परों से ज्यादा क़ातिल। पाव तो चूम लेने क़ाबिल है। उसने तबले पर धड़कती उंगलियों की तरह थिरकते पैरों पर हाथ रख दिये। वे कसमसाने लगे। जैसे हाथों में सोने के कबूतर फड़फड़ा रहे हों। उसने दोनों कबूतरों पर अपनी आंखें रख दीं।

"इतना गुनहगार न कीजिये···मीरज़ा साहब !"

उस थरथराती हुई दहकती हुई मशकूक आवाज ने सुबकी ली। ज़रनिगार अतलस के नियामों में बंद सुनहरी शमशीरें उसकी गर्दन के गिर्द हिलने लगीं। सर उठा तो अपनी ही मस्ती से नीमबाज आंखों के लाल डोरे भरे हुए जाम की तरह चमक रहे थे। बाग़े इरम[2] के गुंचों की तरह होंट खिले। मिस्सी लगे दांतों की झलक दिखायी दी।

1. क़लम चलने की आवाज़ 2. कृत्रिम स्वर्ग जिसकी पुराकथाओं में जिसका ज़िक्र आता है

"यह क्या किया ?"

"मुफलिस और कल्लाश गालिब के पास तुम्हें नज़र कर देने को और था भी क्या ?"

"मीरज़ा साहब !"

"तुम वो क्लिओपेट्रा हो चुगताई बेगम जो किसी सीज़र को मयस्सर न आयी वो नूरजहां हो जो किसी जहांगीर का मुकद्दर न हुई। इस बरहना सिर की कसम, इन तनाज़[1] पैरों की हर गर्दिश की कसम हम सच सच कह रहे हैं।"

"लेकिन फन्ने शरीफ का बादशाह तो मिल गया···गालिब तो मिल गया · मिल गया न ?"

"गालिब तो एक दाग है जिसे तुमने अपने दामन पर कुबूल कर लिया। एक जख्म है जो तुम्हारी आस्तीन पर लग गया।···नहीं तुमने एक कागज़ के फूल को जिंदा कर दिया···तुमने मिट्टी के एक खिलौने में रूह फूंक दी। तुम जो कुछ हो ज़ुबान उसका ऐलान करने से कासिर है, आजिज है।"

फिर वह मंज़िल आ गयी जहां चलने के ख्याल से ज़ुबान में आबले पड़ने लगते हैं।

वह दिन भी कैसा अजीब दिन था जिसके तसव्वुर से दिल्ली हिल रही थी। मेरठ और मथुरा और आगरा में पड़ी हुई तमाम गोरी पलटनें तलब कर ली गयी थीं। जहानाबाद के दिल्ली दरवाजे से कश्मीरी दरवाज़े तक तमाम इलाका छावनी बन गया था। सड़क के दोनों तरफ अंग्रेज़ की हिंदोस्तानी फौज की दीवारों के पीछे अंग्रेज़ सवारों की दीवारें खड़ी थीं। बिगुल की आवाज़ के साथ ही जंगी घोड़ों पर सवार अंग्रेज़ी फ़ौजी हाथों में नंगी तलवारें लिये इस तरह नज़र आये जैसे दुश्मनों पर

1 चचल

चढ़ाई करने निकले हो। एक रईस को फांसी देने के लिए इतना बड़ा इंतज़ाम…दिल्ली वालों ने अंग्रेज़ की सैनिक शक्ति की इतनी बड़ी नुमाइश काहे को देखी होगी। फिर वह पालकी आ गयी जिसके पर्दे बंधे हुए थे और अंग्रेज़ी प्यादे कंधों पर उठाये चल रहे थे। नवाब शम्सुद्दीन मसनद से पुश्त लगाये बैठा था। सब्ज़ रेशमी पायजामे पर सब्ज़ ख़फ़्तान पहने था जिसके दामन और आस्तीनें और गिरेबान ज़री के काम से दमक रहे थे। सिर पर सब्ज़ ज़रदोज़ी की पगड़ी धरी थी। सुर्ख़-सफ़ेद हाथ चाकू से कसेरू छील रहे थे और नवाब खा रहा था। कहीं कोई ऐसी जगह न थी जहां आदमी न हों, औरतें न हों, बच्चे न हों। मस्जिदों के गुंबदो-मीनार और दरख़्तों की शाखें तक तमाशाइयों से भरी थीं। कश्मीरी दरवाज़े के मैदान में सूली लगी थी। दरवाज़े पर तोपें चढ़ी थीं। हज़ारों सवारों और प्यादों की बंदूकें भरी थीं और तलवारें नंगी थीं और हद्दे निगाह तक आदमी खड़ा था। पालकी रुकते ही फ़ौजी बाजे बजने लगे। उतरकर दो रकात[1] नमाज़ पढ़ी और चबूतरे पर चढ़कर फांसी का फंदा चूमा। और भंगी के हाथ से टोप छीनकर ख़ुद पहन लिया। फांसी लगते ही नवाब की लाश क़िबलारू हो गयी। अवाम ने इसे बेगुनाही की दलील जाना। और शहीद का लक़ब दे डाला। अल्लाहो अकबर की आवाज़ों से कश्मीरी दरवाज़ा हिलने लगा। मस्जिद-मस्जिद नमाज़े जनाज़ा पढ़ी गयी। कूचा-कूचा मुख़बिरों को बद्दुआएं दी गयीं। अहसासे मजबूरी ने पहले अंग्रेज़ के क़ातिल को हीरो बनाया फिर जब क़त्ल के जुर्म में फांसी हुई तो अपनी बेबसी को थपकियां देने के लिए शहादत का मरतबा कर दिया। लेकिन किसी नमकख़्वार के मुंह से आवाज़ न निकली। किसी जांनिसार की नकसीर तक न फूटी।

गलियों में गालियां बिछी थीं, दरवाज़ों पर गालियां खड़ी थीं, खिड़कियों से गालियां झांक रही थीं, दुकानों पर गालियां बिक रही थीं, हवादारों पर गालियां चढ़ रही थीं पालकियों से गालियां उतर रही थीं, जामा मस्जिद से उर्दू बाज़ार तक गालियों के खवे से खवे छिल रहे थे,

1. नमाज़ का भाग

महफ़िलों में गालियों की जुगालिया हो रही थीं, ड्योढ़ी पर डाकिये दस्तक देते और गालियो के दोने बाट कर चले जाते। गालियों की ऐसी गर्म बाजारी शायद ही किसी ने कभी देखी हो।

एक दिन वह दरवाजा बंद किये अशआर की सूरत मे अपने बेगुनाह जख्मों पर मरहम रख रहा था। गज़ल लिख रहा था कि सरकार कंपनी बहादुर का परवाना मिला और उसकी पेंशन का बकाया एकमुश्त मिल गया। उसने इंतहाई जरूरी और खतरनाक कर्जों की अदायगी की। कोतवाली के सिपाहियों के हाथो से हथकडियां छीनकर फेंकी। और उमराव बेगम के पास बैठकर मुद्दतों के भूखे-नंगे इकत्तीस दिनों के काले कोस बासठ रुपये के गज से नापता रहा।

उस दिन कितने दिनो बाद सुबह का नाश्ता आया था। बावर्चीखाने को पूरा गोश्त नसीब हुआ था। शराबो-गुलाब की बोतलें खनकी थीं। बादाम की आखें देखी थी। इतने दिनो बाद अपनी गिरह की बोतल खुली तो कैसी महक उठी थी! कैसा सुरूर आया था जैसे कुवारे होंटो में पहला प्याला उतरा हो। आदमियों और औरतों की निगाहें बाअदब हो गयी थीं और बदन चाक-चौबंद। पूरा घर जैसे नया-नया हो गया था। धोबी के यहां से आए हुए कपड़े तक कैसे नये-नये लग रहे थे। मौसम के फलों में जन्नत के बागो की खुशबू थी। बावर्चीखाने की तरफ से हवा का झोंका आता तो भूख चमकने लगती। उस रोज वह महल सराय मे बैठा दस्तरख्वान लगने का इंतज़ार कर रहा था। बेगम सामने बैठी पानदान सजा रही थी। जो वफ़ादार पानी का आफताबा लिए आ रही थी कि ड्योढ़ी से दारोगा की आवाज़ आयी और मिया घुम्मन की दुल्हन ने बादामी रंग का एक लबा-सा लिफाफा खोला। मौलाना फज़लहक खैराबादी ने गुलाबी बाग मे आमों की दावत मे शिरकत का हुक्म लिखा था। दूसरे दिन सुबह होते नहा-धोकर नाश्ते से फारिग हो मुई से टूटा जोड़ा पहनकर तैयार हो गया था और हुक्के के शग़ल में मौलाना की सवारी का इंतजार बहला रहा था कि मिया कल्लू ने हाथी के लगने की इत्तला दी। वह दो-चार घूंट लेकर खड़ा हो गया।

हाथी अभी मोरी दरवाज़े के सामने था कि बादलो ने आ लिया। चद

कदम बढ़े थे कि पानी शुरू हो गया। खिदमतगार ने छतरी तान ली। लेकिन इस तूफान के सामने छतरी क्या? बाग़ तक पहुंचते-पहुंचते शराबोर हो गया। हाथी से इस तरह उतरा जैसे दरिया से निकल रहा हो। गुलाबी बाग़—मालूम होता था कि लाल किले के वली अहद की सवारी उतरी हो या किसी वाली-ए-रियासत की छावनी पड़ी हो। इंतज़ाम का यह आलम कि तोशखाना[1] तक बरपा था। खेमे के अंदर पहुंचकर कपड़ों के बुकचे देखे। मेहमूदी का कुर्ता और मशरू का पायजामा पहनकर खास इमारत में दाखिल हुआ तो आंखें रोशन हो गयीं। मौलाना झुके हुए खड़े पेशवाई कर रहे थे। नवाब मुस्तफ़ा खां 'शेफ़्ता' ने मसनद से उठकर मुसाफ़हा किया। मुफ़्ती सदरुद्दीन 'आजुर्दा' उठने लगे तो उसने हाथ थाम लिये और उठने न दिया। राजा नाहरसिंह वाली रियासत बल्लबगढ़ न माने और उठकर बगलगीर भी हुए। हकीम आग़ा खां 'ऐश' भी नज़र के टीके की तरह जमे हुए थे। उनसे हाथ छुड़ाकर वह नवाब के पहलू में बैठ गया। चुनगीर पर हाथ बढ़ाया था कि एक तरफ से मुग़ल जान कई परियों को साथ में लिए निकल पड़ीं।

"मौलाना-ए-मुकर्रम आपके दोस्त हैं पूछ लीजिए कि जब दावतनामा मिला तो मैंने तसदीक करा ली थी कि मीरज़ा नोशा भी तुलू होंगे या नहीं और जब आपकी शिरकत मुकर्रर[2] हो गयी तब बंदी इंतज़ाम को उठी है।"

"मुग़ल जान अब अगर तुमने मज़ीद[3] शर्मिंदा किया तो मैं आग़ा खां के सामने ही चूम लूंगा—तुम्हारे हाथ।"

आगरे के चाक की उतरी हुई, दिल्ली की कमान पर चढ़ी हुई और किला-ए-मुबारक की खासुलखास महफ़िलों की कढ़ी हुई मुग़ल जान चुटकी से आंचल की ओट बनाकर मुस्कराई। इससे पहले कि बाण छोड़ें नवाब दग गये,

"ये मीरज़ा नोशा तुमने एक ही फ़िकरे की गिरह में आग़ा खां और

1. युद्ध की आवश्यक सामग्री का विभाग 2. निश्चित 3. अतिशय

मुग़ल जान और चूम लूगा क्योंकर बाध दिया···।"

"हुजूर उकव[1] में हाथ भी दे रखा है।"

"उकव का जवाब नहीं।'

मौलाना हंस पड़े। मुफ्ती साहब मुस्कुरा दिये। मुगल जान शरमा गयी और हकीम जी भी अपनी गभीरता को ज्यादा वक़्त तक कायम न रख सके और महफिल बेतकल्लुफ हो गयी।

बाग़ के बीचों-बीच खुशबूदार दरख्तों के नीचे सुर्ख बानात का बड़ा-सा नमगीरा लगा था। नीचे सगमरमर की तिपाइयों पर सब बैठे थे। कलईदार लगनो के बर्फ़ से ठंडे पानी मे मेहताब बाग से कुतब की अमराइयों से लेकर मंडी तक के चुने हुए आम भीग रहे थे और पानी का गुबार-सा बरस रहा था कि नवाब तजम्मुल हुसैन खां आ गये। खादिम के हाथ में सधा हुआ छत्र माया किये हुए था और वह आहिस्ता-आहिस्ता क़दम रख रहे थे। नमगीरे मे सब उनके स्वागत को खड़े थे। उनके बैठते ही मुगल जान बरामद हुई नवाब को मुजरा किया और चाकू पेश किया।

"आपकी मौजूदगी मे भी चाकू की जरूरत है?"

नवाब के फिकरे पर मुगल जान समेत सब मुस्कुरा दिये। हाथ अपनी-अपनी पसंद के आम लगन-लगन से निकाल रहे थे और चाकू चल रहे थे कि हकीम जी नवाब के हाथ मे आम और चाकू लेकर खुद छीलने लगे। सब ने कनखियों से देखा लेकिन चुप रहे। सामने दूसरे नमगीरे के नीचे भीगा हुआ लहंगा और चोली पहने एक लड़की नाच रही थी। जब नवाब का दूसरा आम भी हकीम जी छीलने लगे तो मौलाना फ़ज़ल हक बोले,

"हकीम साहब क्या आप एक आम भी नहीं खायेंगे?"

हकीम ने चाकू रोककर बहुत जमा-जमा कर कहा,

"जी हां ··मौलाना आप जानते है मैं आम नहीं खाता और मैं क्या आम तो गधा तक नहीं खाता।"

"जी हां···हकीम जी गधा आम नहीं खाता!"

1. साथ

और कहकहों की बारिश में हकीम जी भीग गये। हकीम आगा खां 'ऐश' आम छीलते रहे। नवाब तजम्मुल हुसैन खां खाते रहे और चाकू चलाते-चलाते वह गुनगुनाने लगा। मुगल जान ने इठलाकर कहा।

"क्या प्यारी तर्ज है मीरजा नोशा हमें भी सुनाइये क्या गुनगुना रहे हैं ?"

"सुन चुकी हैं आप ! पुरानी गजल है। उसी का मिसरा जुबान पर आ गया।"

सब मुतवज्जा हो गये तो उसने पढा—

'बना है ऐश तजम्मुल हुसैन खा के लिए'

सब हकीम आगा खा 'ऐश' को देख रहे थे। मुस्कुरा रहे थे। मुगल जान ने मचल कर कहा,

"हक तो यह कि इस शे'र के सही मानी आज समझ में आये।"

"बजा है, दुरस्त है।"

सब कहते रहे और हकीम आगा खा 'ऐश' गर्दन हिलाते रहे लेकिन आम छीलते रहे नवाब 'शेफ्ता' ने हकीम जी के मिजाज का जायका बदलने के लिए मुगल जान से कहा,

"भई मुगल जान बहुत दिनों बाद नसीब हुई हो !"

"ऐ नवाब साहब क्या फरमा रहे हैं मेरी जैसी हजारों मुगल आप पर कुर्बान !"

"कोई अच्छी-सी गजल सुनाओ।"

'जो हुक्म !"

मुगल जान के हाथ का इशारा होते ही दूसरे नमगीरे की लडकियों ने साज उठाकर अपनी जगह सभाल ली और मुगल जान घुघरू बांधकर खड़ी हो गयी तो जैसे बदन गयी। साज की आवाजों की संगत में तान ली तो जमीन से उठ गयी। मतला छेड़ा—

दहर में नक्शे वफा वजह तसल्ली न हुआ
है यह वह लफ्ज जो शर्मिदा-ए-मानी न हुआ

इतनी उस्तादी से और इतनी तरहों से बना-बनाकर गाया कि खुद उसे महसूस होने लगा कि मुगल जान किसी दूसरे की गजल का मतला

सुना रही हैं। गज़ल तमाम हुई तो हकीम जी डकारे,

"भई मुगल जान क्या पारे का बदन और नूर का गला पाया है। यह सब अपनी जगह पर लेकिन नवाब ने अच्छी ग़ज़ल सुनाने को कहा था यह तुम क्या लेकर बैठ गयी।"

"हां मुगल जान ऐसी मुश्किल चीज़ों से हकीम जी के सर में दर्द होने लगता है। कोई ऐसी अच्छी ग़ज़ल सुनाओ कि इधर तुम्हारे मुंह से पहला मिसरा निकला और सिपाही-प्यादो ने दूसरा मिसरा खुद पढ़ दिया। एक-एक शे'र बिल्कुल धुला हुआ पिलपिले आम की तरह कि इधर आवाज़ की मुरकी ने डड़का तोड़ा और उधर मानी का रस फल से बहा।"

इसके पहले कि बात बढ़े समझदार मुगल जान ने 'शेफ़्ता' की गज़ल शुरू कर दी और अपनी आवाज़ के सैलाब में सारी कुदरतें बहा ले गयी।

शाम के वक़्त पानी की झड़ी लगी थी। महकते हुए पकवानों के तबाक आ रहे थे। शर्बतों के कटोरे चल रहे थे। मलाई की कुफ़लियां खुल रही थी। सब अपनी-अपनी पसंद की चीजें चुन रहे थे। लतीफे हो रहे थे। मज़े-मज़े की हिकायतें सुनाई जा रही थी लेकिन हकीम जी हर तरफ से आंखें बंद किये बुझे-बुझे से हुक्का गुड़गुड़ाये जा रहे थे कि मुफ्ती-सदरुद्दीन 'आजुर्दा' ने चुटकी ली,

"भई हकीम साहब कुछ मुंह से बोलिये कुछ सिर से खेलिये आपने तो चुप का रोज़ा रख लिया है।"

"चुप का रोज़ा कहां हुजूर पूरे रमज़ान का रोज़ा रखे हुए हैं।" मौलाना फज़ल हक़ ने ठेला।

"अब हम हकीम साहब के मुंह से हिकायत सुनेंगे। मुगल जान कहां है?" नवाब तजम्मुल हुसैन खां गरजे।

"जी हाज़िर हुई नवाब साहब।"

"बहुत हो चुके पकवान···आइये हकीम जी कुछ सुनाने जा रहे हैं।"

"ज़हे नसीब···ज़हे नसीब बंदी तो सर से पांव तक समाअत ही समाअत है।"

इसरार और मज़ीद इसरार के बाद हकीम जी ने मुंह से मेहनाल निकाली, तकिये से उभरे और बड़े ठस्से में शुरू हुए: "हज़रत मेहमूद

आज़म रहमते उल्लाह अलेह का ज़माना था · "
"यह कौन बुजुर्ग है तारीफ कराते चलिये।"
"वल्लाह मीरजा गालिब तुम मेहमूद को नहीं जानते ?"
"जानता हूँ···मेहमूद जर्गी को जानता हूँ···मेहमूद खरासानी को जानता हूँ·· अपनी दिल्ली के हकीम मेहमूद खां तक को जानता हूँ ··"
"और नहीं जानते तो मेहमूद गजनवी रहमते उल्लाह अलेह को नहीं जानते।"
"मेहमूद गजनवी को खूब जानता हूँ लेकिन यह जो आपने रहमते उल्लाह अलेह का पगड़ बांधकर आज़म का पुछल्ला लगा दिया इसने गड़बड़ा दिया।"
"मीरजा साहब क्या मेहमूद गजनवी को मेहमूद आज़म रहमते उल्लाह अलेह नहीं कह सकते ?"
"नहीं कह सकते ?"
"मैं पूछता हूँ क्यों नहीं कह सकते ?"
"इसलिए कि मेहमूद एक लुटेरा था···बहुत बड़ा लुटेरा था लेकिन था लुटेरा।"
"क्या आप सजीदगी से गुफ्तगू कर रहे हैं मीरजा साहब !"
"मैं आपकी बात सजीदगी से सुनता नहीं हूँ लेकिन कहता हमेशा सजीदगी से ही हूँ और इस वक्त तो मैं कलाम पाक पर हाथ रखकर कह रहा हूँ कि मेहमूद गजनवी लुटेरा था···"
पूरी महफिल सभल कर बैठ गयी। हकीम साहब ने घुटने से सटक की नै उठाकर फेंक दी और गरज कर बोले,
"ज़रा साबित करके दिखाइये।"
"अजी हकीम साहब वह सतरह मरतबा हिंदोस्तान लूटकर चला गया और आपकी नज़र में लुटेरा साबित नहीं हुआ तो मैं बेचारा किस तरह साबित करके दिखा सकता हूँ ?"
"जो उसने सतरह मरतबा हिंदोस्तान फतह करके छोड़ दिया।"
"फतह करने वाले मुल्क छोड़कर भाग नहीं जाते, सल्तनतें कायम करते हैं, शाही खानदानों की बुनियादें रख देते हैं, नाम गिनवाऊं ?"

: "अच्छा छोड़िये यह वहम। आप उनको बहादुर मानते हैं?"

"बहादुर वह भी होता है जो शेरों को निहत्था मार देता है, बहादुर वह भी होता है जो तारीख के तूफान के सामने सद्दे सिकंदरी[1] बनकर खड़ा हो जाता है। इन मानों में मेहमूद बहादुर भी नहीं था। जिस ज़माने में मेहमूद ने नाम कमाया वस्त एशिया[2] में वह ऐसा ही ज़माना था जैसे हिंदोस्तान में शाह आलम वग़ैरह का ज़माना था। मेहमूद चमक गया। लेकिन राणा प्रताप से क्या मुकाबिला जिसने मुग़लों के मुग़ले-आज़म से टक्कर ली। मरते मर गया लेकिन सिर को झुकने न दिया और मुग़ल सैलाब को अपने भाले की नोक पर रख दिया। मेहमूद का शिवाजी से भी कोई मुकाबिला नहीं जिसने उस शहंशाह के मुंह पर तलवार खींच ली जिसकी सल्तनत कश्मीर से रास कुमारी तक और कंधार से रंगून तक फैली हुई थी। शिवाजी मरा नहीं बल्कि मरहटा-शाही की, जिसको आप मरहटा गर्दी कहते हैं, बुनियाद रख दी। और तो और मैं तो मेहमूद को राजा सूरज मल से भी छोटा आदमी समझता हूं।"

"भई कमाल है मीरज़ा साहब!"

"जी हां। कमाल ही है हकीम साहब! मेहमूद ने सोमनाथ फ़तह किया। एक दुनिया ने गुज़ारिश की लेकिन मेहमूद ने उस बुत को जो मंदिर की जान था तोड़ कर फेंक दिया। राजा सूरज मल ने आगरा फ़तह किया। किले में घोड़े बांध दिये। ताजमहल में भूसा भरवा दिया। चाहता तो पूरा ताजमहल खोदकर भरतपुर उठा ले जाता लेकिन अपने जौक जमाल[3] से मजबूर होकर, अपनी बड़ाई के आगे झुक कर ताजमहल के एक पत्थर को भी नुकसान नहीं पहुंचाया तो हकीम साहब तारीख़ को तारीख़ की तरह पढ़ा कीजिये कि इल्म न हिंदू होता है न मुसलमान। सिर्फ़ होता है!"

देर तक सन्नाटा रहा। 'दोपना' तक गर्दन हिलाते रहे फिर सोचती हुई आवाज़ में बोले,

1 सिकन्दर बादशाह की बनायी हुई मज़बूत दीवार 2. मध्य एशिया
3. सौंदर्याभिरुचि

"ग़ालिब की बात कड़वी है लेकिन सच्ची है…हकीम साहब इसको हंसकर टाला नही जा सकता।"

मौलाना फज़ल हक़ और मुफ़्ती सदरुद्दीन अपने-अपने पेचवान कड़कड़ाते रहे और उसके उठाये हुए सवालों के भूतों से लड़ते रहे मुग़ल जान तक सोच के मर्ज में मुब्तिला थी कि सदियो के बुतो को टूटते देखना आसान नहीं होता। सूरज डूबते-डूबते सवारियां लगने लगीं। नवाब तजम्मुल हुसैन खां ने उसका हाथ पकड़ा और अपने पास बिठा लिया। थोड़ी दूर चलकर बोले।

"मीरज़ा ज़िंदगी एक बार मिलती है…इस बार मिली हुई ज़िंदगी को ख़ूबसूरती से गुज़ारने के लिए सिर्फ साहबे कलाम होना ही ज़रूरी नहीं है। ज़रूरी यह है कि आदमी में थोड़ी-सी मसलेहत और थोड़ी-सी दूरदेशी हो। थोड़ी सी ख़ामोशी हो तो थोड़ी सी चर्ब ज़बानी[1] भी हो। मसलेहत से तुम्हारी लड़ाई और दूरदेशी से अदावत है। जहां ख़ामोश रहना चाहिए वहां दरिया बहा देते हो जहां बोलना चाहिए वहां सुकूत अख़्तियार कर लेते हो। मीर तुमसे बड़ा नही तो तुम्हारे बराबर का शाइर ज़रूर था वह तक कहता है—

पगड़ी अपनी संभालियेगा 'मीर'
और बस्ती नहीं ये दिल्ली है

पूरी दिल्ली में तुम्हारे कितने दोस्त हैं? मैं बतला दूं! एक सिर्फ एक! आधा मैं, आधा इसलिए कि दिल्ली में रहता नही आधी चुगताई बेगम। आधी इसलिए कि औरत है और शरीअत में औरत की गवाही आधी होती है। ज़्यादातर लोग तुम्हारे दुश्मन हैं। कमतर न दोस्त है, न दुश्मन। वह भी उस वक्त तक जब तक कसौटी पर कसे नहीं जाते। जिस दिन इसकी नौबत आ गयी वह दुश्मनों की तरफ ढलक जायेंगे। तुम हकीम आग़ा ख़ां को मामूली-सा शाइर जानते हो वह लाल किला का मुसाहिब है। तुम यह जानते हो कि मीरज़ा जहांगीर का इंतकाल हो गया और अकबर शाह किसी कीमत ज़फ़र को बादशाह नहीं बनाना चाहते लेकिन तुम यह

1 चापलूसी

नही जानते कि कंपनी बहादुर ज़फ़र ही को बादशाह बनायेगी और इसलिए बनायेगी कि अकबर शाह नहीं बनाना चाहते और ज़फ़र जिस दिन बादशाह हुए और वह दिन बहुत दूर नही है कि अकबर शाह बीमार हैं और कंपनी बहादुर ज़फ़र के हक में फ़ैसला कर चुकी।"

"वाक़ई !"

"हम किले से गुलाबी बाग़ पहुचे थे। हमारे मुख़बिरों का कहना है कि हफ्ता अशरा[1] भी गुज़रने वाला नही है तो उस दिन, जिस दिन, ज़फ़र बादशाह हुए हकीम आगा खा 'ऐश' उनकी नाक का बाल हो जायेंगे और बहरहाल दिल्ली का बादशाह बादशाह होता है···तुमसे यह सब कुछ कौन कहेगा और क्यों कहेगा ? लेकिन चूकि हमको तुमसे एक ख़ास किस्म का ताल्लुक ख़ातिर है इसलिए हमने तुमसे इतना कह दिया वरना सच यह है कि हम को—तजम्मुल हुसैन खा को भी तुमसे कुछ कहते डर लगता है।"

"आप क्या फरमा रहे हैं नवाब साहब !"

"इसलिए नही कि तुम हमको कोल्हू में पिलवा दोगे बल्कि इसलिए कि हम तुम्हें कही खो न दें और इस उम्र मे नये दोस्त खोजे नही जाते, पुराने दोस्त खोये नहीं जाते···लीजिये आपकी महलसराय आ गयी। हमने जो कुछ अर्ज किया है उस पर ग़ौर कीजियेगा लेकिन घबराने की भी जरूरत नही है। तुम्हारे लिए फ़र्रुखाबाद दिल्ली का एक मोहल्ला है और दिल्ली फ़र्रुखाबाद का दारुल हुकूमत···अच्छा खुदा हाफ़िज़ !"

फिर वह रात भी आ गयी जिसके अंदेशे से रातें बेक़रार थी और दिन बेचैन। अभी दोपहर रात बाक़ी थी कि किला-ए-मुबारक के दोनों दरवाज़ों से तोपें चलने लगी। जो अकबर शाह सानी की मौत का ऐलान नही कर रही थी ज़फर शाह को तख़्तनशीनी की मुबारक बाद दे रही थी। क़िले में रोशनी का वह तूफान बरपा हुआ कि आधा शहर उसके परतो[2] से चमक गया। कोई एक मकान ऐसा न था जिसके मकीन[3] दरवाज़े के बाहर और छत के ऊपर न आ गये हों। क़िले की एक-एक

1. आशूरा मोहर्रम की दसवीं तारीख 2. तेज 3. मकान में रहने वाले

बात देहली दरवाजे से निकलती कोठों पर चढ़ती मुंतज़र कानों तक पहुंच जाती। बड़े-बड़े नाज़ुक मिजाज अमीर जो हवादार पर कदम रखते तकल्लुफ करते अपने हाथों में घोड़ों पर चारजामा फेंक रकाब में पांव डालते ही कड़कड़ा देते और आनन-फानन वापस आकर वह सब कुछ सुना देते जिसे बड़े-बड़े खबरदार सुनकर दंग रह जाते। अभी फ़ज्र की नमाज नहीं हुई थी लेकिन शाहजहानी मस्जिद की सीढ़ियां तक नमाज़ियों से भर गयी थीं फिर ख़तीब[1] ने अबू ज़फर सिराजुद्दीन मोहम्मद बहादुर शाह सानी का खुत्बा[2] पढ़ दिया। वह हवादार में बैठा था कि चुग़ताई बेगम की याद ने टहूका दिया।

लाल महल का दरवाजा बंद था खिड़की खुली हुई थी। दरबानों ने उसे देखकर सतर्कता बरती। थोड़ी-सी पूछ-पाछ के बाद अंदर जाने दिया। अभी उसने दीवानखाने में बैठकर तकिये से पीठ लगायी थी कि रात के मले-दले कपड़ों में चुग़ताई बेगम आ गयी। उनींदी आंखों पर से ज़ुल्फें हटायीं मुस्कुरायीं और चहकीं,

"तो आखिर आज हमारी रात की भी सहर हो ही गयी। एक बात पूछूं बतलाइयेगा?" और उसके पास आकर धप से बैठ गयीं।

"पूछ देखिये—शायद बतला ही देने में भला हो।"

"यह आप इतने लंबे-लंबे गोते कैसे लगा लेते हैं हमारा बस चलता तो हम इतने दिनों में कितनी ही बार आपकी ड्योढ़ी पर उतर चुके होते।"

"बस चलने ही की तो बात है बेगम वरना हम तो तुम्हें कलेजे में छुपाकर कहीं रूपोश हो चुके होते।"

"सच कहते हो?"

"यह तो नहीं कहता कि झूठ नहीं बोलता···बोलता हूं लेकिन कम बोलता हूं और तुमसे शायद नहीं बोलता।"

बेगम ने ताली बजायी। एक लड़की ने पर्दा उठाकर मुंह दिखाया।

1 खुत्बा पढ़ने वाला 2 वह तहरीर जिसमें बादशाह का नाम होता है और जो उसके शासक होने का प्रमाण होती है

बेगम ने हाथ से इशारा करके कहा,

"मनोवर से कहो हम यहा बैठे हैं।"

"नवाब फर्रुखाबाद के आने की कोई खबर है।"

"खबर तो कोई नही उम्मीद पूरी है खबरदारो ने रात ही मे कबूतर उड़ा दिये होंगे। आंधी-तूफान की तरह आये तो भी परसो तक पहुच पायेंगे। आयेंगे मुकर्रर कि नये बादशाह से बना कर रखना है।"

उसने चुगताई बेगम की तरफ झुक कर पूछा, "कोई खास खबर है?"

"खास खबर नही है, खास खबरें हैं। कबूतरो की टुकडियो की तरह उतर रही हैं, उतरे जा रही हैं।"

"यानी ?"

"वही पुरानी लकीर पिट रही है। परसों अकबर शाह सानी की तबीयत बिगड़ी और परसो ही मे पैगाम आने शुरू हो गये। कल शाम खानुम तलब कर ली गयी। उसी वक्त से कासिदों का ताता लगा है। फ़ला देहात का बैनामा लिखवा लो। फला हवेली खरीद लो, फला महल मे उतर पडो कुछ करो निकाह पढ़ा लो।"

"तुमने क्या जवाब दिया ?"

"जवाब देने को है क्या ? उनके पास एक सवाल है, हमारे पास एक जवाब है।"

"एक बार और सोच लीजिये।"

"आपके ख्याल से भी मजीद सोचने की ताकत नही रही।"

पर्दे के पास एक औरत को देखकर बेगम ने हाथ पकड़ लिया। खड़ी हो गयी और हुक्म दिया।

"हवादार को पाच रुपये देकर रुख्सत कर दो।"

"अपने कमरे की चिलमन उठाकर खवास को हुक्म दिया कि तबरीद यहीं लगा दे। उदकचे के नीचे जर्द चमड़े का दस्तरख्वान बिछा और नेमतें चुन दी गयीं।

"आप अपना हवादार बंद कर दीजिये।"

"थोड़े दिनों पहले तक नाश्ता बंद, गोश्त आधा और शराब हराम

थी लेकिन हवादार खड़ा रहा कि पूरे घर की वीरानी में यही तो एक हरि-यावी है जो दिल्ली के अदना लोगों और हम में ज़रा से फ़र्क़ को बाक़ी रखे हुए है।"

"मैंने यह सोचकर जसारत की कि दो सवारियां तो नवाब की खड़ी मूसा करती हैं। दो-एक हमारे पास भी हैं और सवार होने वाले आप अकेले ' नवाब महीनों में आये तो सवार तो एक ही आध बार हुए। इस-लिए मुंह से निकाल दिया।"

"तुमने सच कहा'''लेकिन अभी पड़ा रहने दो।"

नाश्ते का दस्तरख़्वान उठा तो बेगम ने शतरंज बिछा दी।

"तो आज आप नूरजहानी करने पर तुली हुई हैं। कीजिये लेकिन मेरा हश्र शेर अफ़ग़ान का-सा मालूम होता है।"

"ख़ुदा न करे'''नूरजहानी कैसी मीरज़ा साहब अम्मा ने बड़े चाव से सिखलायी थी कि शाहज़ादियों का खेल है तो कभी-कभी ख़ानुम को बिठाकर दिल अटका लेती हूं। आज जी चाहा कि आप से एक मात खा लूं।"

"बेगम'''ख़ुदा की क़ुदरत देखो लकड़ी की बिसात पर नाम का बादशाह रखा है मुर्दा बेजान'''लेकिन हम दोनों सारे-समूचे ज़िंदा इंसान इसकी हिफ़ाज़त के लिए दिमाग़ की चूलें हिलाये हुए हैं। बादशाह और पैदल में फ़र्क़ होता है बेगम।"

"फ़र्क़ तो बादशाह और वज़ीर में भी होता है।"

"हां, वज़ीर की भी सारी चलत-फिरत बादशाह की ज़ात तक है। बहुत दिनों की बात है अकबर शाह सानी मरहूम ख़ास क़िले से ईद-गाह के लिए दोगाना पढ़ने के लिए निकले। तेलीवाड़े के पास से सवारी गुज़र रही थी कि कुछ बदमाशों ने यूं ही शरारतन दो-चार कंकरियां फेंक दीं। अकबर शाह को हरचंद तस्लीम लेकिन इसमें दो राय नहीं कि नेक आदमी था। लेकिन बादशाह था। बिगड़ गया। क़िले के कप्तान को हुक्म दिया कि तोपख़ाना लेकर हाज़िर हो और पूरे मोहल्ले का मोहल्ला ज़मीन के बराबर कर दे। हम लोगों ने भी सुना। जब नमाज़ पढ़कर वापस हुए तो हंगामा बरपा था। दर्जनों तोपें घोड़ों से खिंची चली आ

रही हैं। अंग्रेज सवार भरी हुई बंदूकें छतियाये मोहल्ले को घेर रहे हैं और तोपों के रुख मुतय्यन[1] हो रहे हैं जब बादशाह की सवारी करीब आयी तो बूढ़ी औरतें दूध-पीते बच्चों को गोद में लेकर हाथी के पैरों में गिर पड़ीं। देर के बाद खता बख्शी हुई और तोपखाने की वापसी का हुक्म मिला।"

"अच्छा दास्तान गो साहब लीजिये मात।"

"मात खाये तो मुद्दत हो चुकी अब तो आपकी चाल देखने को आंखें जिंदा हैं।

"ऐ बेगम क्या मैं अंदर आ जाऊं ?"

"आइये खानुम जी आइये।"

उससे आंख मिलते ही खानुम के चेहरे पर एक साया-सा आ गया। जिसे तस्लीम के लिए झुककर छुपा लिया, "ऐ लो यहां भी बिसात बिछी है। मैं तो किले से जिच होकर भागी थी।"

"खैरियत तो है ?"

"फर्रुखाबाद सवार जा चुका है नवाब को लेने कि बादशाह सलामत उन्हें फ़र्ज़ी बनाने पर तुले बैठे हैं।"

फ़र्ज़ी हर चाल चलता है खानुम जी लेकिन ढाई घर का जवाब उसके पास भी नहीं होता।"

और बेगम ने उसकी तरफ खास अंदाज में देखा और खानुम अपने पायचे समेटकर चलने को हुई।

"दस्तरख्वान बिछाऊं ?"

"क्या तोरे बांधकर लायी हो।"

"लायी तो हूं बेगम और असल खबर से पूरे सात अदद बांधकर लायी हूं। दालान भरा पड़ा है।"

"ऐ तो ये इतने लादकर लाने की जरूरत क्या थी ?"

"ऐ बेगम खुदा से डरो... मैं मायुदनी[2] बादशाह से इंकार करती। फिर दिल्ली में कितने घर हैं जहां पांच भी उतरे हों। बड़ी-बड़ी बारगाहों

1. नियत 2. घमायी

तक को पास मे एक बेश नसीब नहीं हुआ।"

फिर चिलवन उठाकर बोली, "बाहर आयेंगी तो एक बात कहूंगी।"

बेगम ने उसकी तरफ देखा। उसने बेगम को उठा दिया। देर के बाद वापस आयी तो सामने के बजाय पहलू मे बैठ गयी। बेनियाजी के पूरे एहतिमाम मे बोली,

"हमारे महल पर मुखबिर बिठा दिये हैं कि आने-जाने वालो का चेहरा लिखते रहे।"

"खानुम जी की खबर है ?"

"नहीं शहादते ऐनी[1] है। खानुम पहचानती हैं। खुद देखकर आयी हैं।"

"फिर ?"

"फिर क्या ? फिर ऐरे-गैरे से निजात मिली। अल्लाह-अल्लाह खैर सल्ला। मजे मे बैठे लिखते रहो। अपना मुह और कागज काला करते रहो।"

"ये तो पेच पड़े जा रहे हैं बेगम।"

"बादशाह से पजा है तो क्या इतना भी न होगा ?"

दस्तरख्वान से उठकर कुतुबखाने मे चला आया। पसंदीदा किताबें तक दिल बहला न सकी। गाव पर सिर रखकर छत के नक्शो-निगार देखता रहा। मालूम नहीं कब सो गया। आख खुली तो कुतुबखाना रोशनियों से जगमगा रहा था। और सिरहाने तकिये रखे थे। वह सदर दालान के सामने से गुजर रहा था कि एक दर मे खानुम निकलकर खड़ी हो गयी। बाहरी बड़े कमरे से साज़ मिलाने की आवाजें आ रही थी।

"बेगम ख्वाबगाह मे इतजार कर रही हैं।"

पर्दा उठा तो जैसे आखें खीरा हो गयी। वह सदली पर बैठी चांदी का पानदान खोले पान बना रही थी। बाजूबद के बसनी के मोती हिल रहे थे। वह घाघरे-चोली मे सिर से पाव तक जेवरात मे गर्क थी। पान देने के लिए बढ़ाया तो हथफूल के नौ रत्नों मे निगाह उलझकर रह गयी।

1 प्रत्यक्षदर्शी

"आप तो इस तरह देख रहे हैं जैसे पहली बार देख रहे हों।"

"सूरज रोज निकलता है तो नया मालूम होता है और सच तो यह है कि हमने अभी देखा ही नहीं।"

"अल्लाह मीरजा साहब आप तो जूतियों समेत आंखों में घुस जाते हैं। इतनी उम्र आ गयी आपकी नियाजमंदी में और आपने अभी तक देखा भी नहीं।"

"हां बेगम सच कहते हैं। दोपहर की धूप में भी जिसने देख लिया वह समझता है कि ताजमहल देख लिया। लेकिन ताजमहल उसने देखा जिसने भरी चांदनी में ताजमहल के बदलते रंग देखे हैं। हमने तुम्हें देखा है लेकिन हमने तुमको कहां देखा है?"

वह पहलू में बैठ गया। और उसके बरहना बाजू पर रुखसार[1] रख दिया,

"आज बेगम से एक चीज मांगने को जी चाहता है?"

"मांगिये।"

"दे दीजियेगा?"

"लाल किले के अलावा आप जो चाहें मांग लें।"

"लाल किला?"

"हां आप कहीं मांग बैठें कि मैं बादशाह से शादी करके लाल किले की महफ़िलें आपकी गोद में डाल दूं तो।"

"बेगम आप इतना गया-गुजरा समझती हैं हमको।"

"नहीं...अपने आपको इतना मजबूर समझती हूं आपके सामने।"

"मालूम नहीं तक़दीर कौन-सी करवट ले। हम आपसे महरूम हो जायें। तो महरूमी की स्याह रातों के लिए एक कंदील दीजिये।"

आपने तो अपने कसीदे की तशबीब[2] नस्र में सुना दी। मैं कुछ समझ नहीं पायी।"

"बुजुर्गों से सुना है कि जब रंगीले शाह ने लालकुंवर का रक्से मुलतानी देखा तो बेहाल हो गया और उसी रक्स की खातिर उसने लालकुंवर

1 कपोल 2. भूमिका

से शादी कर ली वरना किले की कितनी ही लौंडियां लालकुंवर से अफ़-ज़ल[1] थीं जब से आपको देखा है इसी आरज़ू में सुलग रहे कि ज़िंदगी में एक बार सिर्फ़ एक बार आपसे रक़्स मुलतानी माग देखें शायद नसीब हो जाये।"

बेगम सुन्न होकर रह गयी। खामोशी कांटे पर तुली हुई थी। कितनी ही देर के बाद बेगम ने सिर उठाया तो चेहरा पत्थर था।

"आपको याद होगा हमने आपसे कहा था हम आपका ऐसा रक़्स देखना चाहते हैं जैसा किसी शाहज़ादे और किसी नवाब ने कभी न देखा हो।"

बेगम उठी और सोचते कदमों से बाहर चली गयी। थोड़ी देर बाद एक कनीज़ गज़क का तबाक़ और शराब की बोतल रखकर हट गयी। वह पांचवां प्याला ढाल रहा था कि एक लड़की पर्दा हटाकर खड़ी हो हो गयी। उसने निगाह उठायी,

"बेगम साहब आपको याद कर रही हैं।"

एक सास में प्याला खाली करके डाल दिया और उठ पड़ा। पाईं बाग़ के पहलू में बने दो दरों के इकहरे दालान में तीन कनीज़ें साज लिये बैठी थीं। सेहनची पर भारी-भारी पर्दा पड़ा था। पर्दा उठा तो सारे हिजाब उठ चुके थे। सारे नकाब गिर चुके थे। कद्दे आदम शोला बदन पर किसी लिबास या कोई फ़ानूस न था। सुर्ख़ रंग ने बदन पर एक ख़्याली पोशाक डाल दी थी। और बर्गे अंजीर[2] बांध दिया था। रंग के अलावा पूरे जिस्म पर अगर कुछ था तो घुंघरू जो उसकी निगाह के स्पर्श से झुन-झुनाने लगे। झनकने लगे और साज़ की संगत में उड़ने लगे। ऊपर उठते तो आसमानों को चीर कर देते, नीचे गिरते तो ज़मीन के जिगर तक तैर जाते। वह जहां खड़ा था खड़ा रह गया। अपनी नज़र और समझ पर भी विश्वास नहीं रह गया था। उस राग के सुरों के सिवा जो कुछ भी था हेच था। उस छवि के अलावा जो कुछ था व्यर्थ था। अब तक की पूरी ज़िंदगी का हर ऐश दीदो-मदा की उसकी कसौटी पर झूठ था, कलंक था,

1. श्रेष्ठ 2. अंजीर का पत्ता

इल्हाम था। मुट्ठी भर खनकते दमकते लम्हे उन्हें वह खज़ाना-ए-नूर थे जिसके एक तार का नाम अज़ल[1] था और दूसरे का अब्द[2]···

हवास टूटककर बिखर जाते औसाव मफ़लूज[3] होकर रह जाते अगर वह थम न जायें अगर वह रुक न जायें। उसने दोनों कलाइयां थाम ली अपने होंट रखे तो यकीन आया वह अभी जिंदा है और शायद ही कभी ज़िंदगी इतनी हकीर मालूम हुई हो।

दस्तरख्वान लगने की इत्तला की तकरार से वह नाच के सम्मोहन से बाहर निकला जैसे आदम खुल्द से निकले थे। बेगम के पहलू में बैठते-बैठते जैसे किसी ने इमला बोल दिया, "बेगम मक्ता नज़र है।"

"मक्ता ?"

"हां मतला बेमहल है···सुनो —

हां गालिब खिलवत नशीं बीम चुना ऐश चुनी .

जासूसे सुल्ता दरकमी मतलूब सुल्तां दर बगल···"

(ऐ एकात मे बैठे हुए गालिब ऐसा भय और आनद कि बादशाह का जासूस तेरी घात मे और बादशाह का माशूक तेरी बगल मे !)

बेगम ने हुक्के से हाथ खीच लिया। बोली, "एक बार फिर पढ़िये।"

उसने फिर पढ़ा। वह बार-बार पढवाती रही और वह पढता रहा।

फिर नवाब फ़र्रुखाबाद की सिफारिश पर शाही चोबदार ने बादशाह के हुज़ूर में कसीदा पढने की खुशखबरी दी। ज़ौक के शागिर्द बादशाह के दरबार में शे'र पढने की इजाज़त दी। हां, वह भी क्या वक़्त था! क़िले के लिए सवार होते-होते जैसे इल्का[4] हुआ कि देहली मरहूम का जवाब भी तारीखे आलम मे बेमिसाल है। हज़रते तहरीर का हाफ़िज़ किसी ऐसी सल्तनत के नामनामी से खाली है जिसकी गर्दन पर डेढ़ सौ बरस तक

1. वह ज़माना जिसका प्रारंभ नहीं 2 वह ज़माना जिसका अंत नहीं, क़यामत का दिन 3. विवेक पर पक्षाघात होना 4 वे लफ्ज़ जो गुप्त दिल में डाल देता है

तक फरिश्ता-ए-अजल का हाथ कांपता रहा हो। तारीख के एक लंबे दौर में यह होनी भी बेनज़ीर है।

मुग़ल देहली अभी ज़िंदा थी लेकिन उस आख़िरी रहमत का इंतजार कर रही थी जो इंसानों की तरह तहज़ीबों और सल्तनतों का भी मुकद्दर है और बीमार देहली पर आफ़ताब उतर रहा था। किला-ए-मुअल्ला जो कल तक बड़ी सल्तनत का तख्तगाह था और जिसकी भयावह परछाइयों की कल्पना से पहाड़ों के जिगर हिलते थे आज एक बुजुर्ग तहज़ीब की तकिया-दारी[1] पर रज़ामंद हो चुका था बुजुर्ग तहज़ीब जो दजला से रावी तक और गंगा से मूसा नद तमाम पानियों की नदियों की सैराबी का फल थी और जिसकी खुशबू से उर्दू जुबान महक रही थी।

लाल किला जिसने शिकवा-ए-आसमानी को सरनिगूं देखने के लिए अंग्रेज़ की सियासत ने लखनऊ की एक कोठी को कस्रे सुल्तानी[2] का ख़िताब दे डाला। एक अज़ीमुश्शान जहाज़ की तरह तूफ़ानी समंदरों के भंवर में खड़ा था। देहली दरवाज़े के दोनों तरफ़ संगे स्याह के ग्रांडील हाथी मूरतों की तरह खड़े दरबानी कर रहे थे। उनके ऊपर नौबत-ख़ाने में तीसरी नौबत बज रही थी। जैसे भिखारी पेट के लिए सदायें बेचते हैं। और सामने दरवाज़े के घूंघट पर अंग्रेज सिपाहियों का गार्ड खड़ा था। जिनके ऊंचे स्याह चमकदार टोपों में पर लगे थे। सुर्ख़ बानात के कोट दोहरे सुनहरे बटनों से जगमगा रहे थे। सफ़ेद खड़खड़ाती बिरजिस के स्याह चमड़े के साज़पोश में सूरत देखी जा सकती थी और सीधी तलवारों के सड़े हुए कब्ज़ों में ख़ौफ़ व दहशत के शामियाने थे। और उनके सिरों पर वह परचम लहरा रहा था जिसके साये में मध्य एशिया से बर्मा तक एक जहानाबाद रह चुका था और जो आज एक समेटे हुए कफ़न के एक चीथड़े की तरह झूल रहा था और जिसका मुद्दतों से गहनाया हुआ सूरज खुद अपने महलों को रोशन करने में असमर्थ था। हद्दे निगाह तक फैली हुई हैबतनाक फ़सीलों के बूढ़े बुर्ज नामेहरबान ज़माने से हारकर बैठ गये थे जैसे मुग़ल जलाल के आख़िरी सिपाही खुद

1 तकिया या कब्रिस्तान में फ़कीरी करना 2 शाहीमहल

अपने खून में नहाये हुए खुदा-ए-बुजुर्गों बरतर से अपनी जान की अमान माग रहे हो। दरवाजे की देवपैकर मेहराब अजमते पारीना[1] की जलीलुलशान यादों के बोझ से झुक गयी थी। जिसके गर्वीले अतीत ने बड़े-बड़े शहरयारों और विश्वरकुशाओं को अपने दरवाजे पर माथा टेकते देखा था और अब एक सदी से भी ज्यादा मुद्दत से अपने पतन को चुपचाप देख रही थी। नादरी तलवारों की चमक और अब्दाली सवारों की कड़क अगेज कर चुकी थी। दुश्मन मराहटों और सिक्खों की सिनमरानियों और अजीज राजपूतों और जाटों की चीरादस्तियों[2] और रक़ीब गोरों की फ़तह आबियों के जुलूस गुजर चुके थे। बदइकबाल तख्त नशीनों की सरमस्तियों, बद ऐमाल वजीरों की नमक हरामियों और बदकिरदार अमीरों की गद्दारियों के तमाशे हो चुके थे लेकिन न आसमान टूटा और जमीन फटी। अगर देहली गरनाता व बगदाद की तरह एक ही रात में बेचिराग हो गयी होती तो किसी अब्दुर्रहमान[3] के कलेजे से वह आह निकलती कि जमीन पर जलजला आ जाता। किसी इब्ने बदरून[4] की आख से वह आसू टपकते जिनके मातम में मुद्दतों आसमान से सितारे टूट-टूटकर गिरा करते। लेकिन देहली में तो आज भी सब कुछ था और कुछ भी नहीं था। और उसी सब कुछ होने और कुछ भी न होने की कशमकश का नाम ही तो देहली था।

उसने बदरंग मेहराब पर निगाह की वह सुर्ख रंग जो शाहन्शाही का प्रतीक था उड चुका था, मिट चुका था। दरवाजे पर नटी हुई पुरानी काली तोप की चौकी बैठक पर एक दुबला-पतला बूढ़ा सिपाही बदरंग बानात की ढीली-ढाली पुरानी वर्दी पर धुंधले काम का ख़ाली कमरबंद पहने उगली से चूना चाट रहा था और तोप की नाल के नीचे रखे हुए सुर्ख पिंजरे में बंद तूती अपना वज़ीफ़ा पढ़ रही थी। यकायक वह अपने भावों के दबाव से तड़प गया। फिर उसने अपनी वर्दी के बंद दुरुस्त किये और भावों पर काबू पाने की कोशिश की लेकिन भावों ने उसके कंधे पर थपकी

1. प्राचीन प्रतिष्ठा 2 अत्याचार 3. ग़रनाता का शासक
4 बग़दाद का शाइर

दी कि तुम फनकार हो, अज़ीम फ़नकार और मैं तुम्हारा जिन हूं और मुझे उस तहरीर का भी पता है जो लोह-महफूज़[1] पर लिखी हुई है''' यह तोप नहीं अंग्रेज की ताकत है, यह लाल पिंजरा नहीं लाल किला है और इसमे बंद तूती अंग्रेज की पेंशन ख्वार है और यह बूढा सिपाही हिंदोस्तान का फ़ालिज पड़ा हुआ निज़ाम है और अब वह अपने कानो पर हाथ रखे मेहराब के नीचे से गुज़र रहा था और तारीख के ज़रनिगार कारवां और लहूलुहान काफिले ज़ेहन में घोड़े दौड़ा रहे थे। अब वह बोदे स्यावखो और भद्दे चेलों की दोरूया कतारों से गुज़र रहा था जिनके चेहरे बेरंग, बदन बेढगे और हथियार बेआबरू थे। उत्तरी दीवार से लगे कुछ घोड़े खड़े थे जिनके चार-जामे पेट के नीचे लटक रहे थे और ढीली-ढाली गर्दनियो में गर्दनें झूल रही थी और मरी-मरी दुमे मक्खियां उड़ा रही थी और वह सोच रहा था क्या यह वही रास्ता है जहां से कल मुल्कुल शोरा कलीम की सवारी गुज़री थी। जिसके एक शे'र मे शाहजहां ने मुह मोतियो से भर दिया था, अशर्फियो मे तोल दिया था। कलीम तो खुशनसीब थे कि अहदे शाह-जहानी में पैदा हुए अगर हमारी तरह तुमको भी यह उजड़ा ज़माना नसीब हुआ होता तो तुम हमसे भी बदतर होते। फ़नकार की एक बदनसीबी यह भी है कि वह अपने वक़्त से पहले या अपने वक्त के बाद पैदा हो।''' सामने नौबतखाने पर नौबत बज रही थी जैसे कोई भीख मांग रहा हो। इससे आगे मशहूर आलम लाल पर्दा खिचा हुआ था। पहरे पर खड़ी तलवारें जग लगी हुई थी। कमज़ोर कधो पर लादे हुए गुर्ज की कलई उतर चुकी थी और वह उस पर्दे पर अंग्रेज की गोलियो के पड़े हुए निशान देख रहा था। एक तरफ मुल्तानो का हुजूम था जिनमे एक बूढ़ा आदमी दूसरे बूढ़े आदमी के मोढे पर हाथ रखे तख्ते-ताऊस की क़समे खा रहा था। दोनो के कपड़े मैले और हुलिया खराब था कि नकीब की आवाज़ बुलन्द हुई। कमज़ोर आवाज़ मे झूलते हुए बेजान अल्फ़ाज़ इस तरह सुनाई दिये जैसे बूढ़ा सुहार घन चला रहा हो। क्या यह वही आवाज़ है जिसके

[1] वह तख्ती जिस पर अल्लाह ताला ने हर कार्य के बारे मे, जो दुनिया मे घटित होता है, आदि से अन्त तक लिख रखा है और उसी के अनुसार होता है

बुलंद होते ही बड़े-बड़े लश्करशिकन मुल्कशिकार सिपहसालारों की पिंडलियां कांपने लगती थी फिर भी वह होशियार हो गया। सामने चांदी के तख्त पर एक बूढ़ा हड्डियों की माला, किसी कत्ल किये हुए बादशाह का उतरा हुआ ताज पहने कीड़ों की तरह बैठा था। और वह ऐवान जिसका शुमार दुनिया के आश्चर्यों में हुआ करता था इस तरह उजड़ा पड़ा था जैसे किसी जादूगर के तिलस्म ने किसी शहंशाह को नंगा कर दिया हो। अब वह खासबरदारों की मामूली वर्दियों और मैदाने-जंग की भड़कती हुई आग से महफूज़ नुमाइशी तलवारों के घेरे में घिरा हुआ उस बाग से गुज़र रहा था जिसका सब्ज़ा बेआब, फूल बेरंग और दरख्त बेसमर[1] हो चुके थे। उसे दीवाने खास की सीढ़ियों के नीचे खड़े हुए शामियाने में इंतज़ार खेंचने का हुक्म मिला। जहां गुमनाम नाचने वालों के काफिले खुशफेलिया और मामूली कलावंतों के क़बीले गुस्ताखियां कर रहे थे। सीढ़ियों के ऊपर मुकर्रबीन बारगाह का हुजूम था जिनमें सिपाही भी थे वज़ीर भी थे लेकिन अक्सर फन्ने सिपाहगीरी पर तोहमत। मसवे अमारत[2] पर इल्ज़ाम, मरतबा-ए-वज़ारत पर कलंक नज़र आते थे। उनमें भड़कदार कपड़ों और चमकदार हथियारों के अलावा कुछ और चीज़ें भी थी जो वहां शामिल थीं। जैसे खबीस और लालची चेहरे, हरीस और मक्कार आंखें झूठी और साज़िशी निगाहें और जो इन सब से महरूम थे वे उसी की तरह मजबूर और लाचार खड़े थे। वह सोच रहा था कि चरित्र की वह शालीनता जो कौमों को लंबी ज़िंदगी देती है क्या आदमियों के इस गिरोह से रुखसत हो चुकी है। वह बेपनाह खुद फ़रामोशी और बेमुहाबा वफादारी जो सिपाही की आंख में सितारे जला देती है किसी ज़मीन में समा गयी। इल्म पर महारत और फ़न पर कुदरत जो शख्सियत को खुदशनासी[3] और खुद एतमादी अदा करती है जहन्नुम का कूंदा बन गयी। कौमी दरमंदी और इज्तमाई[4] गैरत जो क़लमदाने वज़ारत को लकड़ी के एक टुकड़े से ज़्यादा अहमियत नहीं देती किस आसमां में खो

1. फलहीन 2 अमीर की मसद 3 स्व को पहचान 4 सामाजिक

गयी ? उसने नीम आस्तीन से रूमाल निकाल कर आंखें खुश्क कीं और उस मर्द को देखने लगा जो औरतों के कपड़े पहने पटके में खंजर लगाये और चोटी में कलाबत्तू के फूलों के गजरे सजाये उस गुलालबार के सामने नृत्य कर रहा था जहां तक पहुंचते-पहुंचते हफ्तहज़ारी मसबदारों के औसान टूट जाया करते थे और तख्त के खुले ताबूत में मुर्दे की तरह बैठा हुआ बूढ़ा आदमी खुश हुआ। गालों के नीचे उभरी हुई हड्डियों के नीचे दूर तक मुस्कुराहट ने झुरियां बना दीं। घनी भौंहों के नीचे शिकनों की चीटियां रेंगने लगीं। बूढ़ी गिलाफ़ी आंखें बंद होने लगीं। बड़ी-बड़ी अंगूठियों से सजी हुई लरज़ती उंगलियों ने पान की गिलोरी अता की और उस अजीबो-ग़रीब मख़लूक़ ने हाजिब[1] के हाथ से गिलोरी लेकर आंखों से लगा ली। सिर पर रखी और लंबे चौड़े कागज़ी लिबास में लिपटे हुए रूखे-सूखे मसबदारों और वज़ीरों की मुबारकबादियों के शोर में शराबोर होती नृत्य करती, अपने मुकाम पर खड़ी हो गयी और जैसे किसी ने उसके दाहने कान पर अपने लब रख दिये—क्या यही शख्स तुम्हारा ममदूह[2] है ? तुम्हारी हज़ार साला तारीख़ का अमानतदार है ? सदियों की कमायी हुई गंगा-जमनी तहज़ीब का निगहबान है ? इल्मो और फनों का रखवाला है, मुरव्वजा शालायक[3] है ? काश तुम्हारा क़सीदा निगार क़लम सूख जाता ! काश तुम उस बेनज़ीर और हश्त पहल तमद्दुन[4] के मर्सियानिगार होते। यह कौन सा आलम है कि मौजूद होते हुए मादूम[5] है और मादूम होते हुए भी मौजूद है ! मौजूद पर मर्सिया किस तरह लिखा जाये। तुम्हारी तशबीब जो 'अर्ज़ी' की गौहर निगारी में होड़ लेती है क्या उसके ज़ेहन की पस्ती तक उतर सकती है और अगर यह सब कुछ हो भी लिया तो खूने जिगर, यह मशील जो तुमने लगायी, उसकी कीमत क्या पान की सिर्फ़ एक गिलोरी है ? फिर नकीब की आवाज़ बुलंद हुई। और अगावरदारों ने उसे अपनी हिरासत में ले लिया। गुलालबार के सामने पहुंचकर उसने सात सलाम किये। अपने ज़मीर पर अपने हाथ से सात कोड़े लगाये।

1 दरबान 2. जिसकी प्रशंसा की जाती है 3 संपूर्ण प्रकृति
4. आठ पहलू वाली सभ्यता 5. विलुप्त, अविद्यमान

अपनी बलबलाती मुफलिसी पर सात थपकियां दीं और हाजिब ने ऐलान किया,

"मीरज़ा असद उल्लाह खां गालिब !"

उसने खफ़्तान की जेब से रूमाल निकाला। दोनों हाथों पर नज़र रखी और गुलालबार की तरफ़ चला।

"बा अदब...रूबरू...क़िबला-ए-आलम व आलमियां !"

नकीब की आवाज़ का कड़का उसके पैरों में उलझ गया। जैसे एक बर के मब्ज़ मशरू के पायजामे के पायचों ने उसकी पिंडलियों को जकड़ लिया लेकिन उसने अवचेतन में बरसते हुए झूठे जलाल को झटक दिया ज़रा-सा ख़म होकर तस्लीमात पेश की और नज़र गुज़ार दी। बादशाह ने रूमाल पर हाथ रख दिया। दारोग़ा-ए-नज़रो-निसार ने नज़र उठा ली। मुंशी ने इंदराज कर लिया। बादशाह ने निगाह की जो निगाह से कम थी। अशर्फ़ियों के ढेर को ढूंढने वाली निगाह—लफ़्ज़ों के तांबे-पीतल से बेनियाज़ निगाह उसे छूती गुज़र गयी।

"तुम्हारे कलाम से जश्ने मुबारकबाद तक महरूम रहेंगे।"

ज़िल्ले सुबहानी ने फ़रमाया। आवाज़ में देग़ की खुरचन की खरज थी। बूढ़े हाथ घुटनों पर चले गये। वह तस्लीम को झुक गया। उलटे कदमों वापस हुआ। दारोग़ा-ए-जुलूसो दरबार ने उसके पास आकर खड़ा हो गया और आहिस्ता-आहिस्ता ज़रूरी सवालात करता रहा। उसकी ज़ुबान जवाब देती रही। ज़ेहन कोड़े मारता रहा। खफ़्तान की जेब में रखा हुआ कसीदा उसके पहलू में खंजर की नोक की तरह चुभता रहा। लाल पर्दे से कदम निकालते ही दरबारदार गिद्धों की तरह उस पर झपट पड़े। उसने जेब से पेट की दो-चार बोटियां निकालकर अपनी आबरू बचा ली।

वह अपनी महलसराय की दोहरी दालान की सीढ़ियों पर चढ़ रहा था कि सेहनची से जो वफ़ादार अपने दुपट्टे के पल्लुओं को संभालती तीन दरवाज़ों वाले कमरे की तरफ़ लपकी लेकिन उसको [illegible] पर, जहां थी वहीं जमकर रह गयी। उसने पायदान पर जूते उतारे और दालान की नयी शतरंजी को देखता बीच का दरवाज़ा खोल [illegible] बेगम जानमा[illegible]

पर आखें बंद किये बैठी आहिस्ता-आहिस्ता हिल रही थी। तसबीह के दाने एक-एक करके गिर रहे थे। चुने हुए आसमानी दुपट्टे की दावनी में झुका हुआ। लाल भभूका चेहरा आज भी झमझमा रहा था। वह देर तक उसी तरह खड़ा रहा। देखता रहा। तसबीह खत्म होते ही सिर झुक गया। दोनों हाथ आसमान की तरफ़ उठ गये। खड़ी नाक के नीचे तरशे हुए होंट लरजने लगे इस अहसास से कि पूरी दुनिया में अभी कोई ऐसी हस्ती मौजूद है जो उसकी सलामती के लिए अपने-आपसे गुज़र सकती है। उसका सारा अस्तित्व फ़िक्र की गर्मी से छलकने लगा। महसूस हुआ जैसे जानमाज पर उसकी बेगम नहीं, उसकी मां बैठी हुई हैं और उसके लिए खुदा-ए-जबुल जलाल से दुआएं मांग रही हैं।

"कसीदे की पेशकश मुबारक हो!"

बेगम की उंगलियां जिनके पोर-पोर से मुहब्बत टपक रही थी उसकी नीम आस्तीन के तकमे खोल रही थीं। मासूम और परहेज़गारों की मासूमियत और परहेज़गारी को सलामत रखने के लिए झूठ बोलना भी इबादत होता है और गज भर ऊंचे गाव तकिये के सहारे ढेर हो गया।

"अल्लाह इस कदर चुपचाप क्यों हैं आप? कुछ मुंह से बोलिए न! अगर इनामो-इकरार किसी का नेग निछावर हो चुका हो तो!"

"बेगम!"

आवाज़ दांतों में भिचकर रह गयी। उसने दोनों हाथ पकड़ लिये।

"आज दरबार मुलतवी हो गया।"

"क्या नसीबे दुश्मनान?" ये शब्द चीख़ की तरह निकले।

"हां, ज़िल्ले सुबहानी कुछ बीमार हैं।" उसने तसल्ली दी और नीम आस्तीन उतार दी।

"चलिए अच्छा हुआ·· देर आयद दुरुस्त आयद!"

जैसे ज़ख्म पर मरहम रखा जाता है।

दिन वसर हो रहे थे लेकिन यूंकि नाश्ता है तो गोश्त नहीं। रातें कट रही थी तो इस तरह कि शराब है तो बादाम नहीं और वह बासठ साल्ली की डुगडुगी पर तीस दिनों की तीन सौ जरूरतों के बंदर नचाता रहता। जब थक जाता तो चुगताई बेगम की मुअत्तर जुल्फों की छाव में सो जाता। जब लौंडियों की नजरें गढ़ने लगतीं तो उठकर अपने उजाड़ दीवानखाने की बर्बादी का एक हिस्सा बनकर पड़ रहता। उस दिन भी वह तनहा अपने गाव तकिये से लगा दास्तान पढ़ रहा था कि मुंशी महरूल इस्लाम आ गया। पस्त आदमियों के मजाक की तरह पस्ताकद ठगों के दिलों की तरह काला रंग, पूरे चेहरे पर छोटी-छोटी साप जैसी चमकती आखें, होंटों के कोने गंदगी में सने हुए, खानदानी साइसों[1] की तरह टेढ़ी-टेढ़ी पिंडलियों पर सूती पायजामा मढा हुआ। पुराने विलायती कपड़े का ऊंचा-ऊंचा खफ़्तान जैसे किसी मरे हुए घोड़े का बरानकोट कटवा कर घर में सिलवा लिया हो। करारी आवाज़ में कड़क कर सलाम मारा जैसे क़िले का तोपची सलामी दाग रहा हो। बैठते-ही-बैठते शुरू हो गया। लहजा ऐसा कि जिससे खुशामद ने सबक पढ़ा हो। लफ़्ज़ ऐसे चिकने कि अंग्रेज़ी कारतूसों की चर्बी खुरदुरी मालूम हो। इतने मीठे कि मिठास अवाक् रह जाये। बात-बात में अंग्रेज़ी के लफ़्ज़ छुटे हुए जैसे उर्दू बाजार में त्रिस्तान तिलंगे परेड कर रहे हों। हर फ़िकरा 'गनी कि' के तकिया कलाम के पट्टे में बंधा हुआ। जब बातों का पिटारा खाली हो गया तो चला गया। दोबारा आने के लिए हफ़्ता-दस दिन में ऐसा सब्ज़ बाग दिखलाया कि वह वशीभूत हो गया। बराबर का कमरा खोल दिया। उसी जैसे हुलिये और रख-रखाव के लोग आने लगे। पासा फेंकते, हारते-जीतते जब चलने लगते तो दस-पांच रुपये रखकर चले जाते। उसका जी चाहता कि रुपये उनके मुंह पर मारकर खड़े-खड़े निकाल दे लेकिन अपनी और दूसरों की जरूरतें उसकी जुबान पकड़ लेतीं। मिन्नतें करतीं और रुपये बलबलाती जरूरतों की गोद में डाल देतीं। उठते-बैठते उन रुपयों का ख्याल आता तो वह सूख जाता। ज़िंदा रहने के लिए चुटकी भर राहत और मुट्ठी-भर

1. घोड़ों के खिदमतगार

फ़राग़त की जरूरत होती है। घर का अंधेरा कम होने लगा था कि वह हो गया जिसका उसे ख्वाब में अंदेशा न था।

कोतवाल इस तरह आया जैसे हकीम आगा खा 'ऐश' का दामाद हो। मुंसिफ ने वह बरताव किया जैसे नवाब शम्सुद्दीन का समधी हो। कैसे-कैसे आशना चेहरे नाआशना हो गये! अपने बेगाने हो गये, बेगाने दुश्मन और दुश्मनों के घरों में चिराग़ और महफ़िलों में जश्न। पुश्तों की आबरू घड़ियों में ख़ाक हो गयी। एक इज़्ज़त के अलावा उनके घर में था क्या? जब उसका जनाज़ा बनकर जेल जाने के लिए निकला तो दुनिया अंधेर हो गयी। ग़ालिब जिसने भारी गुरबत के बावजूद दिल्ली कॉलिज की प्रोफ़ेसरी पर केवल इसलिए लात मार दी कि अंग्रेज़ प्रिंसीपल स्वागत के लिए सवारी तक न आया, दो पैसे के तिलंगों की हिरासत में जेल चला गया। जेल के दरवाज़े पर चुग़ताई बेगम फूट-फूटकर रोने लगी कि मीरज़ा तुम तो कहते थे कि मुक़दमे में जान नहीं है। बहुत हुआ तो सौ-पचास रुपये जुर्माना हो जायेगा। यह छः महीने की कैद का हुक्म कैसे हो गया? तरसम ख़ानी तुर्कों की तारीख़ में यह स्याह वरक किसने लिख दिया? जेल में क़दम रखकर अपने वीरान घर की आबादी और उसके आराम का अहसास हुआ। जेल में कैदियों की औलाद जब उनसे मिलने आयी तो वह सोचने लगता कि ज़िंदगी की इस सहज ही हासिल हो जाने वाली नैमत से भी वह क्यों कर महरूम रहा जो भिखारियों तक को नसीब हो जाती है।

उमराव बेगम का खाना उसी तरह रखा था कि चुग़ताई बेगम का पूरा नैमतख़ाने का नैमतख़ाना आ गया। सोयी यादें जाग गयीं। जेल के बाहर अपने दोस्तों की दावत के मुताल्लिक सोचता रहा। सिर्फ़ सोचकर रह जाता। मालूम न हुआ कि कभी उनको अपने घर बुलाकर अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ एक वक़्त खाना खिला दे। जामा मस्जिद से गुज़रता और भिखारियों को रोटी मांगते देखता तो किस तरह बेक़रार हो जाता। वह दिल जो किसी दस्ते सवाल को न देख सके अपने हाथ को फैला देख किस क़दर तड़प कर रह जाता! उठकर कैदियों को बुला लाया। वे इस तरह टूटकर गिरे कि उसके ख़ुद के हिस्से में जेल की रोटी आयी। दिन अपने

कपड़ों के जुएं मारते और दूसरों के ज़ख्मों का दर्द बांटते गुज़र जाता लेकिन रात सूली की रात बनकर आती जिस पर वह सुबह तक टंगा रहता। वह भी ऐसी ही रात थी जब 'हाफिज़' आकर उसके सामने खड़े हो गये। कंधे पर हाथ रखकर बोले, "इतने बड़े फ़नकार होकर गम का मातम करते हो। गम वह आयत है जो हम फ़नकारों पर आसमान से उतारी गयी। गम वह सुर्ख रंग है जो सिर्फ हम बादशाहों को ज़ेब देता है। दुनिया का बड़े से बड़ा गम हमारे दामाने विरासत का एक कोना है। असद उल्लाह खां ग़ालिब अगर तुम ऐसे न होते तो हमारे क़बीले में न होते। डरो उस वक़्त से जब तकदीर तुम पर नामेहरबान होकर तुम्हारी गर्दन में सोने का तोक़ और पीठ पर ज़रबफ़्त का पालान डालकर तुम्हें गधों के रेवड़ में हांक दे। लिखो कि आज का क़लम तुम्हारे हाथ में है। आज की लोह[1] तुम्हारे ज़ानू[2] पर है। मरतबा तुम्हारी रोशनाई का नम और ऐश तुम्हारी तहरीर का जाज़िब[3] है।"

परोक्ष से आती हुई आवाज़ ग़ायब हो गयी और अपने साथ उसकी सारी चिंता और उद्विग्नता समेटकर ले गयी। कितने दिन बाद उसने नींद की दिलदारी और ख्वाबों की नाज़बरदारी की। सोकर उठा तो धूप का सुनहरा रंग भला मालूम हुआ। कशफ़ हवा की मौज से भी बदन सह-लहाने लगा। ज़रूरियात से फ़ारिग़ होकर वह बैठा ही था कि जेलर आ गया। पहली बार सलाम किया और इस अंदाज़ से किया जो सलाम का हक़ होता है। कुछ कागज़ात पर दस्तख़त लिए सामान बंधवाया और इस तरह अचानक आज़ाद कर दिया जिस तरह वह क़ैद हुआ था कि मुंसिफ़ का हुक्मे सानी यही था।

जेल के दरवाज़े पर सवारी की फ़िक्र में डूबा हुआ खड़ा था कि कंधे पर किसी ने हाथ का कंवल रख दिया। चुग़ताई बेगम ने बुर्क़े की नक़ाब उलट दी। मुलाज़िम सामान डोकड़ी में रखने लगे।

"अगर हम जेल न आते तो आपको इस रूप में क्यों कर देखते?'

और उनके चेहरे का तनाव खिलखिलाने लगा। गाड़ी के पर्दे गिरते

1. लिखने की तख्ती 2. पुश्ता 3. [illegible] या मनपसन्द

ही उसने बुर्का उतार दिया और बांहों में एक दरिया-ए-हुस्न मौजें मारने लगा।

"आपने अगर हमको अपना समझा होता तो हमसे मुकदमे की खराबी इस तरह छुपाकर न रखते। शायद कंपनी बहादुर की तारीख़ में यह पहला वाक़या है कि मुंसिफ़ ने अपने अव्वलीन फ़ैसले को अपने ही हुक्मेसानी के ज़रिए रद्द कर दिया। अगर यह हो सकता है जो हुआ तो हमें अव्वल लिखने वाला कलम क्या नहीं लिख सकता था ? काश आपने हमसे इस तरह हया न बरती होती ! नब्बे दिन नब्बे रातें कैसे-कैसे मुंह कैसी-कैसी बातें ! कान सड़ गये। कलेजा पक गया। अगर आपकी रिहाई का मामला दरपेश न हुआ होता तो कहीं मुंह काला कर जाते।"

देहली दरवाज़े पर किराये की फ़ीनस में बिठाकर रुख़सत कर दिया कि उमराव बेगम अंगारों पर लेट रही होंगी। उमराव बेगम ने देखा तो जैसे सकता हो गया। फिर उठीं और लिपटकर रोने लगीं। बेहाल हो गयीं। जब ज़रा संभलीं तो आदमी भेजकर हज्जाम को महल सराय में बुलाया। उसने अपनी सूरत देखी तो अपने आपसे शर्म आने लगी। उक्ताहट होने लगी। क्या यह वही सूरत है जिस पर चुग़ताई बेगम जैसी क़त्ताला-ए-आलम[1] ने लाल क़िला क़ुर्बान कर दिया। बहुत बेवक़ूफ़ है चुग़ताई बेगम। बहुत बावफ़ा है चुग़ताई बेगम। वह आईने में बैठे हुए पचास साल के बूढ़े बदनाम मुक़रूह[2] चेहरे पर थूकता रहा और हज्जाम इंतज़ार करता रहा। फिर उसने सुना,

"सिर के बाल मूंड दो···और दाढ़ी बराबर कर दो !"

पर्दे के पीछे उमराव बेगम की आहट हुई और आरिफ़ ने तड़पकर पूछा,

"यह सिर क्यों मुंडवाए दे रहे हैं आप ?"

"हिंदुओं में तरीक़ा है जब उनके घर का कोई बुज़ुर्ग मर जाता है तो वो अपने सिर के सारे बाल मुंडवाकर सोग का इज़हार करते हैं। हमने

1. अपनी सुन्दरता से संसार का क़त्ल करने वाली 2. अपवित्र, धार्मिक दृष्टि से अनुचित वस्तु

तो इन दो हाथों से अपने तमाम बुजुर्गों के नामोनिशान का गला घोंटा है। दाढ़ी के बाल इसलिए छोड़ रहे हैं कि दुश्मन फ़िरस्तान की फ़ब्ती कहेंगे। वरना भौंहों तक का सफ़ाया कर देते।"

आरिफ़ की आखें शून्य में कुछ ढूंढ रही थीं लेकिन वह अपने जिगर में चुभन महसूस कर रहा था कि उसका चेहरा पतला और हाथ-पांव दुबले हो गये थे और रंग पर ज़र्दी पुती हुई थी। वह आरिफ के इलाज के मुताल्लिक सोचने लगा।

फिर सिपाही बच्चे मियां ज़ौक़ के शागिर्द नुस्ख़ानवीस हकीम आगा खां 'ऐश' के वली नेमत और मिर्ज़ा क़तील की फ़ारसीदानी के मोतरफ़[1] और दिल्ली के बादशाह बहादुर शाह सानी का फ़रमाने आली सनीद हुआ जिसे पढ़कर एक आंख रो दी, दूसरी हंस दी। नज्मुद्दौला दबीरुल मुल्क निज़ाम जंग मीरज़ा असद उल्लाह खां ग़ालिब ख़िलअत से सर-फ़राज़ हुए। छः सौ रुपये सालाना तनख़्वाह मंज़ूर हुई ख़ानदाने तैमूरी की ख़िदमत में तारीख़ नवीसी का काम मिला। यानी ग़ालिब का कलम हाथ से छीनकर कान पर रख दिया गया कि बड़ा शाइर बना फिरता था ले मुहर्रिरी कर! सिर्फ़ मुहर्रिरी कि तारीख़ की सामग्री वह मौलवी मुनसद्दी जमा करेंगे जिनको अगर ग़ालिब के इल्म व फ़न की हवा लग जाए तो क़ौम का भविष्य न सही दुनिया ज़रूर संवर जाती। तारीख़ को बीन-उल-सतूर[2] में पढ़ने वाले आलिम पर उन मुंशियों और मुनसद्दियों को तरजीह दी गयी जो तारीख़ को तोते की तरह रटने के क़ाबिल थे। वह देर तक फ़रमान लिये बैठा रहा। बार-बार पढ़ता रहा। जब सतरें धुंधलाने लगें तो दिल ने आवाज़ दी,

'यहां ग़ालिब जिस बासठ इंच के गज़ से तुम तीस दिन और तीस रातों के सहरा को नापा करते थे इसमें पचास इंच और जोड़ दिए शुक्र करो कि अगर पूरी नहीं तो आधी शराब का इंतज़ाम ज़रूर हो जायेगा, रही मुल्कुल शोराई तो मुल्कुलशोरा[3] वह नहीं होते जिनको बादशाह

1. सम्मान करने वाला 2. पंक्तियों के बीच का अन्तर (बिटवीन द लाइन्स)
3. राष्ट्रकवि

मुल्कुलशोरा बनाते हैं। मुल्कुलशोरा वह होते हैं जिनका कलाम मुल्कुल क्लाम[1] होना है। क्ल के कितने मुल्कुलशोरा आज ताके निसियां[2] हो गये लेकिन हाफ़िज़, हाफ़िज़ रहा और ख़ैयाम, ख़ैयाम! हा!

ग़ालिब वज़ीफ़ा ख़्वार हो दो शाह को दुआ
वो दिन गये कि कहते थे नौकर नहीं हूँ मैं!'

अभी बादशाह की तनख़्वाह से जाम का सूरज उगा भी न था कि आरिफ़ डूब गया। उमराव बेगम का भानजा मर गया। वह मर गया जिसके वुजूद में उसने पिदराना जज़्बात के इज़हार का वसीला तलाश किया था। वह लकड़ी टूट गयी जिसे असा-ए-पीरी[3] का नाम मिलने वाला था। उमराव बेगम को देखकर महसूस हुआ जैसे आरिफ़ नहीं मरा ख़ुद उनकी कोख से जने कई बच्चे जवान होकर एक साथ मर गये। एक घड़ी में मर गये। आरिफ़ की बेवा की आँखें देखीं तो जैसे दृष्टि जाती रही। आरिफ़ के छोटे-छोटे बच्चों के चेहरे देखे तो अपने ग़म खिलौने मालूम होने लगे। यह ख़ुदाए-रहीमो-करीम के सहीफ़ा-ए-इंसाफ़ की कौन-सी आयत है जो इन मासूमों पर उतारी गयी। इन दूध-प्यालों के कौन-से गुनाह हैं जिनकी यह सज़ा दी गयी। पहली बार ख़ुदा की ख़ुदाई और बादशाह की बादशाही में कोई फ़र्क़ मालूम नहीं हुआ कि इंसाफ़ न यहां है, न वहां है।

अभी बहादुर शाह की तख़्त नशीनी की सलामी की तोपों के फलीते धुआं दे रहे थे कि अकाल मुबारकबाद देने आ गया और अकाल भी ऐसा कि ख़ुदा रहम करे।...मुट्ठी भर आटे के एवज़ बेटियां बिकने लगीं। बाज़ारों में अनाज की बोरियों के भाव औलाद की ढेरियां तय करने लगीं। उसने घर के दरवाज़े बंद कर लिए कि बाहर निकलने के ख़्याल से

1 जनता की भावनाओं से युक्त काव्य 2 ज़मीन के हवाले हो जाना, ग़ालिब ने इस मुहावरे का अपने एक शेर में भी प्रयोग किया है 3. बूढ़े के हाथ की लाठी

दिल बैठने लगा।

जिंदगी दिन-रात की सफेदो-स्याह चक्की में पिस रही थी कि अचानक छोटी-छोटी चपातियां सामने आने लगीं कि आसमान से बर्बादी की उड़नतश्तरियां उतरने लगीं। बड़े-बड़े आलिम-फ़ाज़िल जो टोने-टोटके के कायल न थे। पूरे जोशो-खरोश के साथ इन खुराफात को उचित ठहराने लगे कि जंगे पलासी को सौ साल पूरे हो चुके हैं और अब अंग्रेज की रवानगी का बिगुल बजने वाला है। बड़े-बड़े लोग आसमान पर डूबते सूरज की सुर्खी और ज़मीन पर बहने वाले खून के दरिया की ताईद करने लगे। फकीरों और मलंगों की बेसिर-पैर की बातों में सुनहरे और आज़ाद ताजपोश भविष्य के सपने देखने लगे। अंग्रेज़ी बूटों से कुचले हुए अफ़ग़ानिस्तान से विजेता लश्करों के उतरने का इंतज़ार करने लगे। बे-हाथ-पैर के ईरान के खुफिया शाही एलचियों से फ़र्ज़ी मुलाकातों के अफसाने सुनाये जाने लगे। लखनऊ की हारी हुई फौजों के अफसर और पेशवाई से बर्खास्त लश्करों के सरदार अफ़वाहों की पूरी मैगज़ीन लेकर दाखिल हो गये मंदिरों में पेशवाई के हवन होने लगे और मस्जिदों में नमाज़े इंतज़ार पढ़ी जाने लगी। पश्चिम के आसमान पर गुबार का एक धब्बा नज़र आ जाता तो खबरदार सवार होकर उन घोड़ों की खबर लेने उड़ जाते जिनके सुमों की धूल से यह आंधी उठी थी। गजक की दुकानों से क़िले के महलों तक, तवायफ़ के कोठों से पीरों की दरगाहों तक एक कारखाना था जहां खबरें ढाली जा रही थीं और उड़ायी जा रही थीं। बेखबरों की बेअक्ली के लिए हर रात खबर की रात थी और दिन आवा-हन का दिन।

यह जिनके इशारों पर भाप का एक देव हज़ारों चप्पुओं के सहारे चलते हुए जहाज़ों से समंदर का सीना चीर डालता। जिनकी बारूदी सुरंगों ने आसमान से बातें करते पहाड़ों के धुएं उड़ा दिये। जिन्होंने ज़मीन पर लोहे की सड़कें बिछाकर यों हौलनाक अगन चहूल दौड़ा दिये जिनके सामने हज़ारों हाथी-घोड़े मक्खी-मच्छर हो गये। हवा के कंधों पर संदेश पहुंचाने के वो सिलसिले क़ायम कर दिये कि चिरागदीन के अफ-साने सच हो गये—अपनी शक्ति पर भरोसा किये अपने साम्राज्य में

कलकत्ता से काबुल तक फिरंगियों ने उन्हीं के हाथों पर विजय पायी है··· श्रीमान् इनके सिर पर हाथ रख दें तो ये सारा मुल्क फतह करके आपके कदमों में डाल देंगे। सारे खजाने जीतकर नज़र में गुज़ार देंगे।"

बादशाह खामोश रहा तो उसने आदाबगाह पर सिर रख दिया। बादशाह का उसके सिर पर हाथ रखना था कि तहलका मच गया। बंदूकों और पिस्तौलों के फायर होने लगे। 'महाबली जिंदाबाद' के नारों से किले की दीवारें हिलने लगीं और जैसे किसी ने उसका कंधा पकड़कर लाहौरी दरवाज़े से गुज़ार दिया। दरवाज़े के घूंघट पर तिलंगे उपची बने खड़े थे। सड़क के किनारे डुगलस साहब खून में नहाये ढेर थे और लोग तमाशा देख रहे थे। चांदनी चौक की सड़क के सामने उसे ख्याल आया कि हवादार देहली दरवाज़े पर खड़ा मूस रहा है। वह देहली दरवाज़े की तरफ मुड़ा। थोड़ी दूर पर तमाशबीनों की कमान के पास फ्रेज़र साहब बहादुर की लाश पड़ी थी। क्या यह वही शख्स है जिसके खौफ से किले के दरवाज़े कांपते थे। देहली दरवाज़े के सामने दो आदमी जो सिर से पांव तक हरे लिबास पहने थे और अपने ऊंटों पर हरे बालापोश डाले थे। सामने खड़ी भीड़ को देखकर गरजे,

"ऐ लोगो मज़हब का डंका बज गया।"

आवाज़ की आंच से कान जल गये। पहली बार इल्का[1] हुआ कि जो कुछ हो रहा है वह बहुत कुछ हो रहने की महज़ एक शुरुआत है। शाहजहानी मस्जिद के सामने सड़क बंद थी आदमियों के ठठ दीवार की तरह खड़े थे। अचानक 'दीन-दीन' के नारे लगने लगे। वह अपने हवादार पर खड़ा हो गया। दो सवार अपनी रकाबों में बंधी रस्सियों में कर्नल रप्ले साहब बहादुर की लाश घिसटते गुज़र गये। हुजूम तालियां बजा रहा था। आगे बढ़ा ही था कि इतने ज़ोर का धमाका हुआ जैसे सैकड़ों बिजलियां एक साथ कड़क गयी हों। हज़ारों मकान हिल गये। चटख गये। गिर गये। दुकानों के तख्तों पर बैठे हुए आदमी लुढ़क गये। घर पहुंचते-

1 दैवी शक्ति द्वारा अनायास मन में कोई विचार उत्पन्न होना, जिससे अनिष्ट से बचाव अथवा इष्ट के ग्रहण की ओर संकेत हो।

पहुंचते खबर आ गयी कि बागियों ने दिल्ली की पूरी अंग्रेज़ी मैगज़ीन उड़ा दी।

पिघली हुई आग का एक प्याला पेट मे पहुंचा तो असद उल्लाह खां आकर सामने खड़ा हो गया···

"ग़ालिब की तारीख़ी बसीरत[1] क्या कहती है ?"

"जवाब के लिए तारीख़ी बसीरत की जरूरत नही मदरसे के मौलवियों का इल्म काफ़ी है।"

"यानी ?"

"बयासी साल का बुड्ढा न शेर शिवन हो सकता है शेरे बंगाल सिराजुद्दौला, न महाराजा रंजीत हो सकता न धाक पेशवा। फिर इनका जो हश्र हुआ उसे जानने के लिए तारीख़ी बसीरत की ज़रूरत है ?"

"तुम्हारा ख्याल है कि यह सब कुछ···?"

"···अफरंग के मदारी का तमाशा है। क़िला-ए-मुबारक ख़ाली कराने का बहाना है। मुग़लो को कुतुब मे कैद कर देने की साज़िश है।"

असद उल्लाह ख़ां मुस्कुराने लगे।

"बड़े-बड़े अंग्रेजो की यह कुत्ते की मौत !"

"ज़िंदा कौमें अपने उरूज[2] के लिए लोगों की लाशो से ज़ीना बना लेती हैं।"

इस बार असद उल्लाह खा हंस दिये कि वे ग़ालिब पर हंसने की आदत में मुब्तिला हो चुके थे।

वह देर से सोया। देर से उठा। नहा-धोकर दस्तरख्वान पर बैठा था कि शाही चोबदार आ गया जैसे अकबरो-जहांगीर के चोबदार आते होंगे कि पूरी गली सवारो से झलकने लगी। बड़ी मर्यादा के साथ फरमान सुनाया—

"ज़िल्ले इलाही का फरमाने आली है कि मज़रूब[3] होने वाले सिक्के पर नज्मुद्दौला दबीरुलमुल्क निज़ाम जंग का शे'र खोदा जायेगा।"

वह सन्न होकर रह गया। बादशाह ने असद उल्लाह खा को सुना-

1. भविष्य 2. उत्कर्ष 3 सिक्के पर खुदाई करना (जर्ब पहुंचा हुआ)

जिम रखा है। तारीख़ निगारी की खिदमत सुपुर्द हुई है। शाइर ग़ालिब को इस मुलाज़मत से क्या ताल्लुक ? शाइर का मुवर्रिख[1] होना ज़रूरी और मुवर्रिख के लिए शाइरी शर्त नहीं ! अपने जवाब के भोलेपन पर हंस दिया।

दरियागंज से क़िले तक सवारियां ढेर थीं। अंग्रेज़ों के मकानों के लुटने की कहानियों की जुगाली हो रही थी। जगह-जगह बादशाह के नाम पर ठंडे शर्बत की मेज़ें लगी थीं। कितने ही हलवाइयों ने तरंग में आकर अपनी दुकानें लुटा दीं। कितने ही उल्लसित लोगों ने दुकानें खरीद कर बांट दी थीं। कैसे-कैसे सूखे चेहरे शादाब हो गये थे। और होंठ जो तबस्सुम से तक बेनियाज़ रहे कहकहे लगा रहे थे। क़िला-ए-मुबारक पर बने-सवरे हाथियों, ऊंटों और घोड़ों के रिसाले जमे थे। प्यादों की पलटनें खड़ी थीं। दमदमों पर तोपें लगी थीं। दरवाज़े के घूंघट पर हथियारों का पर्दा खड़ा था। नाम-गांव की पूछ-गछ के बग़ैर कोई दाख़िल नहीं हो सकता था। अव्वली दरवाज़े से नक़्क़ारख़ाने तक सिपाहियों के ग़ोल और हथियारों के दस्ते कमर कसे, दस्तारें पहने, हाथों में बड़ी-बड़ी सुर्ख लकड़ियां लिये अदब-आदाब की तालीम देते फिर रहे थे। क़दम-क़दम पर भरी हुई बन्दूकें और नंगी तलवारें पहरा दे रही थीं। पुराने की जगह नया लाल पर्दा लगा था। पहली बार प्यादों के साथ सवारों को खड़े देखा। शाहज़ादे और सुलतान सच्चे काम के पुराने घराऊ लिबासों पर ज़ेवरों की जगह हथियार पहने अजनबी-अजनबी लग रहे थे। कितने ही मनचले सख़्त गर्मी के बावजूद समूर[2] और जामेवार लादे थे। और कमर में दोशाले बांधे थे। पगड़ियों में पत्थरों और मोतियों के सरपेंच बंधे थे। उक़ाब व ताऊस के परों की कलगियां लगी थीं। ज़रतार तुर्रे खड़े थे। पांव ज़मीन पर न टिकते थे कि आंखों ने तख़्ते-ताऊस देख लिया था।

महमूद ग़ज़नवी का जानशीन नादिरशाह दुर्रानी जब तख़्ते-ताऊस लूट ले गया और बूढ़े शहंशाह ने चांदी के तख़्त पर दरबार किया तो

1 इतिहासकार 2 एक निहायत बारीक बाल वाले बर्फ़िस्तानी जानवर की खाल

आंसुओ से दाढी भीग गयी : नमक ख्वारों ने कारीगरों की पूरी एक फौज भरती कर ली और चंद ही दिनों में लकड़ी का तख़्ते-ताऊस बनाकर बिछा दिया । शहंशाह जिसने तख़्ते-ताऊस की आबोताब में आंख खोली थी, नक़ल को देखकर दंग रह गया कि ताऊस के परों की ताब से लेकर मोतियों की आब तक ने उसकी निगाह से खिराज वसूल कर लिया । जब उसके जांनशीनों के दरबार उस नक़ली तख्त को भी सहने के क़ाबिल न रहे तो उस पर गिलाफ डाल कर दीवाने आम के तहखाने मे बंद कर दिया गया। 11 मई का सूरज डूबने से पहले तहखाना खोला गया तो आंखें ख़ैरा हो गयी कि तख्त उसी तरह झमझमा रहा था। दिल्ली के कारीगरों ने कि कारीगरी जिनके घर की लौंडी रही, रातों-रात शीशों की तरह चमक भर दी। *असली तख़्ते-ताऊस से भी ज्यादा सुंदर बना* दिया। दीवाने खास के सामने शाहजहां के मशहूर आलम दल-बादल की जगह मस्जिद जामा का शामियाना खड़ा था। चप्पा-चप्पा आदमियों से उबल रहा था और बहादुरशाह सानी मुगलों का रिवायती चोगाशिया ताज पहने, जेवरों मे ढंका हुआ तख़्ते-ताऊस पर जुलूस कर रहा था। गुलाल बार पर शहंशाह का बेटा मिर्ज़ा मुगल मुजरा कर रहा था। तख्त की सीढ़ियों के पास जासूसों का बादशाह हकीम अहसन उल्लाह खां वज़ीर आज़म बना खड़ा था। बादशाह तख्त से उतरा। एक सवाग के दस्त से जड़ाऊ तलवार उठाकर मिर्ज़ा मुगल की कमर मे बांध दी और ऐलान किया,

"मीरज़ा ज़हीर उद्दीन मोहम्मद उर्फ़ मिर्ज़ा मुगल को तमाम फौजों का सिपहसालार मुकर्रर किया गया।"

यह सुनते ही बर्क़ंदाज़ों के एक दस्ते ने हवा मे फायर किये। साथ ही किले के दोनों दरवाजों की तोपों ने सलामी दी। मीरज़ा अबू बकर को शाही सवारों की अफ़सरी और मीरज़ा ख़िज़्र सुलतान को पानीपत पलटन की कर्नेली अता की गयी। उन शाहज़ादों को, जिन्होंने कभी शिकार के लिए भी बंदूक न भरी थी, अंग्रेज़ों के तोपखानों से जूझने वाले लश्करों का सालार आज़म और सालार अव्वल बना दिया गया। ख़ुदा की ख़ुदाई और बादशाह की बादशाही में कौन दख़ल दे सकता है?

ऐसी बहुत-सी ख़ुराफ़ात के बाद वज़ीरे आज़म ने अनगिनत दूकानों और कितने ही मकानों के लुटने-फिकने की इत्तला दी और बाग़ी अफ़सरों ने एक ज़ुबान होकर बादशाह से सवार होने की गुज़ारिश की। पलक झपकते ही बादशाह का मशहूर हाथी मौला बख़्श चांदी की अमारी पर सोने का छत्र लगाये अतलस का बालापोश पहनकर हाज़िर हो गया। बादशाह को देखते ही सूंड उठाकर माथे पर रखी और चीख़कर सलाम किया। ख़वासों के अफ़सर ने चांदी की सीढ़ी लगा दी और 'शहंशाहे हिंद ज़िंदाबाद' 'फिरंगी हुकूमत मुर्दाबाद' के नारों की तकरार में बादशाह सवार हो गया। मीरज़ा फ़ख़रू मरहूम का बेटा ख़वासी में बैठा था। लाहौरी दरवाज़े से निकलते ही हज़ारों-लाखों इंसानों ने उसकी बादशाही पर जानें निसार कर देने का ऐलान किया। चांदनी चौक में बहती हुई नहर के उलटी तरफ़ सड़क पर घुड़सवारों की दोहरी क़तार चल रही थी जिनमें से अक्सर वर्दियां पहने थे और कंधों पर सब्ज़ या ज़ाफ़रानी चादरें डाले थे। सैकड़ों सवारों के पीछे बादशाह का हाथी था और उसके पीछे हद्दे निगाह तक सवार ही सवार चले आ रहे थे और नहर के सीधी तरफ़ दिल्ली वालों का हुजूम था। दुकानों और इमारतों में और उनकी छतों पर दरख़्तों और हर उस जगह जहां कोई खड़ा हो सकता था आदमियों के ठठ लगे थे। बादशाह आंख व भौंहों के संकेत से सलाम और सलामियां क़बूल कर रहा था। जली-लुटी दुकानों के इर्द-गिर्द बंद दुकानें बादशाह का हाथी देखकर खुलने लगीं। जुलूस फ़तहपुरी मस्जिद पर मुड़कर नहर की दूसरी तरफ़ आ गया। बादशाह की सवारी मंदिर के समानांतर आ गयी लेकिन जुलूस का आख़िरी हिस्सा मंदिर के नीचे सड़क पर चल रहा था। बादशाह का हाथी क़िले के देहली दरवाज़े की तरफ़ मुड़ गया कि आदमियों का समंदर दर्शन का मुंतज़र था। वह ख़िनारी बाज़ार के रास्ते पर हो लिया। थोड़ी दूर पर एक अंग्रेज़ की लाश पड़ी थी जैसे अंग्रेज़ी का हर्फ़ 'वाई' बना हो। किसी मसख़रे ने उसके मुंह में बिस्कुट भी फंसा दिया था। वह आगे बढ़ गया।

लाल महल के फाटक पर फर्रुखाबाद के प्यादे बंदूकें भरे पहरा दे रहे थे। खिड़की तक बंद थी। देर के बाद सिपाही ने पट खोलकर उसे देखा और अंदर कर लिया। चुगताई बेगम का सामना होते ही शिकवा-शिकायत को बहलाने के लिए उसने शेर पढ़ा—

गो मैं रहा रहीने सितम हाय रोजगार

लेकिन तेरे ख़्याल से ग़ाफ़िल नहीं रहा

बेगम ने सार्थक अंदाज़ में सिर हिलाया और उसका अंगरखा लेकर लौंडी को पंखा खींचने का हुक्म दिया।

"बेगम पहले एक कटोरा पानी पिलवाइये!"

"मीरज़ा साहब ··आप एक रोज़ा भी नहीं रखते।"

"रखते हैं···लेकिन चूंकि ग़ाली[1] सुन्नी हैं इसलिए चार घड़ी दिन रहते खोल लेते हैं।"

बेगम कूल्हों पर हाथ रखे उसे घूरती रही।

"आपकी उम्र साठ बरस तो होगी?"

"असल में बेगम ऐसा है कि मैंने तंगी में सामने के दो दांत निकलवा दिये थे। दुश्मनों ने उड़ा दी कि गिर गये। खैर। आप भी कहिये···इस वजह से आपको मुग़ालता हुआ और भई अगर है भी तो मर्द साठा पाठा होता है···वरना सच पूछिए तो मैं क्या मेरी उम्र क्या?"

"जी हां···औरत बेचारी बीसी-खीसी होती है···अच्छा, पानी पीकर ज़रा सुस्ताइये। मैं ज़रा इफ़्तार[2] का सामान देखती हूं।"

"ज़रूर देखिए बस इतना ख़्याल रखियेगा कि मैं इफ़्तार के वक़्त सिर्फ़ पीने का काइल हूं और रोज़े पर रोज़ा रख रहा हूं···जी हां!"

कनीज़ गर्दन झुकाये मुस्कुरा रही थी और पंखा हिला रही थी। उसने गाव तकिये से पुश्त लगाकर अख़बार उठा लिया।

इफ़्तार की तोप चली तो उसने टोपी सिर पर रखकर एक खजूर मुंह में डाल ली और शर्बत का गिलास उठा लिया। नमाज़ के बाद बेगम दस्तरख़्वान पर बैठी।

1 एक फ़िरक़ा जो हज़रत अली को ख़ुदा मानता है 2. रोज़ा खोलना

ऐसी बहुत-सी खुराफात के बाद वर्जारे आजम ने अनगिनत दूकानो और कितने ही मकानो के लुटने-फिकने की इत्तला दी और वागी अफ़सरों ने एक जुबान होकर बादशाह से सवार होने की गुजारिश की। पलक झपकते ही बादशाह का मशहूर हाथी मौला बख्श चादी की अमारी पर सोने का छत्र लगाये अतलस का बालापोश पहनकर हाजिर हो गया। बादशाह को देखते ही सूड उठाकर माथे पर रखी और चीखकर सलाम किया। खवासो के अफसर ने चादी की सीढी लगा दी और 'शहशाह हिंद ज़िंदाबाद' 'फिरगी हुकूमत मुर्दाबाद' के नारो की तकरार मे बादशाह सवार हो गया। मीरजा फखरू मरहूम का बेटा खवासी मे बैठा था। लाहौरी दरवाजे से निकलते ही हज़ारो-लाखों इसानो ने उसकी बादशाही पर जानें निसार कर देने का ऐलान किया। चांदनी चौक मे बहती हुई नहर के उलटी तरफ सड़क पर घुड़सवारो की दोहरी क़तार चल रही थी जिनमे से अक्सर वर्दिया पहने थे और कंधो पर सब्ज़ या ज़ाफ़रानी चादरें डाले थे। सैकडो सवारों के पीछे बादशाह का हाथी था और उसके पीछे हद्दे निगाह तक सवार ही सवार चले आ रहे थे और नहर के सीधी तरफ दिल्ली वालो का हुजूम था। दुकानो और इमारतो मे और उनकी छतों पर दरख्तो और हर उस जगह जहा कोई खडा हो सकता था आदमियों के ठठ लगे थे। बादशाह आख व भौंहों के संकेत से सलाम और सलामियां क़ुबूल कर रहा था। जली-लुटी दुकानों के इर्द-गिर्द बंद दुकानें बादशाह का हाथी देखकर खुलने लगीं। जुलूस फतहपुरी मस्जिद पर मुडकर नहर की दूसरी तरफ आ गया। बादशाह की सवारी मदिर के समानांतर आ गयी लेकिन जुलूस का आखिरी हिस्सा मदिर के नीचे सड़क पर चल रहा था। बादशाह का हाथी किले के देहली दरवाजे की तरफ मुड़ गया कि आदमियों का समदर दर्शन का मुतजर था। वह किनारी बाजार के रास्ते पर हो लिया। थोडी दूर पर एक अग्रेज की लाश पडी थी जैसे अंग्रेज़ी का हर्फ 'वाई' बना हो। किसी मसखरे ने उसके मुह मे बिस्कुट भी फसा दिया था। वह आगे बढ़ गया।

लाल महल के फाटक पर फ़रुखाबाद के प्यादे बंदूकें भरे पहरा दे रहे थे। खिड़की तक बद थी। देर के बाद सिपाही ने पट खोलकर उसे देखा और अंदर कर लिया। चुगताई बेगम का सामना होते ही शिकवा-शिकायत को बहलाने के लिए उसने शेर पढ़ा—

गो मैं रहा रहीने सितम हाय रोजगार

लेकिन तेरे ख्याल से गाफ़िल नही रहा

बेगम ने सार्थक अदाज मे सिर हिलाया और उसका अंगरखा लेकर लौंडी को पंखा खीचने का हुक्म दिया।

"बेगम पहले एक कटोरा पानी पिलवाइये !"

"मीरजा साहब ··आप एक रोज़ा भी नही रखते।"

"रखते हैं···लेकिन चूकि गाली[1] सुन्नी हैं इसलिए चार घड़ी दिन रहते खोल लेते हैं।"

बेगम कूल्हों पर हाथ रखे उसे घूरती रही।

"आपकी उम्र साठ बरस तो होगी ?"

"असल मे बेगम ऐसा है कि मैंने तगी मे सामने के दो दात निकलवा दिये थे। दुश्मनो ने उडा दी कि गिर गये। खैर। आप भी कहिये···इस वजह से आपको मुगालता हुआ और भई अगर है भी तो मर्द साठा पाठा होता है···वरना सच पूछिए तो मैं क्या मेरी उम्र क्या ?"

"जी हा···औरत बेचारी बीसो-खीसी होती है···अच्छा, पानी पीकर जरा सुस्ताइये। मैं जरा इफ़्तार[2] का सामान देखती हूं।"

"ज़रूर देखिए बस इतना ख्याल रखियेगा कि मैं इफ़्तार के वक्त सिर्फ़ पीने का काइल हूं और रोज़े पर रोज़ा रख रहा हू···जी हां !"

कनीज़ गर्दन झुकाये मुस्कुरा रही थी और पखा हिला रही थी। उसने गाव तकिये मे पुश्त लगाकर अखबार उठा लिया।

इफ़्तार की तोप चली तो उसने टोपी सिर पर रखकर एक खजूर मुह में डाल ली और शर्बत का गिलास उठा लिया। नमाज़ के बाद बेगम दस्तरख्वान पर बैठी।

1 एक फिरका जो हजरत अली को खुदा मानता है 2. रोजा खोलना

"आजकल अल्लाह मियां से आपके ताल्लुकात कैसे हैं?"

"यकतरफ़ा! हम अपनी तरफ से बनाये जाते हैं। उनकी तरफ़ से वही सर्द मुहरी है। शराब है तो गुलाब नहीं, गुलाब है तो बादाम नहीं!"

"जब से हंगामा हुआ है आप बेतरह याद आये जा रहे थे···सुना है हजारों अंग्रेज मार डाले गये। सैकड़ों मकानात जल गये, दुकानें फुक गयीं। सारी रात मोहल्ले में कुहराम रहा है। फिरंगियों को ढूंढने के बहाने घर में घुस आते हैं जो हाथ मे लगता है लूट ले जाते हैं। यह जो बराबर मे मुशी अज्जन साहब है कफा बहादुर साहब की कचहरी में मीर मुंशी! इनके घर में झाड़ू फेर दी। वहा बादशाही का ऐलान हो रहा है यहां आबरू पर बनी जा रही है। मुगल जान आयी थी आज सुबह वह रही थी पूरा दरीबा उजाड़ दिया है। जितनी नामी-गरामी नाचने वालियां थीं किले मे उठवा ली गयीं। अच्छी सूरतवालियों के यहां पुरबियों के पड़ाव पड़े हैं। सुन-सुनकर दिल हौल रहा है। साज़िंदे आपस मे बातें कर रहे थे कि रात में सर्राफ़े में जो दुकानें लूटते हैं दिन मे उन्हीं के कारीगरों से सलाखें बनवाते हैं और कमर मे बांध लेते है। शाहज़ादों सलातीनों की बन आयी है। दिन मे लड़ाई के नाम पर रुपया वसूल करते हैं और रात में पेशावरों से पांव दबवाते हैं···अल्लाह मैं तो चर्खा ओटे जा रही हूं और आप चुप का रोज़ा रखे बैठे है।"

"जी अगर आपने कहा मान लिया होता तो आज आप हज़रत महल के बजाय मरियम ज़मानी बेगम होतीं और हम भी सौ-पचास सवार रकाब में लिए दिल्ली की सड़कों पर गश्त कर रहे होते।"

"शहर में शोहरा है कि आप सिक्का लिख रहे है?"

"शोहरा तो है लेकिन भंगी के हाथ से फांसी पाने की हिम्मत नहीं है।"

"ऐ खुदा न करे मीरज़ा साहब शैतान के कान बहरे।"

"जी हां बेगम···यह हवाइयां हैं छूट रही हैं। वक़्ती हड़बौंग है मच रहा है। एक ज़रा अंग्रेज को सभलने दीजिए फिर देखियेगा तमाशा।"

"आप पहले आदमी हैं जिसकी ज़बान से यह सुन रही हू वरना सारा शहर तो कुछ और ही अलाप रहा है।"

"जी हां'''शहर में गालिब भी एक ही है।"

रात की गिरहें खुल रही थी और अशआर ब्याज में उतर रहे थे कि हकीम आगा खां 'ऐश' आ गये और बैठते ही बैठते दग गये,

"जिल्ले इलाही आपके सिक्के का इंतजार फरमा रहे हैं और आप !"

"हकीम साहब खुदा गवाह है कि तीन दिन-रात से फिक्रे शे'र में मुब्तिला हूं। दरबार से मुह चुराये बैठा हूं लेकिन शे'र नही होता है जो हुआ है उस पर दिल नही जमता आप भी सुन देखिये—

ये जरजद सिक्का-ए-नुसरत तराज़ी

सिराजुद्दीन बहादुरशह गाज़ी"

"सुबहान अल्लाह क्या बरजस्ता और बरमहल शे'र फ़रमा दिया है और'''"

"तो आपकी नजर है हकीम साहब।"

"लाहौल विला कुवत'''क्या फरमा रहे हैं आप ?"

"सच कह रहा हू हकीम साहब अगर आपकी शान के खिलाफ़ न हो तो फ़क़ीर का तोहफा जानकर कुबूल कर लीजिये।"

"खैर यह तो मुमकिन नही लेकिन शे'र बारगाह तक पहुंचाऊंगा लेकिन एक शर्त है।"

"सर आंखो पर !"

"आज दरबार से महरूम रहिये वरना पेंच पड़ जायेगा।"

"मैं तो हाजिरी के काबिल ही नहीं। कुछ ऐसा ही मिज़ाज है वरना मजा तो आज ही कल दरबार उठाने का था।"

"कोई खास तकलीफ़ ?"

"नही बादशाह की सुर्ख-रूई का फिक्र खाये जाता है'''जरा बेख्वाब भी रहा हूं।"

"वह तो सब खुदा के फ़ज़्ल से फ़तह समझिये। शाहंशाह की जेरे

निगरानी एक इंतज़ामी अदालत बन गयी है पांच रुक्न मुसलमान हैं और पांच हिंदू।"

"हिंदू मिम्बर कौन-कौन है?"

"जनरल गौरी शंकर, सूबेदार बहादुर जीवाराम, वेतराम, शिवराम, और वेनीराम। जलसे हो रहे हैं, फ़ैसले किये जा रहे हैं कल तरावीह[1] के बाद जो इजलास हुआ तो सेहरी[2] का वक़्त हो गया।"

"कल क्या कोई ख़ास बात थी?"

"आपने नहीं सुना?"

"नहीं···ख़ैरियत है?"

"राजा किशनगढ़ की कोठी में बहुत से अंग्रेज छुपे हुए थे मुंशी महरुल इस्लाम ने मुख़बिरी कर दी। बस क़यामत आ गयी। सैकड़ों सवार तोपें लेकर पहुंच गये और एक-एक को काटकर फेंक दिया। अभी यह हंगामा बरपा था कि चौधरी चमन ने आग लगा दी और किले में जो अंग्रेज औरतें और बच्चे खुद बादशाह की हिफ़ाजत में थे उन्हें छीनकर ज़िबह कर दिया।"

"मुंशी महरुल इस्लाम को तो ख़ैर खूब जानता हूं लेकिन यह चौधरी चमन क्या बला है?"

"चौधरी चमन को नहीं जानते आप···किले में लाल पर्दे के पास ख्वामख्वाही मंडलाया करता है।"

"कुछ हुलिया बतलाइये हकीम साहब!"

"हुलिया ऐसा है कि बादशाही चेहरा नवीस कलम तोड़कर बैठ रहे।"

"यानी?"

"कद लम्बा न छोटा, रंग उजला न मैला इंतिहा यह कि दाढ़ी भी दाढ़ियों की किसी किस्म में शामिल नहीं। बस दाढ़ी। तिल-चावली होने लगी है। आंखें पत्थर की बनी हुई। चेहरा लोहे का ढला हुआ। न खुशी

1. रमजान के बाद आठ या बीस रकातें सुन्नत की पढ़ना 2. रमजान में सुबह से पहले खाना

में हंसता है न ग़मी मे रोता है यानी कुदरत ने अपने हाथ से जासूस बनाकर भेजा है। शिकारपुर के एक गांव की इनायत है जो दिल्ली पर उतरी है। गाव में फिरंगियों की 'हाज़िरी' के लिए सुअर पालता है और शहर में लाल पर्दे की मक्खियां उड़ाता है। ग़ज़ल जोड़ता है। दास्तान गाठता है और इंशा[1] टांकता है। छावनी में गोरों को उर्दू पढ़ाता है। उनके गिलासों की बची-खुची शराब जमा करके दाम भी खरे करता है और गरीब-गुर्बा को पिलाकर मुशाइरों की सदारत भी झटक लेता है। अंग्रेज़ी के हाथ-पैर तोड़ लेता है। अंग्रेज़ी-हिंदुस्तानी में मुसलमानों के मसलों पर काग़ज़ स्याह और अपना मुह काला करता है। पीरों-फकीरों की दरगाहों पर जब भूत-चुड़ैलों की मारी औरतें आती हैं तो अपने सफेद आकाओं को ले जाकर नज़ारे कराता है और झोलियां भर-भर इनाम पाता है। सुना है किसी क्रिस्तान से ब्याह रचाया था जब बालों में सफेदी फूटने लगी तो लात मारकर वह किसी और के घर बैठ रही अब बच्चे भी पालता है।"

"आपने बच्चे पालने का ज़िक्र यू किया कि मैं समझा अब आप फरमायेंगे दूध भी पिलाता है।"

"वल्लाह मीरज़ा साहब अगर वह भी देता तो ग़लत न होता कि ऐसे मर्द, मर्द नही हिजड़े होते हैं और हिजड़ों और औरतों में कुछ ऐसा फर्क भी नही होता। अच्छा अब इजाज़त दीजिये। धूप तेज़ होने लगी है।"

"यू भी हकीम साहब घर मे खातिर करने को क्या होना है लेकिन आप रोज़े मे हैं।"

"सुबहान अल्लाह मीरज़ा साहब! शर्मिंदा करने का हुनर कोई आपसे सीखे और यह 'रोज़े मे हैं' की बात का जवाब नहीं।"

वह हंसते हुए खड़े हो गये। उसने पालकी तक साथ दिया।

ईद की चांद रात को दारोग़ा-ए-चांदनी खाना ने क़िला-ए-मुबारक को रोशन किया था कि रात की गोद मे दिन उठाकर डाल दिया था। बहादुर शाह को बहुत दिनों बाद उसने इतने क़रीब मे देखा था। उसकी उम्र

1. व्याकरण

निगरानी एक इंतज़ामी अदालत बन गयी है पांच रुक्न मुसलमान हैं और पांच हिंदू।"

"हिंदू मिम्बर कौन-कौन है?"

"जनरल गोरी शंकर, सूबेदार बहादुर जीवाराम, वेतराम, शिवराम, और वेनीराम। जलसे हो रहे है, फैसले किये जा रहे हैं कल तरावीह[1] के बाद जो इजलास हुआ तो सेहरी[2] का वक्त हो गया।"

"कल क्या कोई ख़ास बात थी?"

"आपने नहीं सुना?"

"नहीं···ख़ैरियत है?"

"राजा किशनगढ की कोठी मे बहुत से अंग्रेज छुपे हुए थे मुंशी महरुल इस्लाम ने मुख़बिरी कर दी। बस कयामत आ गयी। सैकड़ों सवार तोपें लेकर पहुंच गये और एक-एक को काटकर फेंक दिया। अभी यह हगामा बरपा था कि चौधरी चमन ने आग लगा दी और किले मे जो अंग्रेज औरतें और बच्चे खुद बादशाह की हिफ़ाज़त में थे उन्हे छीनकर जिबह कर दिया।"

"मुंशी महरुल इस्लाम को तो ख़ैर ख़ूब जानता हूं लेकिन यह चौधरी चमन क्या बला है?"

"चौधरी चमन को नहीं जानते आप···किले मे लाल पर्दे के पास ख्वामख्वाही मंडलाया करता है।"

"कुछ हुलिया बतलाइये हकीम साहब!"

"हुलिया ऐसा है कि बादशाही चेहरा नवीस कलम तोड़कर बैठ रहे।"

"यानी?"

"कद लम्बा न छोटा, रंग उजला न मैला इतिहा यह कि दाढी भी दाढियों की किसी किस्म में शामिल नहीं। बस दाढी। तिल-चावली होने लगी है। आंखें पत्थर की बनी हुई। चेहरा लोहे का ढला हुआ। न खुशी

1. रमज़ान के बाद आठ या बीस रकातें सुन्नत की पढ़ना 2. रमज़ान में सुबह से पहले खाना

मे हसता है न गमी मे रोता है यानी कुदरत ने अपने हाथ से जासूस बनाकर भेजा है। शिकारपुर के एक गाव की इनायत है जो दिल्ली पर उतरी है। गाव में फिरगियो की 'हाज़िरी' के लिए सुअर पालता है और शहर मे लाल पर्दे की मक्खियां उडाता है। गज़ल जोड़ता है। दास्तान गाठता है और इंशा[1] टाकता है। छावनी मे गोरों को उर्दू पढाता है। उनके गिलासो की बची-खुची शराब जमा करके दाम भी खरे करता है और गरीब-गुर्बा को पिलाकर मुशाइरो की सदारत भी झटक लेता है। अंग्रेजी के हाथ-पैर तोड लेता है। अंग्रेजी-हिंदुस्तानी में मुसलमानो के मसलो पर कागज़ स्याह और अपना मुह काला करता है। पीरो-फ़क़ीरों की दरगाहो पर जब भूत-चुडैलो की मारी औरतें आती है तो अपने सफेद आकाओ को ले जाकर नज़ारे कराता है और झोलिया भर-भर इनाम पाता है। सुना है किसी क्रिस्तान से ब्याह रचाया था जब बालों में सफेदी फूटने लगी तो लात मारकर वह किसी और के घर बैठ रही अब बच्चे भी पालता है।"

"आपने बच्चे पालने का ज़िक्र यू किया कि मैं समझा अब आप फरमायेंगे दूध भी पिलाता है।"

"वल्लाह मीरज़ा साहब अगर वह भी देता तो गलत न होता कि ऐसे मर्द, मर्द नही हिजडे होते है और हिजडों और औरतों मे कुछ ऐसा फ़र्क भी नही होता। अच्छा अब इजाजत दीजिये। धूप तेज होने लगी है।"

"यू भी हकीम साहब घर मे खातिर करने को क्या होता है लेकिन आप रोज़े से हैं।"

"सुबहान अल्लाह मीरजा साहब! शर्मिंदा करने का हुनर कोई आपसे सीखे और यह 'रोज़े से हैं' की बात का जवाब नहीं।"

वह हंसते हुए खड़े हो गये। उसने पालकी तक साथ दिया।

ईद की चाद रात को दारोगा-ए-चादनी खाना ने किला-ए-मुबारक को रोशन किया था कि रात की गोद मे दिन उठाकर डाल दिया था। बहादुर शाह को बहुत दिनो बाद उसने इतने करीब से देखा था। उसकी उम्र

1. व्याकरण

जैसे दस-बीस साल कम हो गयी थी। बादशाह तसबीहखाने में जुलूस किये हुए था कि शाहजहानी मस्जिद के इमाम ने ईद के चाद की मुबारकबाद पेश की। साथ ही दोनो दरवाजो से तोपें सर होने लगी। मीरज़ा मुग़ल कमांडर इन चीफ ने पहला मुजरा पेश किया। शाहज़ादो और अमीरों और वज़ीरो के बाद उसका नंबर आया। मुजरा कुबूल करके आंख से ठहरने का इशारा हुआ। वह दीवार से लगकर खड़ा हो गया। खड़ा रहा कि खासा-ए-कलां व खुर्द व आबरदारखाना,[1] दवाखाना, तोशाखाना, जवाहरखाना, सिलहख़ाना,[2] फीलखाना, शुतुरखाना, बग्धीखाना और कारख़ाना-ए-जुलूसो माही मरातिब[3] और मालूम नही कितने खानों के दारोगाओ के जत्थो ने सलाम के लिए हुजूम किया। फिर सिपाही पलटन, अगरई पलटन खास बरदारान और बछेरा पलटन के कर्नल और कप्तान आ गये। बछेरा पलटन शाहज़ादा जवांबख्त की उम्र के सिपाहियों से सजी हुई थी जब सामने के मैदान से गुज़रती तो दिल का अजब आलम हो गया। सोलह-सत्तरह साल के कप्तान ने तलवार निकालकर सलामी दी कि जान निकालकर कदमों मे डाल दी। मालूम नही अंग्रेज की किस तोप का चारा हुआ। दोपहर रात गये जब हुजूम कम हुआ तो बादशाह नमाज़ के लिए उठा,

"आज मीरज़ा नोशा हमारे साथ नमाज़ पढ़ेंगे।"

"ज़िल्ले सुबहानी का हुक्म सर आंखों पर।

मोती मस्जिद रोशनी का घर बनी थी। मेहराब मे जगमगाते हुए सच्चे मोतियों के लच्छे से एक अशर्फी निकालकर उसकी तरफ बढ़ा दी।

"ज़िल्ले सुबहानी!"

"मीरज़ा नोशा समझते होंगे कि हम अकबरो-जहांगीर हो गये। खाना ए-खुदा की क़सम किसको यकीन आयेगा कि वली अहद बहादुर को भी यही एक अशर्फी नसीब होगी।"

"ज़िल्ले इलाही!"

लेकिन ज़िल्ले इलाही तो जा चुके थे। अशर्फी उसके हाथ पर एक

1 खाद्य-विभाग 2 शस्त्र विभाग 3. ध्वजो और पताकाओं का विभाग

जख़्म की तरह रखी थी और वह खड़ा था।

हज़रते देहली की ईदें देखते-देखते वह बूढ़ा हो चुका था लेकिन वह रात अजीब रात थी जैसे सारा शहर बाज़ारों में उतर पड़ा हो, दुकानों में में उमड आया हो, सड़कों पर निकल आया हो। चादनी चौक से अजमेरी दरवाज़े तक खव्वे से खव्वा छिल रहा था। साहबे कुराने सानी शाहजहा के सुनहरे युग में भी चादनी रात ऐसी ही होती होगी। लाल हवेली के फाटक पर दस्तक दी तो देर के बाद खिड़की खुली। रात के लिबास में चुगताई बेगम ढलते सूरज की तरह दमक रही थी। उसने अशर्फ़ी हाथ पर रखी तो हाथ खींच लिया।

"आज इस तरह तकल्लुफ़ की क्या आफ़त आयी है मीरज़ा साहब!"

"तुमको देखे हुए सेंतीस साल हो गये तुमको चाहे हुए पेंतीस साल बीत गये हमने कभी तुमको कुछ न दिया लेकिन आज यह एक अशर्फ़ी रख लो। यह पहली अशर्फ़ी है जो ग़ालिब को ईद मनाने के लिए बादशाह के हाथ से मयस्सर आयी है। यह एक अशर्फ़ी नहीं तख़्ते हिंदोस्तान के वली अहद की ईदी है। खुदा की क़सम आज हमारी नज़र में अकबरो-जहांगीर के मुल्कुल शौरा हकीर हो गये कि दौलते मुग़लिया का कौन-सा मुल्कुल शौरा है जिसे वली अहद की ईदी नसीब हुई हो, जिस के उम्र भर के इनाम व तोहफ़े उस खज़ाने की गर्द को भी पहुंच सकते हों।"

शहर की तरह उसकी गली भी जाग रही थी। दोनों बच्चे अपने-अपने कपड़े और जूते सिरहाने धरे न सिर्फ़ जाग रहे थे बल्कि उछल-फांद रहे थे। उमराव बेगम औरतों की पूरी मंडली के साथ जुटी हुई थी। बच्चे अपना सामान खोलकर बैठ गये और वह दीवानख़ाने में चला आया ख़फ़्तान उतार रहा था कि चार का गजर बज गया। तकिये पर सर रखा तो ख़्यालों का पिटारा खुल गया।

ईदगाह पर सारी दिल्ली सिमट आयी थी। दरवाज़े के एक तरफ़ जनरल

भवानो राम केसरी बाना पहने, जड़ाऊ हथियार लगाये, दूल्हा बने हाथी ऐसे घोड़े पर सवार खड़े थे। दूसरी तरफ जनरल समद खा सुनहरी अंगरखे पर हरी चादर डाले सिर से पांव तक उपची बने हुए मचलते घोड़े पर जमे थे। उनके पीछे दूर तक उनके रिसालों के घोड़े मौजें मार रहे थे। प्यादों का कोई शुमार न था। बूढ़े और बच्चे तक हथियारों से लैस थे। फिर अचानक बड़े-बड़े ऊंटों पर धरे डंके बजने लगे। उनके पीछे मुजाहिदो[1] के दस्ते आ रहे थे। कम थे जिनके लिबास साबित और हथियार पूरे थे लेकिन आंखों में वफा और चेहरों पर चमक थी। और उनके झंडों पर बालाकोट की नाकाम लड़ाइयों की खूनी तारीख लिखी थी। फिर शाही निशानों के हाथी नज़र आने लगे। सबसे आगे एक बहुत बड़े हाथी पर मुग़लों का रिवायती झंडा था। उसके इर्द-गिर्द सवारों की नंगी तलवारें चमक रही थीं। उसके बगल में छः हाथियों पर दीगर झंडे और निशान तड़प रहे थे। फिर सिपाही पलटन के रिसाले थे। कम थे जिनके बदन सुते और घोड़े छके थे। अक्सर मोटे, भद्दे, बूढ़े, दुबले बीमार घोड़ों पर वैसे ही सवार धराऊ कपड़े पहने बैठे थे। अब वह सवारी थी जिसके सवार से पूरी दिल्ली परिचित थी। मौला बख्श[2] की अम्मारी में बादशाह था और खवासी में मीरज़ा मेंढू'''सलामी की तोपें छूटने लगीं। मौला बख्श के पीछे बछेरा पलटन के सब्ज़ा आगाज़ नौजवान अमायदीन[3] देहली के चश्मो चिराग वली अहद बहादुर की कमान में इस तरह चल रहे थे जैसे कत्ल गाह के तमाशे को निकले हों। अब मीरज़ा मुगल कमांडर इन चीफ का हाथी जो अपने सवार की तरह सिर से पांव तक ज़रबफ्त व अतलस में ढका था। उनके पीछे शाहज़ादों और सुल्तानों की सवारियों का समंदर और हुडबोंग और उनके पीछे हद्दे निगाह तक सवार ही सवार और प्यादे ही प्यादे। ईदगाह के दरवाजे पर मौलाबख्श के पहुंचते ही जनरल भवानी राम के इशारे पर फौजी बाजे बजने लगे। चांदी के ड्रम, मोरबीनें, झलाझल की कमानें और झांझें बजाता हुआ एक दस्ता आया। कमांडर ने चांदी की छड़ी से बादशाह को सात बार सलाम किया और

1. धर्म-योद्धा 2 बादशाह के हाथी का नाम 3 अमाद का बहुवचन (प्रतिष्ठित लोग)।

चला गया। बादशाह के जमीन पर कदम रखते ही अल्लाहो अकबर के नारों से मस्जिद हिलने लगी। सेहन में पहुंचकर बादशाह ने मस्जिद के इमाम को तलवार और खिलअत अता की। और अगली सफ में बैठ गये। दारोगा-ए-आबदार खाना ने सुराही की मुहर तोड़ी। और चांदी के कटोरे में पानी पेश किया। बादशाह ने एक खवास के हाथ से बीनीपाक लेकर मुंह साफ किया और हाथ बाधें खड़े हुए इमाम को देख लिया। और नमाज के लिए सफें खड़ी होने लगी।

नमाज पढ़कर वह जाने के लिए उठने को हुआ तो दिल ने कहा इस ईदगाह को पूरी एक सदी बाद ऐसी नमाज नसीब हुई है देख लो कि शायद आखिरी नमाज हो, बैठ गया। बादशाह फतवा दे रहा था और वह सोच रहा था कि सब कुछ है वह तंज़ीम[1] नहीं है जिसकी एक जंजीर में शेरों और बकरियों की गर्दनें बंधी हुई हैं। यह एक शानदार तोपखाना है लेकिन बिखरा हुआ। बैठक कहीं, नाल कहीं, गोला कहीं, बारूद कहीं, निशाना कहीं, दुश्मन कहीं...अगर इस फौज के समंदर को कोई बाबर मिल गया होता, कोई अकबर नसीब हुआ होता तो क्या कयामत होती! बादशाह उठा तो ख्वाजासरा मेहबूब अली खान, हकीम अहसन उल्लाह और इलाही बख्श अपने-अपने मुखबिरों की टोलियों के साथ हटो-बचो करने लगे। दिल्ली का बच्चा-बच्चा जानता था कि कहनी-करनी तो एक तरफ बादशाह का ख्याल तक यह तीनो पहली फुरसत में अंग्रेजों तक पहुचा रहे हैं लेकिन अगर नहीं जानता था तो बादशाह नहीं जानता था। एक भेदी ने पूरी लंका ढा दी। यहां तो पूरा किला और आधा शहर भेदी बना हुआ था।

गली-गली कूचा-कूचा ईद की मुबारकबादियों से झलक रहा था जैसे यह बात सबको मालूम हो कि शायद आज के बाद यह ईद न आये। जिसके पास खुशियों का जितना खजाना था दोनों हाथों से लुटा रहा था। जिसको जहां से जितना कर्ज मिल सकता था ले रहा था और फूंक रहा था। उसके घर इतने लोग कभी ईद मिलने नहीं आये। इतनी उमंग से मिलने नहीं आये। शाह को मुबारकबाद देने जाने के लिए उसका हवादार खड़ा

1. व्यवस्था

सूख रहा था और वह लोगों से गले मिल बड़ी मुश्किल से सवार हो सका। किले के नक्कारखाने से लाल पर्दे तक आदमियों की गंगा-जमना बह रही थी। भेंट नामुमकिन नज़र आयी तो उलटे पैरों वापस हुआ और लाल हवेली के लिए सवार हो गया।

लाल हवेली के साथ फाटक पर खड़े हुए सिपाहियों की बंदूकों के गिलाफ तक नये थे। कदम रखते ही बेगम से सामना हो गया।

"बालों में मेंहदी सब लगाते हैं चुगताई बेगम लेकिन जैसी तुम्हें रचती है और फबती है वैसी देखी न सुनी।"

"अल्लाह मीरज़ा साहब! अल्लाह मीरज़ा साहब आप भूल रहे हैं ईदी आप मुझे रात दे चुके।"

"तुम्हारे सर की क़सम सही कह रहा हूं तुम्हारी उम्र की औरतें अलगनी पर पड़ी झूल रही हैं और तुम हो कि सर से पांव तक सारंगी का तार बनी हुई हो।"

बेगम उसके दामनों पर इत्र मलती हुई बोली, "अच्छा अब मसनद पर बैठिये तो मुंह मीठा कराऊं।"

आन की आन में कनीज़ों ने यहां से वहां तक दस्तरख्वान चुन दिया। छतों पखा चल रहा था लेकिन एक औरत फ़र्शी पंखा लेकर खड़ी हो गयी वह टोपी और खफ्तान उतारकर आराम से बैठ गया।

"आज ईद पर जो रौनक है ऐसी कभी और भी देखी मीरज़ा साहब!"

"यह रौनक नहीं है बेगम मरीज़ का आख़िरी संभाला है। बुझती हुई शमा की तड़प है।"

"ऐ नौज···मीरज़ा साहब!"

"ज़िंदगी भर आपने मेरी कौन-सी बात मान ली जो यह मान लीजियेगा। अच्छा यह बताइये नवाब की कुछ खैर-ख़बर है।

"जी हां, बड़ी धूम की ईदी आयी है। एक सौ एक अशर्फ़ियां और एक सौ एक थान तो सिर्फ़ मेरे नाम से आया है। सिपाहियों का क़ौल है कि रिसाले तैयार हो रहे हैं। तोपख़ाने सज रहे हैं। बड़ी कड़क-धमक से आने का इरादा है।"

इस खबर ने नाराज कर दिया। बेगम ना-ना करती रही लेकिन उठ कर सवार हो गया।

दीवाने-खास से मुजरा करके निकल रहा था कि महलात आलिया से रोने-पीटने की अवाजें आने लगी। मालूम हुआ मीरजा अबू बकर सालार लश्कर होकर हिंडन नदी पर अंग्रेजों से लडने जा रहे हैं। सिर से पांव तक दूल्हा बने दोनों बाजुओ पर इमाम जामिन की पोटलिया बांधे बरामद हुए। मीरजा मुगल कमाडर इन चीफ ने कुछ हिदायतें दी जैसे खुद बदौलत दर्जन भर पानीपत मार चुके हों। उनसे छूटकर बेचारा छैल-छबीला शाहज़ादा मजबूरन हाथी पर सवार हो गया। तोपों की बैठको पर लूट के माल की गढ़िया लदी थी नालों में झूलियां पडी थी। घोडो के हिरने; गर्दनें और पुट्ठे, सवारो के पहलू और पीठ कोई जगह ऐसी न थी जो सामान के छोटे-बडे दस्त बुकचों से खाली हो। पैदलो की हालत उनसे भी बदतर थी। सामान से जिस तरह लदे-फंदे थे, वे तो खैर थे ही। सितम यह था कि अक्सर के हाथों में हुक्के थमे हुए थे। चिलमें सुलग रही थीं, दम लग रहे थे और जो इस मज़े से मेहरूम थे वे उपले दबाये हुए थे। कोयले समेटे हुए थे। भुना हुआ अनाज फांक रहे थे और पान चबा रहे थे। लिबास से मालूम होता था कि या तो डाका डालने जा रहे हो या किसी की बारात मे शरीक होने जा रहे हों। उनके दरम्यान कुछ सिपाही भी थे जो इस भीड़ में अजनबी लग रहे थे। और दूर से चमक रहे थे। और उन पर तरस आ रहा था।

दूसरा दिन डूब रहा था कि इस लडाई की सुनावनी आ गयी।

हिंडन नदी के किनारे जब अंग्रेज़ी तोपखाने का सामना हुआ तो शाहज़ादे बहादुर दूर एक छत पर खडे कमान कर रहे थे या तमाशा देख रहे थे। करीब में गोला फटने से इस तरह बेहवास होकर भागे कि उनके हवा ख्वाहों के बोझ से पुल टूट गया और सिर्फ दो सौ आदमी डूबकर मर गया।

फिर शोर हुआ कि शाहजादा कर्नल खिज्र सुलतान अपनी पलटन लेकर अलीपुर की तरफ़ कूच कर रहे है। उसने भी हजारों तमाशाइयों की सफ़ों मे घुसकर उनकी रुखसती का दीदार किया। सब कुछ वैसा ही

था जैसा कुछ वह देख चुका था सिर्फ लश्कर और उसके सालार का नाम बदल गया था। अंजाम भी वह हुआ जो हो चुका था और होना चाहिए था।

वह दिन भी अक्सर दिनो की तरह बुरी खबरों से ज़र्द हो रहा था। हवादार मुफ्ती सदरुद्दीन 'आज़ुर्दा' के मकान के सामने से गुज़रा तो वह उतर पडा। अदर पहुचा तो देखा कि मुफ्ती साहब और हकीम आगा खा 'ऐश' और राकिमुद्दोला ज़हीर देहलवी सब बुत बने बैठे थे। आदाबो-तस्लीमात के बाद 'आज़ुर्दा' से खामोशी का सबब पूछा तो उन्होंने ठंडी सास भरकर ज़हीर देहलवी की तरफ इशारा कर दिया। उसके इसरार पर वह बोले,

"जासूस वज़ीर आज़म और मुखबिर साहबे आलम इलाही बख्श ने नीली वर्दियो मे मलबूस दो सिपाहियों को मीरज़ा मुगल के सामने पेश किया। सिपाहियों ने तारीख और वक्त और मुकाम तै कर के वायदा किया कि जैसे ही मीरज़ा मुगल का अंग्रेज़ों से सामना होगा वह अपनी पूरी बटालियन के साथ अपनी बदूकें अंग्रेज अफ़सरों की तरफ घुमा देंगे और देखते ही देखते पहाड़ी फतह हो जायेगी। बेवकूफ़ मीरज़ा मुगल की भोली फौजो ने तै किये वक्त पर हमला कर दिया और पलक झपकते ही पूरी फौज के धुए उड गये। सैकडो-हज़ारो सिपाही इस साज़िश की नज़र हो गये और अंग्रेज़ो ने पहाडी पर तोपखाना कायम करके अपनी कुव्वत और बढा ली।"

मुफ्ती साहब जैसे अपने-आपसे मुखातिब हुए, "सब्ज़ी मंडी की तरकारिया और फल हमे देखने को नसीब नही और अंग्रेज़ी कैंप में जानवर खा रहे हैं और हमारे भाई पहुंचा रहे है।"

राकिमुद्दोला ने नमक-मिर्च लगाया, "कितने ही मोलवियों ने ऐलान कर दिया है कि यह लडाई हमारी लड़ाई नही है। चलिए छुट्टी हुई।"

खादिम ने मेवे की प्लेटें और फालूदे के गिलास लाकर रख दिये। मुफ्ती साहब ने गाव तकिये से हटकर सबसे फ़र्दन-फ़र्दन[1] गुज़ारिश की।

1 व्यक्तिशः

और सभों ने गिलास उठा लिये कि खामोश रहने का बहाना मिल गया। पान के चुनगीरो के साथ सबके सामने हुक्के लगा दिये गये। कई कश लेकर मुफ्ती साहब पहली बार बोले,

"जग पलासी की सौसाला यादगार इस तरह मनायी गयी कि अग्रेज ने हज़ारो गर्दनें काट कर फेंक दी। और कुदसिया बाग और सब्ज़ी मडी पर धावे करने लगे।"

जी मे आया कि लडाई के अजाम पर गुफ्तगू कर ले लेकिन नवाब तजम्मुल हुसैन खां की नसीहत याद आ गयी। वह खामोश बैठा रहा।

वह महल सराय के दस्तरख्वान से उठ रहा था कि उमराव बेगम ने दामन पकड लिया और बोली,

"जिस का दाना-दाना चुक गया। आदमी जब तनख्वाह का तकाज़ा करते है कहां तक बहलाऊ? क्या करू आखिर?"

वह इंतज़ाम का आसरा देकर उठ आया। दीवानखाने मे पहरों लेटा सोचता रहा कि बादशाह से क्या कहे और किस मुह से कहे? न कहे तो क्या करे? अंग्रेज़ी पेंशन तो खैर गयी किले की तनख्वाह तक के लाले पड़े है। मालूम नहीं कब सोया कब उठा? होश आया तो गली में हगामा बरपा था कि बरेली से बख्त खां चौदह हज़ार सवार लेकर आ गया है। बादशाह ने अपने ससुर नवाब मुर्शद कुली खा को पेशवाई के लिए शाहदरा भेज दिया है और पहाडी पर फिरंगी फौज मे सन्नाटा छा गया है।

बादशाह तख्ते-ताऊस पर दरबार कर रहा था कि पुख्ता उम्र का एक ऊंचा शानदार आदमी पेश हुआ। सिर पर सफेद अतलस की पगड़ी बर्मी सफेद चिकन का नीची चोली का अगरखा, कमर मे सब्ज जरबफ्त का पटका पहने गुलालबार पर सिर झुका रहा था। फिर आवाज़ आयी,

"लार्ड गवर्नर जनरल मोहम्मद बख्त खा साहब बहादुर को माबदौलत[1] ने फ़ौज का इख्तियार कुल[2] और शहर का इतज़ाम अता किया।"

खिलअत हफ्त पारचा मय रकूम जवाहर[3] इनायत हुई। बादशाह ने

1. बादशाह का स्वय के लिए संबोधन 2. सर्वाधिकार 3. सात रत्न और सात वस्त्रों की सबसे बड़ी शाही पोशाक

अपने हाथ से कमर में तलवार बांधी। वह सलाम करके उलटे कदमों वापस हुआ तो पेशवा नाना साहब का भाई बाला साहब पेश हुआ। लंबा इकहरा अधेड़ आदमी खिलअत पहनकर और बादशाह के हाथ से खपवा लगाकर रोने लगा। इसके बाद मौलवी सरफ़राज़ अली जो जिहादियों की एक जमात के साथ हाज़िर हुए थे, आये। दोपहर की तोप तक जनरल बहादुर के हमराहियों के नामी-गरामी नाम हाज़िर होते रहे और मुजरा कुबूल होता रहा। और खिलअतें तकसीम होती रहीं। फिर अचानक वजीरे आज़म ने दरबार बरख़्वास्त होने का इशारा कर दिया। जनरल बहादुर को बाला साहब के साथ रोक लिया गया। बाकी तमाम हाज़रीन के साथ वह भी उलटे कदमों सलाम करता वापस आ गया। सुलतानो की गुफ्तगू से मालूम हुआ कि बादशाह जनरल के साथ तफ़सीली गुफ्तगू करना चाहता है और शाहज़ादों के चेहरे गज़ब से लाल हो रहे थे। मीरज़ा मुगल और अबू बकर जो फौज की मदद से खुद बादशाह होना चाहते थे, बिफरे जा रहे थे। लाल पर्दे के पास एक शाहज़ादे ने इरशाद किया,

"गुलाम कादिर का खून है सल्तनत की नहीं इज़्ज़त आबरू की खैर मनाइये साहिबे आलम!"

उसने मूछों पर ताव देकर जवाब दिया,

"वह पानी मुल्तान बह गया। आंख टेढ़ी की तो सीने पर बंदूक खाली हो जायेगी।"

"हुज़ूर जुम्ला खूब ही हो गया! इक ज़रा सीने की जगह पीठ कर लीजिये तो क्या बात है!"

और खुशामदियों ने कहक़हा लगा दिया। यानी अपनी रोटी चुपड़ी और चलते हुए।

नक्कारखाने का अमला फौजी बैंड बजाने वालों के करतब देख रहा था। किले के देहली दरवाज़े से लाहौरी दरवाज़े तक जनरल की तोपों का ज़ंजीरा खुला पड़ा था। जिनके इर्द-गिर्द दर्जनों हाथियों और सैकड़ों घोड़ों और हज़ारों पैदलों का पहरा खड़ा था। रंग-बिरंगे झंडे और परचम लहरा रहे थे और दिल्ली के मनचले घटा मस्जिद से चांदनी चौक के मुहाने

तक हुजूम किये हुए थे। जिहादियों ने जामा मस्जिद के पूरबी दरवाज़े पर छावनी डाल दी थी। दूर तक उनके ऊंट खड़े जुगाली कर रहे थे। इक्का-दुक्का घोड़े भी नजर आ रहे थे। तमाम बाज़ारों में एक ही ज़िक्र था। जनरल बहादुर के आने का ज़िक्र था। जैसे बरेली से बख़्त खां नहीं आसमान से मसीहा उतर पड़ा हो।

अब एक-एक मस्जिद पर जिहाद[1] का फ़तवा लगा था। जगह-जगह पर जिहाद के मसलों पर तकरीरें हो रही थीं। तमाम बड़े-बड़े आलिमों और मुफ़्तियों और मौलवियों ने दस्तख़त कर दिये थे। जिन्होंने इंकार किया वे बांध लिये गये और मुक़दमा क़ायम हो गया। जनरल के हुक्म से नमक और शकर का महसूल माफ़ कर दिया गया। थानेदारों को जरनैली हुक्म पहुंचा कि इलाके की बद अम्नी की जिम्मेदारी तुम्हारी गर्दन पर होगी। शहज़ादों का परवाना मिला कि शहर के इंतज़ामी मामलों में दख़लदाज़ी करने वालों को सख़्त सज़ा दी जायेगी और पूरे शहर में जैसे सुकून हो गया। इसी सुकून के ज़माने में वह चांदनी चौक से गुज़र रहा था कि अचानक बाज़ार में हलचल मच गयी। वह नहर के किनारे हवादार से उतर पड़ा। सामने इत्र की दुकान पर जनरल बख़्त खां घोड़े पर सवार खड़ा था हथियार बंद सवारों का रिसाला दूर तक बिखरा हुआ था।

"इत्र लाओ···सबसे उम्दा इत्र लाओ!"

जनरल बहादुर ने गरज कर हुक्म दिया। दुकानदार ने घिघियाकर देखा और कंटर दोनों हाथों में थाम कर पेश किया। जनरल ने काग उड़ाई। सूंघा और रकाबों पर घूमकर पूरा कंटर अपने स्याह घोड़े की दुम पर उंडेल दिया। कंटर दुकान पर फेंक आगे बढ़ गया। वह देर तक जहां खड़ा था खड़ा रहा और दुकानदार दोनों हाथों में कंटर थामे बैठा रहा।

1 धर्म-युद्ध

चाक-चाक दिनो और तार-तार रातों की रफूगरी से उंगलियां थक गयी थी, कलम संभाले न सभलता था कि चार-छ: भारी-भरकम मौलवी साहवान ने बगैर हाके-पुकारे 'सलामालेकुम' का बिगुल बजाया और हल्ला बोल दिया और बगैर किसी देर के जिसको जहा जगह मिली फैलकर बैठ गया।

"फरमाइये मैं आपकी क्या खिदमत कर सकता हू ?"

उसने अपनी आग घूट कर कहा,

"आपको मालूम होगा कि दीन पर वक़्त आ पडा है। हजारों जिहादी यहां पडे हुए जानें कुर्बान कर देने का इंतजार कर रहे हैं। हम लोग उनकी मदद के लिए।"

"आपको मालूम है कि मैं कौन हूं ?"

"जी हां···नज्मुद्दौला दबीरलमुल्क निजाम जंग नवाब मीरज़ा असद उल्लाह खां बहादुर हैं आप।"

"आपको मालूम है कि मेरी नवाबी की जागीर क्या है। बासठ रुपये महीना पेंशन जो सरकार अंग्रेज़ी से मिलती और पचास रुपल्ली तनख्वाह जो दरबार शाही से मुकर्रर है। तीसरा महीना है कि न उधर से एक कौड़ी मिली और न इधर से एक हब्बा[1] नसीब हुआ।"

"खैर अगर आप नकद नहीं दे सकते हैं तो कोई बात नहीं चार आदमियो का खाना करीब की किसी मस्जिद मे भिजवा दिया कीजिये।"

"जनाब वाला मैंने अभी आपसे अर्ज़ किया कि·· "

"आखिर खाना तो आपके यहां पकता होगा ?"

"जी नही···मेरे यहा कपडे पक्ते हैं, मैं कपड़े खाता हूं···सुन लिया आपने ?"

उन्होंने एक दूसरे का मुह देखा और भर्रा मार कर उठे निकलते-निकलते किसी ने कहा,

"नवाब साहब यह तो मस्जिद है आपके पडोस मे यहां दोनों वक़्त बाल-बच्चो को लेकर आ जाया कीजिये। और खाना खा लिया कीजिये।"

1 धेला-कोड़ी

वह सन्न होकर रह गया।

पहरों सोचता रहा कि अगर इन जिहादियों के हाथ पर मुल्क फ़तह होता है तो अंजाम क्या होगा ? शाम होते-होते नवाब अमीनुद्दीन अहमद खां बहादुर भाग गये। मुसाफहा करके मसनद के सामने घुटनों के भर बैठ गये। खामदान और हुक्के से तवाज़ा की फिर पूछा,

"आप कि वाली-ए-मुल्क है फरमाइये मुल्क का क्या ख्याल है ?"

"हम तो एक मुद्दत से घरघुसरा हैं खबर और अफवाह का फर्क भी जाता रहा।"

देर के मौन के बाद नवाब बोले, "मुल्क का हाल अजीब-सा है। जनरल बहादुर ने अलीपुर तक अंग्रेज़ों को ढकेल दिया। लखनऊ फतह हो चुका। कानपुर फतह हो चुका। आगरा फतह हो चुका। जहा से आयी है, फ़तह की खबर आयी है।"

"लेकिन पहाड़ी पर तो अग्रेज उठा हुआ है।"

"कब तक···पजाब के रास्ते बंद हुए और उसने हथियार डाले। कमांडर इन चीफ जनरल रीड ने इस्तीफा दे दिया। चेम्बरलेन मारा गया। सुना है अब विलसन कमाडर इन चीफ मुकर्रर हुआ। बस जनरल बहादुर और मीरज़ा मुगल की चिकल्लस ज़रा उलझन बनी हुई है। वरना···"

"बहादुर तुमको बहुत सधा हुआ रहना चाहिए।"

"वह तो है। बादशाह ने कितना इसरार किया लेकिन हमने कलमदान वज़ारत[1] कुबूल न किया।"

"हा मिया कितने है जिनको रोटी तुम्हारे हाथ से मिलती है अपना नही तो उनकी रोटियो का ख्याल रखना।"

वह लाल हवेली को सवार जामा मस्जिद के नीचे से गुज़र रहा था कि डके बजने लगे। पलक झपकते ही भीड इकट्ठा हो गयी। डके के ऊटों के पीछे पचास-पचपन की एक मजबूत औरत स्याह घोडे पर सवार खडी थी। कफन पहने, बंदूक लटकाये, तलवार बाधे डके थमने का इतज़ार कर रही थी। आवाज़ थमते ही नियाम से तलवार निकाली आसमान की

1. मत्री-पद

तरफ़ बुलंद की और तनतने से गरजी,

"खुदा ने तुम्हें बहिश्त[1] मे बुलाया है जिसको चलना है हमारे साथ चले।"

उसकी आवाज़ में भी उसके चेहरे की तरह ताब बाकी थी। अल्लाहो अकबर का नारा बुलंद होते ही नौजवानों के ठठ के ठठ उसके साथ हो लिये। वह उन्हें देखता रहा जहां तक नज़र आये देखता रहा। फिर वापसी का हुक्म दिया। घर पहुंचकर तकिये पर सिर रख दिया। सोचता रहा। यहां तक कि सिर कटने लगा।

मौसमों की रंगीनी तो पहाड़ों को रंगजार बना देती है वह तो आदमी था। महलसराय से बेसनी रोटी खाकर आया तो पानी फिर बरसने लगा दारोग़ा को हुक्म दिया कि जैसे ही पानी थमे पालकी लगा दी जाये और खुद गाव तकिये से पीठ लगा ली और पेचवान के घूट लेने लगा। मेह ज़रा की ज़रा थमा भी तो इस तरह कि सारे में अंधेरा फैल गया। उसने टटोल कर अपनी टोपी उठाई और बाहर निकल आया। हल्की-हल्की बूदें पड़ रही थी लेकिन सवार हो गया। हवा ऐसी नम और खनक थी कि बूढ़ी खुश्क हड्डिया नम हो गयी तरतरा गयी। बाज़ारों मे पकवानो और मिठाइयों की दुकानों पर आदमियों के ठठ लगे थे और खान की इच्छा पैदा करने वाली खुशबुओं के बादल उमंड रहे थे। औरतें गुलाबी और धानी पोशाकें पहने, पोर-पोर मेहंदी रचाये, सोलह सिंगार और बत्तीस अबरन की बिजलिया गिराती फिर रही थी। उसने सोचा, यह आम लोग इसी तरह रहेंगे जैसे मौसम इसी तरह रहेंगे। हुकूमत बादशाह की हो या कंपनी की यह इसी तरह खिलते रहेंगे। कैसी-कैसी आंधियां आती हैं, तूफान उठते हैं। बड़ी-बड़ी इमारतें ढह जाती है कोह पैकर दरख्त उखड़ जाते है लेकिन पौधा उसी तरह मुस्कुराता रहता है, नरकुल के गाछ उसी तरह झूमते रहते है जैसे इकलाबो के आतंक पर हस रहे हों।

लाल हवेली के दरवाज़ों ने थोड़ी-सी खिड़की इस तरह खोली जैसे

1. स्वर्ग

कोई आहट लेने के लिए आंख खोलता है। कनीज़ों ने पेशवाई की और मसनद पर बिठा दिया। बेगम देर के बाद आयी। उसने देखते ही मिसरा पढा—

हुई ताख़ीर तो कुछ बाइसे ताख़ीर भी था''''बेगम हम बूझ गये।"

"क्या ?"

"आप मेहंदी धो रही थी।"

"आप तो वली अल्लाह हो रहे है।"

"वली अल्लाह तो हम है। वलियों के वली हो जाते अगर आपसे इश्क न हुआ होता।"

"तोबा! इस बूढे मुह पर इश्क का लफ्ज़ कैसा खपता है ''मुझ *गुनहगार को क्यों घसीट रहे हैं। लाल परी कहिये लाल परी जिसके* इश्क में गर्तें बनवा ली वरना दिल्ली—पूरी दिल्ली आपके पाव धो-धोकर पी रही होती।"

"वह तो अब भी पी रही है। पूछिये क्यो कर'''हमारे लिए दिल्ली का नाम चुगताई बेगम है और चुगताई बेगम!"

"आप जानते है कि यह मौसम मुझे कितना पसंद है। हद है कि आपका तार्रुफ भी इसी के वास्ते से नसीब हुआ। मौसम बरसात पर आप के अशआर न सुने होते तो '''खैर छोडिये मैं यह कह रही थी कि कल से कैसी धूम की बारिश हो रही है लेकिन आप न आयी।"

"वह क्यो ?"

"लीजिये यह भी मेरी जुबान ही से सुनना चाहते हैं'''आप कहा है ?"

"ऐ सुबहान अल्लाह मैं कुर्बान !"

उसने खड़े होकर फर्शी सलाम किया। बेगम लाल हो गयी और आंचल में छुपकर बोली,

"जनरल बहादुर बख्त खा ने अंग्रेजो से तीस हज़ारी छीन ली। कल सुबह जनरल गिरधारी सिंह ने पहाडी पर धावा किया था लेकिन लेकिन इस कमबख्त बारिश ने उनकी बारूद भिगो दी नही तो पहाडी कल ही छीन ली गयी होती।"

"एक बात कहूं बेगम !"

"फ़रमाइये !"

"खुदा जिस कौम को ऊंचा उठाना चाहता है फितरत के इशारे भी उसकी सहूलत के मुताबिक होते हैं यही बारिश तो थी जिसने प्लासी की जंग सिराजुद्दौला के हाथ से छीन कर कंपनी बहादुर की गोद में डाल दी। इस बारिश ने ऐन बारिश के मौसम में मुंह फेर लिया तो टीपू अपनी पूरी फौज के साथ जल मरा···तो बेगम यह पानी नहीं बरस रहा है··· खैर किसी कनीज़ को हुक्म दीजिये कि हमारी तरदामनी का सामान करे।"

"कनीजें मुई क्या कर पायेंगी हम खुद उठते हैं।"

"आप उठेंगी तो बारिश थम जायेगी और हम चाहते हैं कि आज बागियों का पूरा बारूदखाना बह जाये।"

"मीरज़ा साहब !"

"आपके सिर की कसम चुगताई बेगम अब यह कौम जिसका नाम मुसलमान है, हुकूमत के काबिल नहीं रही। पूरी इंसानियत के साथ ज़ुल्म होगा अगर इस कौम को हुकूमत सौंप दी गयी। जिस कौम के हाकिम हुक्म बेचने लगें। आलिम इल्म फरोख्त करने लगें और मुसिफ़ निजी फायदे के तराज़ू पर फैसले तोलने लगें। उसका मुकद्दर है गुलामी, उसका नसीब है महकूमी[1] आपको मालूम है इस कौम के वो लोग, जो हर कौम में इस तरह होते हैं जिस तरह बरसात में मेंढक होते हैं, ग़ालिब के घर चढ़ कर आते हैं। इस बदनसीब से यह नहीं पूछते कि तेरा कौन-सा फाका है ? तेरे घर में तेरा छोटा भाई मर्ज से तड़प रहा है कि भूख से बिलबिला रहा है। चंदा मांगते हैं, नहीं कर्ज़ा तलब करते हैं। और जब उनकी झोली के जहन्नुम का पेट नहीं भरता तो ज़लील करके चले जाते इस नशे में कि उनकी हुकूमत आने वाली है।"

"मीरज़ा साहब !"

"यह सिर्फ इसलिए मुमकिन हुआ कि ग़ालिब देहली के तंग नज़र

1. आदेश पालन

और कोताह अंदेश[1] समाज में एक स्याह भेड की हैसियत रखता है। तुमने हिंदुओं को देखा। रामायण और महाभारत के खालिक[2] को ही नही पृथ्वीराज रासो के भाट को वह इज्जत देते है कि हमारे बड़े-बड़े मुल्कुल-शौरा शर्मा जायें। कभी-कभी ख्याल आता है कि हम किस मुल्क में पैदा हुए, किस कौम मे पैदा हुए और अगर पैदा होना ही मुकद्दर हो चुका था तो जानवर होते या फिर हममे सोच का माद्दा ही न होता!"

"अच्छा हाथ तो छोड़िये।"

"मुगल बच्चे हाथ छोडने के लिए नही पकड़ा करते।"

"ऐ सनोबर…कहां मर गयी कमबख्त जा रुवान लगा कर ला। देख रही है मुर्दार कि मीरज़ा साहब तशरीफ़ रखते हैं।"

और कितनी दिलासाई और दिलदारी से उसके ज़ख्मो पर मरहम रखती रही।

उस दिन उमराव बेगम ने दोशाला बेचकर चूल्हा जलाया था। जेल की रोटियो की तरह रोटी तोड़कर उठा तो अपने आप से घिन आने लगी। थोड़ी देर बाद वह जामा मस्जिद के सामने खड़ा था और सब्ज़ ऊंटो पर रखे हुए डके बज रहे थे। बादशाह की तरफ से मुनादी हो रही थी—

"बक़्र ईद के मौके पर अगर किसी ने गाय की कुर्बानी की तो उसे फासी पर चढा दिया जायेगा।"

लोग सिमट-सिमटकर आने लगे। चेहरो पर नागवारी और आवाजो में गर्मी पैदा होने लगी। शाही दरवाजे पर हुजूम खडा था। जासूसो का बादशाह वज़ीर अहसन उल्लाह खां क़ुर्बानी के किस्से बयान कर रहा था। फिर गाय की कुर्बानी की फजीलत[3] पर गुल कतरने लगा,

"गरीब आदमी जितने पैसो मे एक बकरा खरीद सकता है उनमे

1. सकीर्ण 2. रचयिता 3. औचित्य

थोड़े से पैसे और मिलाकर गाय खरीद सकता है। बकरे पर एक कुर्बानी का और गाय पर सात कुर्बानियों का सवाब हासिल कर सकता है। और यह भी कि बादशाह अपने हिंदू दरबारियों के दबाव में आ गया है। हो सकता है कि जनरल बख्त खां ने अपने सिपाहियों के खौफ़ में बादशाह को यह गैर शरई[1] और कुफ़ आमेज़[2] मशविरा दिया हो। हमको मीरज़ा मुगल के हुक्म का इंतज़ार करना चाहिए।"

निगाह उठायी तो कुर्बान अली बेग 'सालिक' सलाम कर रहे थे। औपचारिकताओं के बाद इत्तला दी कि तमाम थानेदारों के नाम जर्नेली हुक्म आ गया है कि अपने-अपने इलाकों के तमाम बड़े-बड़े जानवर खोल-कर थाने में बंद कर लो। क़साइयों के घरों में घुसकर जानवर छीन लो और खालों की गिनती कर लो। शहर के आसपास के क़स्बों और गावों से जो शख्स गाय बेचने लाये उसे अपने कब्ज़े में ले लो। जो आना-कानी करे उसे बांध लो और ऐलान कर दो कि गाय की कुर्बानी पर मौत की सज़ा दी जायेगी। थोड़ी देर गुज़री थी कि दो घोड़ों की बग्घी पर जनरल बहादुर आ गये। मजमा के करीब पहुंचकर बग्घी पर खड़े हो गये और गरजने लगे—

"भाइयो! अंग्रेज़ के हाथ में हिंदुओं और मुसलमानों के दरम्यान फूट का सबसे बड़ा हर्बा[3] गाय की कुर्बानी है और इसी हथियार के बूते पर वह सौ बरस से हिंदोस्तान पर हुकूमत कर रहा है। शहर के गद्दार मुसलमानों और हिंदुओं से साज़िश करके उसने मंसूबा बनाया कि बक़रईद के दिन जब गाय की क़ुर्बानी पर हिंदू मुसलमान लड़ रहे होंगे वह हमला करके शहर फ़तह कर लेगा। इसलिए हम ऐलान करते हैं कि हमने हमेशा के लिए गाय की कुर्बानी खत्म कर दी जो शख्स इस हुक्म की खिलाफ़ वर्ज़ी करेगा उसे फांसी पर चढ़ा दिया जायेगा। बादशाह को मालूम है कि किले के कुछ गद्दार शहज़ादे शहर के गद्दारों को कुर्बानी पर उकसा रहे हैं। लेकिन जिस वक़्त भी वे पकड़े गये उनकी नाकें कटवा ली जायेंगी।"

1 इस्लाम धर्म की दृष्टि से निषिद्ध 2 पाप से युक्त 3 लड़ाई का हथियार

गाड़ी के जुंबिश करते ही जनरल बहादुर का नारा लगा लेकिन बहुत फुसफुसा था। शाम तक उसी मजमून के इश्तहारों से एक-एक मस्जिद को भर दिया गया। देहली की तारीख मे पहला मौका था जब किसी बादशाह के हुक्म से ऐसा इश्तहार किसी मस्जिद पर चस्पा किया गया हो। एक खामोश सनसनी थी जो सारे शहर पर छायी हुई थी। कसाइयो के घरों पर पुलिस की दौड आ रही थी। भैंस के बच्चे तक की खाल का हिसाब हो रहा था। घर-घर गायों की तलाशी हो रही थी। कूचा-कूचा मुनादी पिट रही थी। बक़्र ईद को रात भी अजीब रात थी। गलियो के पत्थर सवारों के घोड़ों से कड़कते रहे और घरो के दरवाजे प्यादों की आवाजों से बजते रहे। बख्त खां सारी रात घोडे पर सवार गश्त करता रहा। बादशाह ने ईदगाह के बजाय किले की मोती मस्जिद मे बक़्र ईद की नमाज पढी। तसबीह खाने में उसका मुजरा कुबूल हुआ। लेकिन लड़ने का हुक्म न मिला वह उल्टे पैरों वापस चला आया।

बारूद खाने में आग लगते ही न कही मुनादी हुई न कोई नक्कारा बजा लेकिन एक बदखबरी थी कि कूचा-कूचा कोठा-कोठा गश्त करती फिर रही थी। देखते-देखते शहर का रग ज़र्द हो गया। आवाज़ें खांसने लगी। मुस्कुराहटें रोने लगी। बारूद अशर्फियो में तुल रही थी और अशर्फिया साहूकारो की कोठरियो में बद थी और ऊपर अंग्रेज़ी खौफ का पहरा खडा था और जो बाहर थी वह शाहज़ादो की रडियो की गिरह मे कैद थी और धुधली आखें किले पर लगी थी जहा नकली तख्ते ताऊस पर नकली बादशाह बैठा था। सिपाहियों के पेट भरने के लिए अपनी बीवियो का जेवर उतार रहा था कि अंग्रेजी तोपो के गोले शहर के गुजान मोहल्लो को तहस-नहस करते किला-ए-मुबारक के सेहन मे गिरने लगे। लाल पर्दे के अदर गिरने लगे और पूरे शहर की बुनियादें हिलने लगी। शिकस्त के खौफ की आधियां चलने लगी। होश-हवास और सुध-बुध के आशियाने उजडने लगे। दस-दस बरस की बच्चियां पचास-पचास साल के बुड्ढो के निकाह मे दे दी गयीं कि आने वाला हर रोज रोजेजग था, शब शबेखून। बडे-बडे खानवादे भागने लगे। वह खानदान जिनके सपूतो ने हिंदोस्तान की तारीख साज लड़ाइयो मे मौत के सामने घुटने गाढ़ दिये, अफवाहों पर

उजड़ने लगे थे कि शहर के बाहर अंग्रेज का कब्ज़ा था और शहर के अंदर अफ़वाहों की हुकूमत थी। दिन फ़रार सामान की खोजबीन में आबलापा[1] और रातें अपने प्यारों के बिछोह में नौहा बलब[2]!

फिर वह रात भी आ गयी जिसका कटा-फटा चाँद मस्जिद शाह-जहानी के गुंबद पर थककर बैठ गया था और मस्जिद के चारों तरफ़ हद्दे निगाह तक आदमियों का समंदर ठाठें मार रहा था कि शाही दरवाज़े के सामने शाही हवादार आकर थम गया। बादशाह अपने हाथों में एक दस्त बुकचा लेकर उतरा। चरण बरदार ने लाल मख़मल का ग़िलाफ़ खोलकर जूतियां निकालीं बादशाह नंगे पाँव सीढ़ियां चढ़ रहा था। मस्जिद में आदमी नहीं थे। सीढ़ियों से दरवाज़ों तक आदमियों के सिरों का फ़र्श बिछा हुआ था। बादशाह ने हौज़ पर शाही तबर्रुकों का दस्त-बुकचा इमाम के हाथों पर रख दिया और तेज़ी से चलता हुआ बीच की मेहराब के नीचे आ गया। दो रकात[3] नमाज़ पढ़कर सलाम फेरा तो सारी मस्जिद सजदे में पड़ी थी। उठा तो सारी मस्जिद उठ पड़ी। मजमा काई की तरह फट रहा। और बादशाह घुटनों तक झुके हुए सिरों के दरम्यान सिर झुकाये गुज़र रहा था। शाही दरवाज़े के क़रीब एक सफ़ेद दाढ़ी ने, जिसके सीने पर क़ुरान और हाथ में तलवार थी, बादशाह के दामन को पकड़ लिया और जैसे आसमान से आवाज़ आयी,

"ज़िल्ले इलाही!"

बादशाह थम गया।

"वज़ीर जासूस और अमीर गद्दार हो सकते हैं, लेकिन इंसानी सिरों का यह समंदर ज़िल्लुल्लाह पर निछावर होने को हाज़िर है। अपनी दादा की इस मस्जिद को जिहाद का मरकज़[4] बना लीजिये। मोहम्मदी झंडा लहरा दीजिये। फिर देखिये पर्दा-ए-ग़ैब[5] से क्या नमूदार होता है?" बादशाह ने मशालों की रोशनी में उसके चेहरे की नाव को देखा। गर्दन हिलायी और इस तरह बोला जिस तरह बोलना उसे सुहाता है,

1. जिसके पैरों में छाले पड़े हों 2. मृतक के लिए रोती-पीटती हुई
3. नमाज़ का अंश 4 केंद्र 5 परोक्ष सत्ता या ईश्वर

"हम दिल्ली को अपने लिए नही दिल्ली वालों के लिए छोड रहे हैं। बयासी बरस की उम्र मे चुगताई बादशाह मौत से नही डरते।"

बादशाह आगे बढ़ गया। पूरी मस्जिद शाही दरवाजे पर सिमट आयी थी और एक झलक के लिए ज़ोर आज़माई कर रही थी। शाही दरवाजा छोटा पड गया था और मस्जिद से बाहर खडा हुआ मजमा शाही हवादार पर टूटा पड रहा था। और शाही हवादार उनके भवर मे तिनके की तरह डोल रहा था। और शहर के दिल्ली दरवाजे तक पहुंचते-पहुंचते मस्जिदों के मीनारों से अजानें बुलंद होने लगी थी।

वह दिन भी दिल्ली की तारीख का अजीबो-गरीब दिन था कि शहर पर किसी की हुकूमत न थी। कोई कानून न था, कानून का कोई रक्षक न था। पहली बार शहर अजनबी मालूम हुआ। पहली बार ऐसा खौफ़ महसूस हुआ कि हड्डियां सर्द होने लगी। किले की दीवारें छोटी हो गयी। मस्जिद शाही के मीनार हिलते नज़र आने लगे। खौफ़, जो एक मुद्दत से उसके सोच में था, उसके सीने पर सवार हो गया। वह फ़ौज बाजार में मियां बुलाकी के फाटक पर उतर पडा। मीरज़ा बुलाकी ने आखो पर छज्जा बनाकर देखा। पहचान कर मुसाफहो के साथ मसनद से उठे थे कि सडक पर शोर मच गया। पुरशोर आवाज़ों की तादाद बढ़ती गयी, उनका जमाव बढ़ता गया। मीरज़ा बुलाकी उसका हाथ थामे सडक पर आ गये। खून मे नहाये हुए घोडो और ऊंटो पर बहुत से सवार कदम-कदम चले आ रहे थे। उनके सीनों पर जख्म और पीठ पर गड्ढे थे और वह रकाबो मे पाव रखे और हाथो मे लगामे थामे इस तरह चले आ रहे थे जैसे उन्होंने जख्म नही खाये हैं, फूलो के गुलदस्ते सजाये हैं। वे चले गये लेकिन मीरज़ा बुलाकी उसका हाथ थामे उसी तरह खडे थे। देर के बाद मरे-मरे कदमो से चले और मसनद पर ढेर हो गये। किसी खिदमतगार के कान मे कुछ कहा वह हाथ बाधकर चला गया। एक ख्वान लेकर हाज़िर हुआ। मीरज़ा ने सरपोश हटाया। चादी की दो कटोरिया रखी थी जिनकी तरी में थोडे-थोडे उबले चने रखे थे। मीरज़ा बुलाकी ने एक कटोरी मे चमचा डालकर दोनो हाथो पर रखकर उसे पेश किया। दूसरी कटोरी उठाकर इधर-उधर देखा लेकिन किसी

आदमी का साया तक न था।

"बिस्मिल्लाह कीजिये मीरज़ा साहब।"

मीरज़ा बुलाकी ने इस तरह कहा जैसे कह रहे हों मीरज़ा बुलाकी की मैयत पर फातिहा पढ़िये मीरज़ा साहब! उसने एक चमचा मुंह में रखकर मीरज़ा की तरफ देखा। मीरज़ा बुलाकी इस तरह चने खा रहे थे जैसे सच्चे मोती चबा रहे हो। इलायची दानों की एक चुटकी के साथ पेचवान के दो घूंट लिये और खड़ा हो गया। फाटक तक मीरज़ा बुलाकी उसे छोड़ने आये। वह मीरज़ा बुलाकी की भलमनसाहत के बारे में सोचता सवार हो गया। हवादार जामा मस्जिद के सामने पहुंचा तो ज़ुहर[1] की अज़ान हो रही थी। शरीअत अपने चहेतों को आवाज़ दे रही थी, तारीख़ अपने बेटों को पुकार रही थी, तहज़ीब अपने शैदाइयों को ललकार रही थी। वह हवादार से उतर पड़ा। ज़िंदगी में पहली बार नमाज़ महज़ की नीयत से मस्जिद शाहजहानी की सीढ़ियां चढ़ रहा था। आज़ाद मस्जिद में आज़ाद नमाज़ियों की आख़िरी आज़ाद नमाज का तमाशा करते जा रहा था। कोई लड़का न था जिसकी कमर में खंजर न हो, कोई जवान जिसके हाथ में बरछा न हो। मौजें मारते अंगरखे, कैसी-कैसी सुन्दर सूरतें और तेजवान दाढ़ियां कि फरिश्ते देखें तो देखते रह जायें। ऐसी-ऐसी तराशी हुई मूरतें कि हूरों की आंख पड़ जाये तो पहलुओं से दिल निकल जायें। अभी सफें खड़ी हो रही थीं कि उत्तरी दरवाज़े पर कोहराम मच गया। फिरंगी विजेताओं का पूरा एक ब्रिगेड दरवाज़े के सामने आ गया था। मिम्बर[2] के सामने मशविरे हो रहे थे कि एक शख़्स दो आदमियों के कंधों पर पैर रखकर खड़ा हो गया—

"मोमिनो! ···शहादत का वक़्त आ गया। ज़िंदगी का आख़िरी पैग़ाम आ गया। शाहजहानी मस्जिद का यह दरवाज़ा दरवाज़ा नहीं दरवाज़ा-ए-जन्नत है। आओ इस दरवाज़े से गुज़र कर फ़िरदौस में दाख़िल हो जायें।"

1. तीसरे पहर की नमाज़ 2. मस्जिद में वह ऊंची जगह जहां इमाम खुतबा पढ़ता है

पूरी मस्जिद उत्तरी दरवाज़े की तरफ़—जन्नत के दरवाजे की तरफ़ चल पड़ी। दरवाज़ा खुलते ही जान हारने वालो का समंदर तकवीर[1] के नारों को बुलंद करने लगा और उनकी तकरार करता हुआ उबल पड़ा। मोर्चाबंद फिरंगियो की सैंकडो बदूकें एक साथ चली, सैंकडों लाशें एक साथ गिरी और हज़ारो क़दम उनको रौंदते हुए आगे बढ़ गये। बदूकें चलती रही, लाशें गिरती रही और ज़िंदा क़दम उनको कुचलते आगे बढ़ते रहे। फिर बंदूको की आवाज़ें बन्द हो गयी। बिगुल बजने लगे, कमाड के अंग्रेज़ी नारे गरजने लगे और शमशीर बदस्त प्यादे बंदूकची सवारों से टकरा गये। सवारों को घोड़ो से खीच लिया। जिबह कर दिया। क़त्ल कर दिया या जो भागे उन पर नज़र रखी गयी और मारते-धकेलते कश्मीरी दरवाज़े तक चले गये। मस्जिद इस तरह आदमियो से भरी थी। लाशें लादी जा रही थी। ज़ख्मी उठाये जा रहे थे। वह सब कुछ देख रहा था लेकिन यकीन नहीं आ रहा था कि वह ज़िंदा है और यह सब कुछ अपनी आखो से देख रहा है। किसी तरफ़ से कमरुद्दीन 'मिन्नत' आये और उसका हाथ पकड़कर मस्जिद से निकाल लाये। महलसराय मे जब उमराव बेगम उसके कप्तान के तकमे खोलने लगी तो ज़िंदगी की तोहमत पर ऐतबार आ गया। दस्तरख्वान की सफ़ेदी पर पहली बार कफ़न का ख्याल आया। कटोरियों पर खुरची हुई खोपड़ियों का गुमान आया। उमराव बेगम को बहलाकर वह दस्तरख्वान से उठ आया। चिलम जल चुकी थी मगर वह हुक़्क़ा गुडगुडाये जा रहा था। दूसरी चिलम रख दी गयी वह उसी तरह गुडगुडाता रहा। बेगम उसे आखें फाड-फाड़कर देखती और सहम जाती। कितने दिनो बाद वह सारा दिन महलसराय मे पड़ा रहा। मुद्दतो बाद एक ऐसी शाम आयी जो नशे की तलब से ख़ाली थी। पहली बार वह शाम की हथेली पर शमा की चुटकी भर रोशनी देखकर मुतमईन हो गया। फिर उमराव बेगम जानमाज़[2] से उठी। दारोगा से कुछ कहा। थोड़ी देर बाद उसके सामने कश्ती रखी थी और उसमे वह सब कुछ था जो हुआ करता था। लेकिन वह उसी तरह बैठा रहा।

1. अल्लाहो अकबर 2. नमाज पढ़ने को दरी या चटाई

उमराव बेगम उसे देखती जाती और थोड़ी-थोड़ी देर के बाद आसमान की तरफ हाथ उठाकर दुआएं मांगती जाती। फिर अचानक बंदूकों के फ़ायर होने लगे। होते रहे फिर उनकी आवाज़ें क़रीब आने लगी। और आवाज़ों की दूसरी किस्म आने लगी। फिर तीसरी किस्म फिर चौथी किस्म। इतनी बहुत किस्मों की ऐसी अनसुनी बेपनाह आवाज़े उसने पहली बार सुनी थी। खून उगलती आवाज़े, जान देती आवाज़ें, अपनी मौत की इत्तला देती आवाज़ें, अपने प्यारों की चीखती हुई आवाज़ें, अपनी मदद को पुकारती आवाज़ें, अपनी मदद से नकारती आवाज़ें। लेकिन उनके जवाब में सीसा व बारूद के अलावा कोई आवाज़ न थी। उनकी मदद को न आसमान से शहीद उतरे, न जमीन से गाज़ी[1] उठे। वे कस्माबखाने के जानवरों की तरह अपनी-अपनी बारी जिबह होते रहे। कश्मीरी बाज़ार से दरियागंज तक मोहल्ले के मोहल्ले कत्ल होते रहे। सारी रात जिबह होते रहे। जिबह होते रहे। उसने उमराव बेगम का दुपट्टा उतारकर फाड़ा और उसकी धज्जियों से अपने कान बंद कर लिये।

सूरज उसी तरह रोशन था। धूप उसी तरह ज़िंदा थी। बंदूकों की आवाज़ें और मरने वालों की चीखें उसी तरह बुलंद हो रही थीं। उनके दरम्यान का खामोशी का छोटा-सा वक्फा सन्नाटे की तलवार पर तुल जाता। ऐसे ही एक वक्फे में एक घुटा-घुटा-सा धमाका हुआ। फिर ऐसे धमाके होते रहे देर तक होते रहे। फिर दारोगा खबर लाया कि फ़ैज़ बाज़ार में कई औरतों की एक साथ आबरू छीनने की खबरों ने शरीफ़ों को बेहवास कर दिया है और अक्सर घरानों के मर्दों ने अपने हाथ से अपनी औरतों को कत्ल करके कुओं में डाल दिया है। यह आवाज़ें उसी की हैं। वह पागलों की तरह उठा। और पड़ोस के मकान पर दीवानों की तरह दस्तक दी। देर की तफ़्तीश के बाद दरवाज़ा खुला। वहशी आंखों में बिजलियां तड़प

1 काफ़िरों से लड़ने और कत्ल करने वाला बहादुर

रही थी और हाथ खून में सने हुए थे।

"बिरादर यह क्या कर डाला। हमारे मोहल्ले को बचाने के लिए महाराजा पटियाला ने अंग्रेजों से जमानत ले ली है।" दोनो हाथो मे दोनो पट थामे वह खडा रहा फिर हलक में फसा हुआ खजर उगल दिया,

"मीरजा साहब सदके की चिड़िया थी काट दी।"

"कितनी थी ?"

"अठारह !"

उसने कानो पर हाथ रख लिए साथ ही दरवाजा बद हो गया। दारोगा ने संभालकर महलसराय मे पहुचा दिया। यूसुफ मीरज़ा अपने बच्चों के साथ दूसरे दालान मे बैठे थे। उमराव बेगम ने उसे उलट दिया। थोड़ी देर बाद वह उठा। कागजात का संदूकचा खोलकर अंग्रेज अफसरों के खतों का वह लिफाफा निकाला जो इसी मकसद के लिए संभालकर रखा था। कई खत निकाले और सदर दालान के दरवाज़े पर चिपका दिये। एक घड़ी गुजरी थी कि गली में कयामत मच गयी। घरों के दरवाज़े टूटने लगे। मर्दों के साथ औरतें और बच्चे तक जिबह होने लगे। उसके दरवाज़े पर बंदूकों के कुदे बरसने लगे। उसने औरतो को तहखाने में धकेला और उसके मुह पर तख्त बिछाकर लिखने-पढ़ने का सामान फैला-कर बैठ गया। यूसुफ मीरज़ा ने दरवाज़ा खोल दिया। कितने ही गोरे हाथों में तमंचे और बंदूकें लिये घर में घुस आये। वह तख्त पर दोनो हाथ उठाकर खड़ा हो गया। गोरे घर मे इस तरह टहल रहे थे जैसे जेलर कैदियों की कोठरी का मुआयना करता है। एक तमचे की नाल ने उसके हाथ नीचे कर दिए।

"शाइर गालिब !"

किसी ने कहा। उसने गर्दन हिलाकर ताईद की।

"पहाडी पर क्यू नाय आया ?"

"बूढा आदमी हू। चलने-फिरने से माजूर हू। अगर पहुच भी जाता तो सतरी गोली मार देता। अगर पहुचकर वापस आ जाता तो बख्त खां फांसी पर चढ़ा देता। दुआ कर सकता था घर मे बैठा करता रहा।"

गोरे ने इस तरह देखा जैसे बादशाह गुनहगारों की जान बख्शी करते

हुए देखते हैं। गोरो के बाहर जाते ही यूसुफ मीरजा ने दरवाज़ा बंद कर लिया। बेआबरू होती हुई औरतो की चीखों, कत्ल होते हुए मर्दों की फरियादों और जलते हुए मकानो मे भुनते हुए बच्चों की पुकारो के दरम्यान उसने अपनी सलामती पर इत्मीनान का सांस लिया।

जलते हुए गोश्त की बदबू से बोझल धुए के बादल गहरे होते जा रहे थे। और सास लेना दम-ब-दम दुश्वारतर होता जा रहा था। ज़मीन सख्त थी और आसमान दूर था। और ज़िंदगी की सबसे बड़ी हक़ीक़त यह थी कि वह ज़िंदा था। शाम हो रही कि वह चौंक कर खड़ा हो गया। अब तक उमराव बेगम तहखाने मे बंद थी। तहखाने की बड़ी-सी क़ब्र में शमा जल रही थी। उमराव बेगम का हुलिया उसके सगे भाई की परछाई के पास बैठा था जिसकी गोद मे छोटी बच्ची पडी थी। और बड़ी बच्ची उसके पल्ले से लगी सो चुकी थी। और उमराव बेगम उसे फटी-फटी आखों से घूर रही थी।

"क्या हुआ · क्या हुआ आखिर?"

"कुछ बोलिये तो···खुदा के लिए बतलाइये तो···"

उमराव बेगम ने गोद की बच्ची उठाकर उसके हाथो पर रख दी। ठडी लकडी की गुड़िया उसके हाथो पर आयी तो वह कांपने लगा। उसने उमराव बेगम को देखा। नहीं, उमराव बेगम पर उसकी आंखें चीख पडी। उमराव बेगम कहीं दूर से बोली,

"गोरो की बूटो की आवाज़ पर इसने रोने के लिए मुह खोला और बेगम ने इसके मुह पर हाथ रख दिया।"

वह बच्ची की लाश लेकर बाहर निकला। चप्पा-चप्पा छान मारा यूसुफ़ मीरज़ा का कहीं नामो-निशान न था। वह ड्योढ़ी की तरफ भागा। दरवाजे का एक पट जरा-सा खुला। गर्दन निकालकर देखा तो खून खुश्क हो गया। यूसुफ मीरज़ा ज़ख्मी पड़े थे। बड़े जतन से उन्हें खीचकर अदर लाया। दरवाज़ा बद किया और उसी के सहारे ढेर हो गया। यूसुफ़-मीरज़ा की बीवी और उनकी ज़िंदा बेटी दोनो दाहने-बायें बैठी थीं। और उमराव बेगम पागलों की तरह मारी-मारी फिर रही थी। रेशम जल रहा है। मरहम बन रहा है। आधी रात के बाद यूसुफ़ मीरज़ा ने

आंखें खोली तो जान में जान आयी।

एक दिन गुज़र गया। एक जनम बीत गया। एक रात बसर हुई एक उम्र तमाम हुई। लेकिन कहीं से न तो गोली चलने की आवाज़ आयी, न फरियाद की सदा। फिर भी उसका मन हौलनाक आवाजों से तार-तार था। वह डरते-डरते छत पर चढा। दूर-दूर तक कोई रोशनी न थी। रोशनी का फ़रेब तक न था। जिंदगी का गुमान तक न था। जले हुए गोश्त की बू और गाढी स्याही के सिवा कुछ भी न था। दिन चढ़ते-चढते दरवाज़े पर *मानूस* थपकी हुई। उसने पहचानकर दरवाज़ा खोल दिया। कल्लू दारोगा ने दो पोटलिया पकडा दी। और मुंह फेर लिया। गर्म-गर्म चने और भुनी हुई जुवार के दाने देखकर उसने याद करना चाहा कि कौन-सा फाका है! लेकिन स्मृति कहां थी। स्मृति के नाम पर एक ख़ून का दरिया था कि मौजें मार रहा था।

वह भी दूसरो की तरह चबैने पर हाथ मारने लगा। डगडगा कर एक कटोरा पानी पिया तो आंखों में रोशनी आ गयी। भीतर से मेहसूस हुआ कि ज़िंदगी की बुनियादी ज़रूरत न मज़हब है न तहज़ीब, न अदब है न फ़न, अगर रोटिया नसीब न हों तो दो मुट्ठी भुना हुआ अनाज ही सही! पुरानी चटाई जलाकर अंगारे बनाये। चिलम भरी। दो-चार कश लिये तो निहाल हो गया। उसने सोचा कि दिल्ली के हकीमों के सरपरस्त महाराजा पटियाला ने अंग्रेज़ों से वचन हरा लिया था कि फ़तह दिल्ली के वक़्त हकीमों का मोहल्ला मार-काट से महफ़ूज़ रहेगा और एक तरह से महफ़ूज़ भी रहा। बर्बादी-ए-आम से महफ़ूज़ मोहल्ले का जब यह हाल है तो दूसरे बदनसीबो पर क्या गुज़री होगी? वह सोचता रहा कि सोचने के अलावा कोई इशरत उसकी दस्तरस मे नहीं थी।

किसी-किसी घर मे कभी-कभी चूल्हा जलने लगा था और ज़िंदगी पर ऐतबार पैदा हो चला था। उसने खफ़्तान पहना तो उमराव बेगम दामन पर लिपट पड़ी। और इस तरह मिलाप किया जैसे पहाड़ी पर हमला करने जा रहा हो। शरीफ़ खानी हकीमों की नाक हकीम मेहमूद खां के दरवाज़े पर ज़िंदा और सलामत शरीफो की सूरत देखी तो जी चाहा कि उनसे लिपट जाये। सीने से लगा ले। हकीम ने उसे देखते ही

इस तरह दस्तरख्वान लगाने का हुक्म दिया जैसे नब्ज़ देखकर नुस्खा बोल रहे हों। और हाथ पकड़कर खाने पर बिठा लिया। एक-एक निवाले पर एक-एक दावत का इसरार था। कितने दिन बाद पान चबाकर अनानास के ख़मीरे से महकती चिलम के घूंट लिये थे। पेशानी का पसीना गिरेबान पर आ गया था। जब तनहाई मयस्सर आयी तो हकीम बोले,

"मटिया महल में जहां ज़िल्ले इलाही क़ैद हैं···"

"जी क्या फरमाया आपने ?"

वह मसनद से उठकर खड़ा हो गया। हकीम ने उसका हाथ पकड़कर बिठा लिया।

"इतनी मामूली-सी बात पर तड़प उठे मीरज़ा साहब ! मेहमूद खां के सीने में वह कहानियां दफ़्न हैं कि अगर हकीम का सीना न होता तो फट चुका होता। वह चुका होता। हकीम अहसन उल्लाह खा और इलाही बख़्श ने हिंदोस्तान के साथ वह किया जो जाफ़र और सादिक बंगाल के साथ नही कर सके। कम-अज़-कम टीपू और सिराजुद्दौला मैदाने जंग में शहादत से तो सरफ़राज़ हो गये। हमारा बादशाह तो चूहे की तरह पकड़ कर बंद कर दिया गया। पंद्रह हज़ार सवारों से दामन छुड़ाकर हडसन के सामने ज़िल्ले इलाही की तलवार रखवा दी। कोतवाली के सामने शाहज़ादों के गोली मार दी गयी। क़ैद की सुबह नाश्ते के वक़्त बादशाह ने ख़्वान से सरपोश हटाया तो चार जवान बेटों के सिर रखे थे। लेकिन बयासी बरस के बुड्ढे ने गरजकर कहा—'अलहम्दुल्लाह[1] चुग़ताई शाहज़ादे इसी तरह सुर्ख़ रू आते हैं।' दीवाने ख़ास मे अदालत बैठती है और शाहजहां का पोता सीढ़ियों पर खड़े होकर पांच-पांच घंटे बयान देता है। मोती मस्जिद मे गोरे जुआ खेलते हैं। और मिम्बर पर सुअर ज़िबह होते हैं और हम ज़िंदा हैं !"

"आपको यह सब···?"

"कह तो रहा था कि मटिया महल मे बादशाह पर जो आदमी तैनात हैं वो हमारे पले हुए हैं। दिन भर ड्योढ़ी बजाते हैं और रातभर

1. ख़ुदा का शुक्र है

हमारे कानों में जहर टपकाते है। किले के हज़ारों आदमियों में से बादशाह और जवां बख्त के मासिवा सबके सब फासी पर चढ चुके या गोली से उडा दिये जा चुके। पूरे शहर मे कोई खूबसूरत मुसलमान ज़िंदा नही बचा। वो अमीर व रईस दिल्ली जिनसे इबारत थी सब के सब मर चुके। चंद एक जो ज़िंदा बचे हैं, कैद मे हैं और फांसी का इंतजार कर रहे है।"

"नवाब ?"

"खुदा के वास्ते किसी का नाम न लीजियेगा मीरज़ा साहब ! एक टांका टूटा तो सिर से पांव तक बिखर जाऊगा।"

और वह चीखें मारकर रोने लगे। जहा जो था दौडकर दरवाज़े पर आ गया। और वापस चला गया। देर के बाद जब दिल थमा बोले,

"हमारे तमाम मकानात मे अमीर व शरीफ लोगो की वो बहू-बेटियां जो आ सकी रह रही हैं। वो अपने प्यारो का हाल पूछती है। मैं तोता-मैंना की कहानिया सुनाता हू। बाहर आता हू तो नंगे-भूखे बेगुनाहो की भीड़ बैठी होती है। रोटी देना आसान है, तसल्ली देना मुश्किल है।"

एक घडी न बीती थी कि रोते-पीटते आदमियो का हुजूम आ गया कि हाथी जिन मकानो को ढा रहे हैं उनमें बीवी-बच्चे पिसे जा रहे हैं। हकीम ने उसकी तरफ देखा। वह खड़ा हो गया। हकीम के मुसाफहे के लिए बढते दोनो हाथ थाम लिये।

"खुदा आपकी उम्र और सेहत मे मेरी उम्र और सेहत का पैवंद लगा दे।"

"गुलाम को इत्तला दिये बगैर सवार न होइयेगा। यह गुज़ारिश है कि चौधरी चमन और मुशी महरुल इस्लाम से होशियार रहियेगा। ये शरीफो का शिकार करते फिरते हैं। शाहज़ादो की तलाश के बहाने घरों मे घुस जाते हैं और साहिबो से बहू-बेटियो के हुस्नो जमाल की मुखबिरी करते है। फिर फ़ौज लाकर आबरूमंद घरो की आबरू उठा ले जाते है। दस रुपये फी औरत और पाच रुपये फी मर्द के हिसाब से इनाम वसूल करते हैं।"

बाहर निकला तो सिर सनसना रहा था। कान बज रहे थे। पैर पराये मालूम हो रहे थे। किसी तरह घर पहुचकर पड़ रहा। उमराव

बेगम पास आकर बैठ रही।

"खैर तो है?"

"दुआ करो जितना जो कुछ है, उतना ही रह जाये।"

उन्होंने कुछ और कहना चाहा लेकिन रोक दिया। सोचते-सोचते सिर फटने लगा तो उठकर बैठ गया। जैसे किसी ने कंधे पर हाथ रख दिया। और आहिस्ता कहा कि यही निजामे कुदरत है। सोचो, सैकड़ों बरस पहले जब मुसलमानों ने हिंदुओ से दिल्ली को छीना होगा तो क्या कुछ न किया होगा? मुसलमान कहेगा इससे कम हुआ होगा। हिंदू कहेगा इससे ज्यादा हुआ होगा। और खुदा वो तो नटखट बालक है कभी घढता है कभी तोडता है...और तक़दीर हमारा झुनझुना है। हाथियो से जो खेत रौंदे जाते है वो तकदीर से रौंदे जाते हैं। जो बच जाते हैं वो तकदीर से बच जाते हैं। जो है वह है, जो नही है वह नही है!"

सितमगरी की तमाम रस्में सितबर के महीने मे तमाम हो चुकी थी। अक्टूबर का आक्टोपस अपने हजार पैरो में हज़ार तरहों के जुल्म पहने बेगुनाहो को कुचल रहा था। उमराव बेगम ने शादी का जोड़ा बेचकर चूल्हा जलाया था। वह बहुत दिनो बाद नहाकर धुला हुआ जोड़ा पहनकर खाने का इतजार कर रहा था कि गोरों की दौड़ आ गयी। वह दरवाजा बद करने लपका। जंजीर की तरफ हाथ बढ़ाया था कि पकड़ लिया गया। थाने ले जाया जा रहा था। गली के मोड पर पहुचा था कि मीरज़ा यूसुफ किसी तरफ से निकल आये और 'आका भाई' का नारा लगाकर उसकी तरफ़ दौड़े। अभी चंद कदम के फासले ही पर थे कि बदूक का फ़ायर हुआ और मीरजा यूसुफ लोटने लगे। साहब बहादुर के सामने पहुंचते-पहुंचते होश आ चुका था। औसाब पर काबू पा चुका था। जान बचाने के लिए नही बल्कि बे आसरा औरतों और बच्चो पर किये गये अतिचार ने उसकी चेतना को पैना बना दिया था।"

"टुम मुसलमान ऐ?"

"जी आधा मुसलमान हूं।"

"क्या मतलब ?"

"शराब पीता हूं सुअर नहीं खाता।"

"तुमने बहादुर शाह का सिक्का लिखा ?"

"मैंने नहीं लिखा मुझ पर इल्जाम है।"

साहब बहादुर ने घूमकर मुंशी महरुल इस्लाम और चौधरी चमन को घूरा जो कोट पतलून पर नेक टाई लगाये हाथ बांधे खड़े थे।

"अगर सबूट मिल गया टो ?"

"मुझे गोली मार दी जाये !"

साहब बहादुर थोड़ी देर मुखबिरों को घूरते रहे फिर गर्दन हिलायी। एक कागज़ पर दस्तखत लिये और छोड़ दिया।

थाने से बाहर निकलकर निगाह उठायी तो निगाह रो पड़ी। ड्योढ़ियां टूटी हुई, हवेलियां फूटी हुई। बाजार लुटे हुए, रास्ते उजड़े हुए, मकान फुके हुए। वह शाहजहांबाद के महलों से नहीं खराबाबाद के कब्रिस्तानों से गुज़र रहा था। खंडहरों के इबरतखानों से निकल रहा था। घर पहुंचते-पहुंचते शाम हो गयी। ड्योढ़ी में हकीम मेहमूद खां चंद टूटे-फूटे आदमियों के साथ मौजूद थे। सेहन में मिर्ज़ा यूसुफ का जनाज़ा रखा था। एक तरफ़ क़ब्र का गड्ढा खुद चुका था। हकीम ने नमाज़ पढ़ाई और लाश को तूप दिया। बेवगी और यतीमी के आसुओं से आखें चुराकर वह दीवानखाने में पड़ रहा। बारूद की एक चादर थी जो हद्दे निगाह तक बिछी हुई थी। और दिल्ली जिसे अपनी सहूलत के लिए रात कहती थी। तलवारों और नेज़ों की चमक, बंदूकों और तोपों के दहानों की तड़प को किसी तिलिस्म ने क़ैद कर लिया, गुम बना दिया और उसका नाम दिन रख दिया।…ऐसा ही एक दिन था जब उमराव बेगम आ गयीं। बगैर किसी इत्तला के आ गयीं। वह दीवानखाने के जिंदा की एक कोठरी में सोचते रहने की मशक़्क़त काट रहा था। उनको देखा तो कलेजा टुकड़े हो गया। वह रो नहीं रही थीं। यही तो रोना था। वह अपने होंटों को अपनी पूरी ताकत से दराज़ करके एक हल्की-सी मुस्कुराहट लाने के लिए पसीने-पसीने हुई जा रही थीं। उसको देखती रहीं—देखते-दे

उठी,

"मीरज़ा साहब !"

अलमारी से आईना उठाकर उसके सामने कर दिया। वह उसका चेहरा था। वह उसका चेहरा नहीं था। सिर से दाढ़ी तक एक-एक बाल सफ़ेद हो चुका था। आंखों के गोशों से होंटों के किनारों तक शिकनों के ढेर लगे थे। और वह उसी का चेहरा था। यह वही चेहरा था जो नाज़नीनों के घुटनों पर आफताब की तरह चमकता था। आफताब—हर आफ़ताब का मुकद्दर है कि डूब जाये। उसने आईना उठाकर फेंक दिया। उमराव बेगम को अपनी बाहों में खींच लेने के लिए हाथ उठाये तो पराये मालूम हुए। उठने की कोशिश की तो पैर अजनबी से लगे। कमर सीधी करने में वक़्त लगा। उमराव बेगम उसे देखती रही। और कर भी क्या सकती थी। उमराव बेगम ने खुद लेटकर उसकी मुश्किल आसान कर दी। इतने आंसू बहाये कि वह ज़हर घुल गया जो जिगर को चाटने लगा था। आंसू खत्म हो गये कि आंसू भी खत्म हो जाते हैं। और गम एक पर्वत की तरह अटल था कि बड़े-बड़े दरियाओं के ज्वार भी एक पर्वत को हिला देने से मजबूर रहते हैं।

उमराव बेगम ने बड़ी मिन्नतों से खाना खिलाया। हुक्का लगाया। पानों का चुनगीर पेश किया। जब वह लेट गया तो उमराव बेगम रुखसत हुई। ज़ीने से लौट आयीं।

"कोई साधु दरवाज़े पर खड़ा आपको पूछ रहा है।"

वह उठकर खड़ा हो गया। ज़ीने के दरवाज़े पर निगाहें गाड़े खड़ा रहा। ज़ाफ़रानी क़फ़नी-सी पहने, बड़ी-सी तिलचावली दाढ़ी और बड़ी-बड़ी जटाओं वाला एक शख्स स्याह लकड़ी का प्याला लिये कुछ झुका-सा खड़ा था।

"आ जाइये बाबा···आ जाइये !"

वह सीढ़ियां चढ़ने लगा। पास आया। आंखें खोलीं। आंखें बड़ी होने लगीं। चमकीली होने लगीं। गीली होने लगीं।

"मीरज़ा साहब !"

"ठाकुर !"

उसके मुंह से चीख निकल गयी। ठाकुर ने उसके मुह पर हाथ रख दिया।

"किसी को भनक भी मिल गयी तो मेरे साथ तुम भी।"

"चल अंदर चल···मेरे सीने से लग।"

वह पायंदाज पर पांव रख रहा था और वह उसकी झुकी हुई कमर देख रहा था। जिस पर उस रात का बोझ था जो इतनी भारी होती है जिसकी रोशनी मे सोना पीतल और पीतल सोना हो जाता है। लाहोरी दरवाज़े की तोपें उतर चुकी थी। पहरा उठ चुका था। मुगल परचम अमावस की आधी रात की स्याही मे डूब चुका था। देहली दरवाज़ा खुला पडा था। दोनो तरफ़ बंधे हुए हाथी हैरत से पत्थर हो चुके थे। शहज़ादे और शहज़ादियां, मुल्तान और उनकी बेगमात और सरकारें और उनके दरबारी और उनके दस्तरख्वान पर भिनकने वाले पुश्तैनी खुशामदी एक अज़ीमुश्शान मैयत के जुलूस की तरह गुजर चुके थे। मीरज़ा मुग़ल शाही फौजों के कमांडर इन चीफ़ दूसरे शाहज़ादो के साथ अपनी टूटी-फूटी पलटनो के बेआबरू हथियारों की छाव मे शहरपनाह[1] के देहली दरवाज़े तक पहुंच चुके थे। देहली दरवाज़े से नौमहले तक और नौमहले से नौबतखाने तक तमाम रास्ता भागने वालों और उनके सामान से पटा था। उसकी पुश्त और सामाना अनगिनत मुगलो की धूप से रोशन था। बर्कंदाज़ों, गुर्ज़बरदारों और चेलों के डरे हुए चेहरो से झलक रहा था। नौबतखाने से दीवाने आम तक तमाम इमारतें खाली पडी थीं। तमाम रास्ते बदनसीब बदूकों और बदइकबाल तलवारो से पटे पड़े थे। रिवायती लाल पर्दा अभी तक खिचा हुआ था। लाल पर्दे के पीछे दीवानेखास की पहली सीढी पर बादशाह सिर पर ताज, सीने पर कुरान पाक रखे कमर मे तलवार डाले खड़ा था। दुबला-पतला बीमार बदन कांप रहा था। दाढी पर आंसू जडे थे। खुली हुई आखें आसमान के किसी सितारे पर जमी हुई थी जो उसका नही था। उसके पीछे जवांबख्त, उसकी ओट मे ज़ीनत महल, सामने आखिरी सीढ़ी पर अंग्रेज़ों का जासूस इलाही बख्श

1. नगर के चारो ओर बनी ऊची दीवार

हाथ बांधे खड़ा था। उसके बराबर जनरल बख्त खां घुटनों पर झुका कोरनिश कर रहा था।

"ज़िल्ले सुबहानी"'चालीस हज़ार सवार गुलाम की रकाब में हाज़िर हैं। जन्नत आशियानी शहंशाह बाबर बारह हज़ार सवार लेकर हिंदोस्तान आये थे। आलमपनाह गुलाम पर भरोसा करें। महलात आलिया मकबरे में छोड़ दें। और खुद बदौलत दरिया उतर लें। खुदा ने चाहा तो अर्श मकानी[1] शहंशाह हुमायू की तरह देहली दोबारा फ़तह होगी।"

और तजुर्बेकार जासूस ने पैतरा बदला,

"और मुगलों का चिराग़ पठानों के दामन में बुझा दिया जायेगा।"

जनरल सीधा खड़ा हो गया। हाथ तलवार के कब्ज़े पर चला गया।

"रब्बजुल जलाल[2] की कसम अगर तुम ज़िल्ले सुबहानी के सामने न होते तो इस तलवार से जवाब पाते।"

शहंशाह ने बीमारी और बुढ़ापे के बावजूद सीढ़िया तेजी से तय की।

"बहादुर'''ज़बान का जवाब तलवार में नहीं दिया जाता। तलवार की जगह मैदान जग है जो तेरे हाथ से निकल गया।"

शहंशाह आगे बढ़ गया। जनरल सीने पर हाथ बांधे पीछे-पीछे चलता रहा। जब यह जुलूस दीवाने आम के सामने आया तो बादशाह खड़ा हो गया।

"रोशनी तेज करो। बाप-दादा के इस सजावे को आखिरी बार देख लू कि शायद'''"

सैंकड़ों मशालों और पंशाखों की रोशनी में देखा कि नकली तख्ते-ताऊस पर गिलाफ पड़ा है और शाहजहानी क़ानून के मुताबिक दो तलवरिये रजपूत केसरी बाने पहने कानों तक मूछें चढ़ाये शेरों की तरह खड़े हैं। बादशाह ने सीढ़ी पर कदम रखा। उन्होंने बदूकें सीधी करके सलामी दी और तनकर खड़े हो गये। बादशाह एक के करीब गया। उनके चेहरे, तेवर देखे।

1. स्वर्गीय 2. ईश्वर का एक नाम

"तुम्हारा क्या नाम है ?"

"दर्शनसिंह···महाबली !"

"तुमको कमर खोलने का हुक्म नही मिला ?"

"मिला था जहापनाह !"

बादशाह खडा कांपता रहा। गर्दन हिलाता रहा।

"हमने तुम्हारी खिदमत माफ की···जाओ अपने मा-बाप का कलेजा ठंडा करो।"

ठाकुर ने सलाम के लिए गर्दन झुका दी। गर्दन उठायी तो जुलूस के आखिरी आदमी की पीठ पर ढाल चमक रही थी। फिर अचानक नौबत-खाने से नौबत बजने लगी। आधी रात की नौबत बजने लगी। आखिरी नौबत बजने लगी।

"बंद करो···कानो में ज़ख्म हुए जाते हैं।"

बीमारी के बावजूद हुक्म था कि ज़िल्ले इलाही दीवाने खास से दिल्ली दरवाज़े तक सारे किले की ज़मीन को अपने मुबारक पैरों से चूमते हुए चलेंगे। नौबत खाने से निकलते ही तकदीर की तरह पैर भी जवाब देने लगे। और जनरल की गुज़ारिश और जासूस के इशारे पर हवादार तलब कर लिया गया। शहशाह तकिये से पीठ लगाकर अधलेटा हो गया और जामा मस्जिद के रास्ते पर चल पड़ा।

भारी रात की कोख से सूरज निकला तो सोना पीतल हो चुका था। जामा मस्जिद अपने हज़ारों-हज़ार नमाज़ियों के खून से वुज़ू कर चुकी थी। किले के निहत्थे दिल्ली दरवाज़े पर कर्नल हेमल्टन की पलटनों ने धावा किया। हाथियो पर चढी हुई तोपो ने घूघट के दमदमे और बुर्ज मिट्टी मे मिला दिये। दरवाजे बारूद से उड़ा दिये। कर्नल और विजेता सिपाहियो के घोडे नौ महले और चोबी मस्जिद के सामने गुज़रते हुए नौबत खाने तक आ गये। अंग्रेज़ी फ़ौज की मशहूर टुकडी कश्मीरी दरवाज़े पर काम आ चुकी थी। शहर में लगी आग की लपटें लाल किले के महलों

तक आ गयी थी। कर्नल अपने रिसाले के साथ दीवाने आम के रमनों में आ चुका था। चोबी मस्जिद से उठता हुआ धुएं का मीनार देखता रहा कि एक आवाज तड़प गयी,

"खबरदार·· तख्तशाही···अदब लाज़िम !"

कर्नल ने चमक कर घोड़े की रासें खींच ली। फील्ड गिलास को आंखों से लगाया। इर्द-गिर्द के सवार पीछे सिमट आये थे। कर्नल ने देखा, दीवाने आम के आधे-आधे बंधे लाल बानात के पर्दों के पीछे सुर्ख मखमल के गिलाफ पहने खंभे खड़े थे। उसने फील्ड गिलास हटा लिया। घोड़े पर तिरछा होकर बिगुल बरदार को किरच से इशारा किया। बिगुल बजा। आनन-फानन घोड़ों की टापों की आवाज़ों से सारा रमना छलकने लगा। मेजर डगलस रकाबों पर खड़ा हो गया।

"देहली फ़तह हो चुका···हथियार रख दे···मारा जायेगा !"

अलफाज की गूंज बाकी थी कि दीवाने आम से पहली गोली चली। डगलस के बराबर घोड़े पर खड़ा अंग्रेज़ बिगुलबरदार उलट गया। डगलस ने घोड़े पर कायम रहने में दिक़्क़त महसूस की कि घोड़ा अलिफ़[1] हो चुका था।

"चार्ज !"

उसने तलवार अलम की···दर्जन-भर बंदूकें दीवान पर चली। सवारों ने दीवाने आम के दोनों बाज़ुओं पर हुजूम किया। दीवाने आम से दूसरा फायर हुआ और हेमलटन के सामने दूसरा सवार घोड़े पर झूल रहा था। बाडीगार्ड ने उसके सामने दीवार खड़ी कर ली। बाईं बाज़ू का रिसाला लाल पर्दे को फाड़कर दीवान की पुश्त पर निकल रहा था और दीवाने आम से तेज़ी के साथ सच्चे फ़ायर हो रहे थे। वह हैरत ज़दा था। शायद बख्त खां के फ्रेंक डिवीज़न के 'मार्क मैन' आखिरी मोर्चा लिये हुए थे। उसने हुक्म दिया कि लाहौरी दरवाज़े के सवार दरिया की रेती पर फैल कर रास्ते बंद कर दें। जब बाडीगार्ड गुज़रने लगे तो वह खुद रेलने लगा।

1. पिछले पैरों पर खड़ा होना (उर्दू हर्फ अलिफ़ के आकार जैसा)

"फ़तह किये हुए क़िले के चंद पत्थरों के लिए हम आपको कुर्बान नही कर सकते।"

डगलस लगाम से लिपट गया।

अब दीवाने आम से आती हुई गोलियों के दरम्यान अंतर बढने लगा था। डूबता सूरज बहुत देर नही लगाता। अब सब कुछ खामोश हो चुका था। उसके इशारे पर हर तरफ़ सवार दीवान में घुस गये। तख़्ते-ताऊस के सामने बहुत-सी दगी हुई बंदूकों के दरम्यान दो लाशें पडी थी। हेमलटन ने तख़्ते-ताऊस पर बूट रख दिया। डगलस को देखा जो मुर्दा सिपाहियो के केसरी बाने और हथियार देख रहा था।

"अगर देहली के बादशाह को इन जैसे दो हजार भी मिल गये होते तो···"

उसने अपने आपसे कहा।

"देहली की तारीख बदल गयी होती।" डगलस ने जुम्ला पूरा कर दिया।

वह दीवार से लगा बैठा था। खाली आंखें सामने पड़ी थी। मूछें और दाढी के उलझे हुए बालों मे लफ़्ज़ लरज़ कर रह गये,

"दर्शन सिंह···को ढूढते ढूढते!"

"तुम फ़िक्र न करो···थोड़ा-सा खा लो कुछ·· सो रहो···सुब्ह होते ही हकीम मेहमूद खा साहब के पास चलेंगे···किले के अंदर और बाहर की सारी फेहरिश्त उनके पास है···तुम परेशान क्यो होते हो···खुदा चाहेगा···"

"इतना मालूम है कि 19 सितम्बर की रात वह तख़्ते-ताऊस के पहरे पर था।"

"तब तो कोई ख़तरे की बात नही है।"

लेकिन वह उसी तरह बैठा रहा। तसल्ली से बेपरवाह! उम्मीद से बेगाना। सामने रखे हुए खाने को देख रहा था। और वह उसके देखने के अंदाज़ को देख रहा था।

जिंदगी जिंदा रहने के हुनर से वाकिफ होने लगी। मौत से बचे रहने के जतन करने लगी। जैसे डूबते हुए आदमी को मौजो के किनारे फेंक दिया

ही और वह मंडलाते हुए गिद्धो के नाखूनो से बचने के लिए अपने हाथों की सारी कूव्वत जमा कर रहा हो'''फ़ाकों के स्याह गिद्ध ! मौत के अंडों से निकले हुए लाग़रपर बच्चे पूरे शहर पर झपट रहे थे। जामा मस्जिद के सामने आया तो अंग्रेज़ो का दस्ता नंगी किरच की तरह चमक रहा था। भरी हुई बंदूक की तरह मुस्तैद था। सीढियो पर एक फटा हुआ बुर्का अपने बूढ़े हाथों से दूसरे बुर्के की नकाब उलट रहा था और एक गोरा उस चेहरे को देख रहा था जिससे थोडी देर तक सब कुछ रोशन हो चुका था। फटे हुए बुर्के ने सिक्के मुट्ठी में दबाये नकाब डाली सीढ़िया उतरने लगी। गोरे के पहलू मे खड़े हुए बुर्के ने नकाब उठायी और सीढियां चढ़ने लगी।

उसका जी चाहा कि पहरे पर खडे हुए गोरों की दीवार तोड़ दे, आसुओ से वुज़ू करे, मीनार पर चढ़कर वह अज़ान दे जिसे पूरी दिल्ली सदियो से भूल चुकी है और उस नमाज़ की नीयत करे जिसका एक सलाम मुसल्ले[1] पर होता है, दूसरा क़ब्र मे। वह चद कदम चल भी पड़ा कि बद-नसीब भाई के बलबलाते हुए बच्चो ने हाथ पकड़ लिये, पैरों से लिपट गये। वह दुनिया की बहुत-सी नेमतो की तरह इस नमाज़ की नेमत से भी मह-रूम रहा।

"तो यह है वह निज़ामे हुकूमत जिसके तुम आरज़ूमद थे। तुम्हारी तहज़ीब के सीने से जूए-खून[2] बह रही है और उसका एक-एक कतरा तुमसे तुम्हारी दुआओ का हिसाब मागता है। हर आह जो किसी दिल से निकली, हर फरियाद जो किसी जिगर से फूटी, इसका कौन-सा हिस्सा तुम्हारे नाम लिखा जाये ! ये फांसियो के चमन, ये सूलियो के दाग तुम्हारी चहल कदमी का इतज़ार कर रहे है। कब्रिस्तान जिनके गड्ढो मे ज़िंदा आदमी तूप दिये गये, मैदान जो अनगिनत कब्रों से कब्रिस्तान हो गये तलबगार हैं कि एक फ़ातिहा पढ़कर उनको निजात बख्श दो कि मौजूदा निज़ामे हुकूमत के वसीले से तुम उनकी निजात के तलबगार थे। महलो को मकानों से, मकानों को मकीनों से, बाज़ारों को दुकानो से, दुकानो को

1. नमाज़ पढ़ने की जगह 2. रक्त की नदी

खरीदारों से निजात मिल गयी···कि तुम निजात के तलबगार थे असद उल्लाह खां गालिब···"

"तुम कौन हो ?"

"मैं तुम्हारा हमजाद[1] हूं···तुम्हारा जमीर[2] हूं···खुमार के सनतने में जिसे तुम जमीरे खुद[3] कहते थे। जमीरे कायनात के नाम से मुखातिब करते थे···मैं वह हूं। आओ इस मगरिबी दरवाजे की आखिरी सीढी देखो···इस पर पडे हुए नमाजी के कदम किला-ए-मुअल्ला के दीवाने खास मे तख्ते ताऊस पर जुलूस किये हुए जिल्ले इलाही के ताज की कलगी से बुलंद होते थे। इस सीढी को बिस्तर बनाकर सुअर चराने वालों ने तुम्हारी तहज़ीबे कबीर[4] के बेनज़ीर निगारखानों की अस्मत छीनी है··· यह तुम्हारी दुआ-ए-नीम शब के दफ्तर में लिखूं या दुआ-ए-सुबह गाही के हिसाब में दर्ज करूं ?

···आंसू आ गये तुम्हारी आखों में आसू···सात सौ साल की तहजीबे जलील जिबह हो गयी। मिम्बर के सामने बंधे हुए घोड़ों के सुमों के नीचे कुचल दी गयी और तुम सिर्फ दो आसू अता कर सके···बहुत क़ीमती हैं तुम्हारे आंसू ! खुदा के लिए इन क़ीमती आंसुओं को छुपाकर रख लो कि अगर इस बदनसीब शाहजहानी मस्जिद की नज़र पड गयी तो अपने दोनों मीनारों के हाथ बढ़ाकर तुम्हारी आंखों के इन दोनों मोतियों को तोड लेगी।"

उसने दोनो हाथो में मुंह छुपा लिया। किसी ने कंधो पर हाथ रख दिये। उसने भीगी हुई हथेलिया हटा ली। सामने हकीम मेहमूद खा खडे थे। दो जोड आंखें एक दूसरे को देखती रही। आसुओं की ज़ुबान से गुफ़्तगू करती रही।

"हम अपनी ज्यादतियो की बदमस्तियो का खमियाजा भुगत रहे हैं खरमस्तियो का कफारा[5] अदा कर रहे हैं···लोह महफूज़[6] में हमारे नाम

1. सहजात 2. अंत:करण 3. अह 4 प्राचीन सभ्यता
5. पाप का प्रायश्चित 6 आकाश पर एक स्थान जहा ससार मे होने वाली सारी घटनाओं का उल्लेख है, जिसे कोई नहीं पढ सकता

यही लिखा हुआ था तो आइये, अपना फ़र्ज़ इस तरह अदा करें जिस तरह मैदाने जंग में मुजाहिद अदा करते हैं। खुदा की कसम मीरज़ा साहब मौत कभी इतनी आसान नहीं मालूम हुई···लेकिन क्या करें आज एक-एक दिन की ज़िंदगी एक-एक दिन का जिहाद है···जिहादे अकबर है।"

और उसे अपनी सवारी पर बिठा लिया।

दिन घिसटते रहे जैसे बोझ से लदे हुए खच्चर सीधी चढ़ाई पर चढ़ते हैं। रातें कटती रहीं जैसे मरीज़ मौत के बिस्तर पर काटते हैं कि एक खबर आयी। कहा से किसी को नहीं मालूम लेकिन आयी कि कल नमाज़े फज्र के बाद ज़िल्ले इलाही रंगून जाते हुए चांदनी चौक से गुज़रेंगे···अभी आधी रात बाकी थी कि वह उठ पड़ा। टहलता रहा, एक बार निगाह उठी तो उमराव बेगम खड़ी थी।

"पानी गरम हो गया है।"

"बेगम!"

वह उनसे लिपट गया। देर तक उन्हें लिपटाये खड़ा रहा। लरज़ता रहा। हमाम से निकला। वह कमरे में खिलअत का बुकचा खोले बैठी थी। उसने पूरा लिबास पहना। दोशाला कंधे पर डाला। कोने में खड़ी हुई तलवार उठायी तो बेगम ने हाथ पकड़ लिये।

"ठीक ही कहती हो बेगम···तलवार तो हमारी कौम के हाथ से छिन गयी।" वह बाहर निकला। हरचंद कि अभी अंधेरा था लेकिन गली जाग चुकी थी। हर गली जाग चुकी थी। हर रास्ता चांदनी चौक जा रहा था। वह सुनहरी मस्जिद में पहुंचा तो मस्जिद भर चुकी थी लेकिन उसे जगह दे दी गयी।

बहुत देर बाद अंग्रेज सवारों का दस्ता नंगी तलवारें लिये क़दम-कदम चलता गुज़रने लगा। उसके पीछे एक डोली थी। आम डोलियों से बुलंद और कुशादा। ज़िल्ले इलाही तकिये से लगे घुटनों के बल बैठे थे। दोनों

हाथ आसमान की तरफ उठे थे। आखें किसी तरफ देखती भी थी तो नही देखती थी। सवारी मस्जिद के करीब आयी तो सब झुक गये। खुदा के घर मे भी खड़े हुए सिर झुक गये। आखो ने नज़र निसार की, होंटो ने कोरनिश का हक अदा किया और वे चले गये। सब चले गये। वह बैठा रहा। गुज़रते हुए आदमियों को देखता रहा। तो दिल्ली आबाद होने लगी है—उसने सोचा और खड़ा हो गया।

अंगरखा उतार रहा था कि उमराव बेगम ने हाथ वढाकर ले लिया और सवालिया निशान बनकर खड़ी हो गयी।

"क्या बात है बेगम ?" बेगम पास ही बैठ गयी। थोड़ी देर चुप रही।

"इतनी बातें हैं कि कहने की हिम्मत नही पड़ती···न कहूं तो कहा तक न कहूं !"

"फिर भी···कुछ तो कहो।"

"आरिफ़ के बच्चों के मौलवी साहब की तनख्वाह बहुत चढ चुकी है। बच्चो के कपड़े भी कम हो गये हैं···घर के आदमी भी बलबलाने लगे है। पेंशन का ठीकरा और इतने मुह इतने पेट। लोहारू मे सबका कहना है कि आपको मलका-ए-इग्लिस्तान का कसीदा लिखना चाहिए। कम-से-कम जितना किला-ए-मुवारक से मिलता था, उतना तो मिल ही जायेगा।"

"हा, कसीदे की तशबीब[1] मे हिंदोस्तान की तबाही के कारनामो का जिक्र बहुत मुनासिब रहेगा।"

बेगम ने गर्दन झुका ली।

अज़ल से होता आया है कि जब हाकिम हुकूमत के काबिल नही रहे तो खुदा उनसे हुकूमत छीन लेता है और जो इस काबिल होते है उनको सौंप देता है।

"मेरा खाना बाहर भेज देना।" वह उठ पड़ा। वेगम सेहन तक आयीं फिर खड़ी हो गयी।

1. कसीदे की भूमिका

शाम होने लगी थी। वह सोकर उठा। गुस्ल किया। कपड़े पहने। दीवानखाने में बैठा ही था कि अल्ताफ हुसैन 'हाली' आ गये। गोल टोपी, दाढ़ी, अचकन और नौजवानी में बुढ़ापे की संजीदगी पहने आये। इंतिहाई अदब से सलाम किया। दस्तबोसी के बाद बैठ गये। तकिये के पास डाक उसी तरह रखी हुई थी जिस तरह आयी थी। उसने पूरी डाक उठाकर अल्ताफ हुसैन को दे दी। उन्होंने दोनों हाथों पर रख ली सलाम किया और बैठ गये।

"मियां अल्ताफ···सरनामों पर जब खत अजनबी मालूम होता है तो गुमान होता है कि ये खत मेरे दुश्मनों ने लिखे होंगे और मुझ बदनसीब को उन खितावात[1] से याद किया होगा जिनके ज़िक्र से शरीफों की ज़ुबानें जलती हैं···तुम पढ़ो···अगर कोई काम की बात हो तो मुझे सुनाओ।"

मियां अल्ताफ ने सब खत पढ़ लिये और चाक कर दिये और नज़रें झुका लीं।

"तो तमाम खत गालियों के खत थे।" यह सुनकर मियां अल्ताफ ने सिर को और झुका लिया।

उसने अलमारी से शराब और गुलाब के शीशे निकाले। बिल्लौर का प्याला भरा था कि कल्लू आ गया।

"मास्टर रामचंदर और मास्टर प्यारेलाल आदाब पेश कर रहे हैं।"

"बुलाओ!"

वे दोनों अंग्रेज़ी लिबास पहने हुए पायंदाज पर खड़े तस्लीमात कर रहे थे। उसने ज़रा-सा उभर कर हाथ बढ़ा दिया। दोनों ने मुसाफहा किया। दस्तबोसी की और मियां अल्ताफ़ के पास दो ज़ानू बैठ गये। उसने प्याला उठाकर एक घूंट लिया।

"हुज़ूर का मिज़ाजे मुकद्दस!"

उसने प्याला रख दिया।

"ज़िंदा हूं कि मौत नहीं आती···मुर्दा हूं कि ज़िंदगी के जो आसार होते हैं वो नहीं रहे।"

1 संबोधन (उपाधियां)

"खुदा नाकर्दा।" (खुदा न करे) दोनों ने दुःख जाहिर किया।

"दोस्त मर गये या मोहताज हो गये···दुश्मन जिंदा हैं और कवी[1] हैं और हमारी मजबूरी पर हसते है। हम बाहर निकलने से एक हद तक माज़ूर हो गये है तो वो जो दूसरों के पर्दे में हमको गालिया सुनाते है, मजबूर हो गये कि हमको हमारे खुतूत मे गालिया लिखें।"

उसने एक घूट लिया, "अज़ीज़ो! कुछ हर्फ नवीस·· मिसरे गाठने वाले जिनका पेशा करम खुर्दा[2] किताबों का कफन खसोटना है···उस्तादों के गैर मारूफ कलाम[3] की जेब काटना है···वो हमारे मुह आते हैं और इस तरह आते है जिस तरह बाझ औरतें किसी शरीफ़ खातून की सातवी औलाद की तकरीब[4] मे आती है। उनकी फटी आवाज से लफ्ज़ो के गलीज़ थक्के इस तरह बरामद होते हैं जैसे हड्डियो मे लिपटी हुई खामो-शिया·· जिनके रग से गदगी को भी उबकाइयां आने लगती हैं, बू से बदबू को कै आने लगती है और बकवास ऐसी कि सडास की नापाकी और गदगी भी न कुछ!"

"अज़ीज़ो! जानते हो कि हमारे नाम लिखी जाने वाली गालियां क्या होती हैं?"

तीनों नजरें झुकाये बैठे रहे। ज़रा की ज़रा नीमनिगाह से देखा। फिर मुअद्दब हो गये।

"गाली हम शाहाने क़लम का वह खिराज है जो कमनाम और गुम-नाम पेशावर हर्फ नवीस हमारे सामने से गुज़ारते हैं···खुदा की कसम गालिया हमारे जासूसो की बेटिया हैं जो हमारे तारुफ में रहती हैं।"

प्याला मुंह से लगाया और रख दिया, "वो कमजर्फ जिनके स्याह लफ्ज़ खिलअते रोशनाई से मेहरूम रहे हम पर तनकीदें लिखते है···हमको रमूज़े फ़न[5] सिखाते है···अली से जुल्फिकार का तारुफ कराते है···शाह-ज़हा की उंगली पकड कर ताजमहल दिखलाने की खिदमत अजाम देते है···

1. शक्तिशाली 2. दीमक लगी हुई 3. अज्ञात, अविख्यात साहित्य 4. उत्सव 5. कला की बारीकियां

"अज़ीज़ो ! गुलाब की खुशबू पर कौवे तकरीरें करते हैं। हर ज़माने में चमगादड़ो ने जुगनुओ पर तनकीदें की हैं···जुगनुओं ने आफताबो की रोशनी पर तनकीस[1] लिखी है···बूढ़ी औरतों ने सौत की अट्टी पर यूसुफ़ों का सौदा किया है···यह हमेशा से होता आया है···यह हमेशा होता रहेगा।"

प्याला खत्म करके डाल दिया।

"हमको गरज अल्लाह ताला से अता हुई और हम इस अता-ए-खास पर सिर से पाव तक ज़ुबाने शुक्र हैं। यह गरज उस शख्स को जो होज़ पर लोगो को कत्ल करता है, उनके दातों पर चढ़ी हुई सोने की कतरनें उतारता है, उसको नसीब नही होती। हमारी गरज पर हकीम आगा खां 'ऐश', मुशी महरुल इस्लाम और चौधरी चमन भौंकने के अलावा कर भी क्या सकते हैं।"

ज़मीन से आसमान तक सन्नाटा था। देर के बाद ओल्ड टाम की बोतल से उसने प्याले मे शराब डाली।

"हुज़ूर वाला ! हम गुलामो ने सुना है कि हुज़ूर वाला ने तौहीने ज़ात[2] का जो मुकदमा अदालत मे कायम फ़रमाया है उसकी पेशी होने वाली है और हुज़ूर अपनी शहादत मे जिन नामी आदमियों को पेश करने वाले थे वो मुनकिर[3] हो गये हैं।"

"काफिर हो गये !" मास्टर रामचंदर ने इस्लाह की।

"जी · काफिर हो गये तो हम आपके हल्का बगोश हरचद कि आपके पैरों की धूल हैं···लेकिन खिदमत के लिए हाज़िर हैं · " दोनों ने फिर गर्दन झुका ली। ग़ालिब ने प्याला उठाया। एक सास मे खाली करके डाल दिया। देर तक सिर झुकाये बैठे रहे। फिर आंखें उठायी।

"तुम हमारे अपने हो, छोटे हो।"

"नही हुज़ूर वाला नही···हमने आपकी जूतियों के सदके में कुछ सीखा है।"

1. कटु आलोचना करना 2. अपमान-हानि 3. इंकारी, करने वाला, गवाह का पलट जाना

"चलो यू ही सही'''हमने दुनिया के गुनाह किये जरूर हैं कमजोर और बूढे भी है'''लेकिन हम द्रोणाचार्य नही हो सकते जिन्होने गुरुदक्षिणा मे अगूठा माग लिया'''मुस्तकबिल माग लिया'''हम तुमसे तुम्हारा मुस्तकबिल मांग लें'''अपने अर्जुन—अपने तखय्युल की फ़तह के लिए। तुम नहीं जानते कि हमारे दुश्मन कितने मजबूत है, वो तुम्हारा रोशन मुस्तकबिल स्याह कर देंगे।"

"हुजूर वाला'''"

"खुदा की कसम हम तुम्हारे मुस्तकबिल का कत्ल मजूर नही कर सकते। रहा मुकदमा तो हमारे दुश्मनो ने हमारी दोस्ती के पर्दे मे हमको ज़लील करने के लिए हमसे दायर करा दिया। और जब हम उनके जाल मे फंस गये तो वो भी हम को जिबह करने के लिए छुरी तेज कर रहे हैं।

"अज़ीज़ो! हम इस काबिल है कि हमको शाहराहे आम पर फासी दी जाये। जब हम मर जायें तो हमारी लाश पर घोडे दौड़ाये जायें। जियाफत[1] के लिए चील और कौवे बुलाये जायें कि हमारा कमाल ही हमारा जुर्म है। इतना बड़ा जुर्म है कि अलामा उल हफीज! (ईश्वर रक्षा करे)"

हाजत के लिए उठ रहे थे कलफलगे बडे से पांयचें की लपेट में बोतल आ गयी और सारे फर्श को रगीन कर गयी। मिया अल्ताफ पीछे खिसक लिये और खिसक गये। मास्टर प्यारे लाल और मास्टर रामचदर जहां बैठे थे और जिस तरह बैठे थे उसी तरह बैठे रहे। देर तक चुप बैठे रहे। दिलगीर आवाज में खुदकलाम हुए—शायद शराब छोड़ देने का वक्त आ गया कि अब बेआबरू करने लगी है। मेरे छोटो के सामने खफ़ीफ करने लगी है'''अज़ीज़ो मैं शर्मिदा हू!

वे तीनों उनसे ज्यादा शर्मिदा हो गये।

हाजतखाने से वापस आये। गाव से लग कर बैठे। पेचवान के दो कश लिये। मास्टर रामचंदर ने हाथ जोड़े और अर्ज किया,

"हुजूर वाला! बहुत दिनों से एक मसला परेशान किये हुए है,

1 दावत

इजाजत हो तो…"

"कहो…जरूर कहो !"

"ईरान व अरब में कोई शाइर नही जो हुजूर की सफ मे खडा हो सके। रहा हिंदोस्तान…तो मीर से गालिब तक कौन है जो गालिब के पहलू मार सके। अवाम से खवास तक एक बडा तबका है जो जानता है एक हद तक मानता भी है लेकिन फिर ऐसा क्यों है कि एक दुनिया आपकी मुखालिफ है। किसी एक ने आपके खिलाफ आवाज उठायी तो चहार तरफ़ से उसकी ताईद होने लगी।…किसी को कुछ सोचने की जरूरत मेहसूस न हुई…ऐसा क्यो हुआ ? ऐसा क्यों हो रहा है ?"

वह देर तक खामोश बैठा रहा। नै होटों से निकाल कर फर्श पर डाल दी।

"हिंदोस्तान का मुसलमान रजअते कहकरी[1] मे मुब्तिला है। एक मुद्दत से मुब्तिला है। बराये नाम हुकूमत का पर्दा पड़ा था। उठ गया। सारे दाग-धब्बे दूर से नज़र आने लगे। ज़वाल की पहचान यह है कि बडे-बड़े लफ्ज़ों के मानी छोटे हो जायें और निजामे कुदरत यह है कि तख्त छोटे हो या बडे खाली नही रहते…तो इन तख्तों पर छोटे-छोटे मानी रखने वाले छोटे-छोटे लोग बैठ गये। इस तरह आहिस्ता-आहिस्ता छोटे और बडे, नेक और बद, खालिक और मखलूक का फ़र्क खत्म होने लगा। दर्जा-ब-दर्जा खत्म होने लगा। इस हद तक खत्म हो गया कि जो हक के मानी जानता भी हो वह अपने छोटे से जाती फ़ायदे के लिए खामोश रहता है न सिर्फ यह बल्कि नाहक को हक मान लेता है और अपने फ़ायदे की हिफाज़त और अपनी इज्जत को बचाने के लिए नाहक की वकालत करने लगता है। एक बात और…जरायम पेशा लोग पहली ही मुलाकात में एक-दूसरे के यार हो जाते है। एक-दूसरे का दस्त-बाजू बन जाते हैं। दिल्ली के अक्सर शोहदे एक-दूसरे पर जान छिडक्ते है जबकि शरीफ अपनी तहज़ीब के रचाव से मजबूर हैं कि मुलाकात मे भी तकल्लुफ से पेश आयें। दस-पाच मुलाकातो मे भी देर से क़रीब आयें और करीब आने पर

1. मनोन बौची होना, पीछे की ओर चलने की प्रवृत्ति

भी एक फ़ासला कायम रखें। एक-दूसरे के ज़ाती मामलों से कोसों दूर रहें। यानी अपनी ज़िल्लत और बदहाली के ज़ख्मों को चाटते रहे सड़ाते रहें'''और शोहदे एक आवाज़ पर जमा हो जाते हैं और अपनी बहू-बेटियों की छातियों के घाव चुटकियों में धो डालते हैं'''

"तो अज़ीज़म ! यह ईमानदारी और शराफ़त की कीमत है जो हम अदा कर रहे हैं'''हमारे कबीले के हर फर्द ने अदा की है और कबीले के हर फर्द को अदा करनी पड़ेगी।"

गालियां सुनते-सुनते समाअत[1] पहले ही हाथ जोड़कर रुखसत होने लगी थी। गालियां पढ़ते-पढ़ते बसारत[2] भी उठने के लिए पहलू बदलने लगी। सैर व तफरीह की राहत से मजबूर'''पढ़ने-लिखने की लज्ज़त से माज़ूर'''दिन रात की तरह धुंधले'''रात दिन की तरह मैली'''ज़िंदगी '''कीड़ो-भरा कबाब थी जो चारपाई के थाल पर रखी रहती, ज़रूरतों और लाचारियों की मक्खियां भिनकती रहतीं'''जब यह पहलू जलने लगता तो कोई उठाकर दूसरे पहलू पर डाल देता। और वह अपने उठने का इंतज़ार करता'''इंतज़ार'''इस एक लफ्ज़ के चार नुक्ते दिन के चार पहरों की तरह, रात के चार पहरों की तरह उसके ज़ख्मों से खेलते रहते '''इंतज़ार के छ: हर्फ छ: सिम्तों की तरह, छः खारदार ज़ुबानों की तरह उसके दागों को चाटते रहते, दहकाते रहते और वह जो बचपन से इंतज़ार के पंजों में तड़प रहा था, आज भी इंतज़ार के पंजों में सिसक रहा था। इंतज़ार की सूरत बदल गयी लेकिन इंतज़ार बाकी रहा'''कल इंतज़ार का नाम एक खिलौना था और आज इंतज़ार का नाम मौत !

●●●

1. सुनने की शक्ति 2. दृष्टि